।। वासुदेवः सर्वम् ।।

आप के अंदर विराजमान परमपिता परमेश्वर जो जगन्नाथ, जगतगुरु, पालनहार, तारनहाIर है उनको मेरा सांदर प्रणाम,

इस किताब में नया कुछ भी नहीं है, बस एक नोट बनाई जो श्रीमद भगवत गीता को जानने और समझने में कुछ हद तक सहाय रूप हो सकती है , मैं परम कृपालु परमात्मा का अभारी हू की मुझे प्रेरणा दी , प्रभु आपको प्रणाम। आभार , जय श्री कृष्णा ।

ये नोट आप को श्रीमद भगवत गीता के हरेक अध्याय के सारांश-मुख्य श्लोक (पेज 03-81), भारतीय दर्शन (पेज 82-90), कुछ अनमोल वाक्य (पेज 91-98) और भक्ति दोहे (पेज 99-136) लिए गए हैं, जो हमाIरे विचार और आंचार बदल सकते हैं, सही जीने की रांह बता सकते हैं। मैं कोई साधु, संत या महात्मा नहीं हू पर हमेंशा कोशिश कि है अच्छे और सच्चे मानव बनने की और इसी जन्म मैं परम ज्ञान / मुक्ति को पा सकु , यदी आप को ऐसा लगे कि नोट कुछ कांम दे गई तो आप से प्रार्थना है कि किसी ज़रुरतमंद दो लोगो को स्नेह पूर्वक भोजन दे देना।

सप्रेम प्रणाम,
आपका स्नेह और आशीर्वाद का अभिलाषी ,

पंकज .पटेल .
Zadeshwar (Bharuch) Gujrat -India.
pankaj2461969@yahoo.co.in
pankaj2461969@gmail.com

॥ वासुदेवः सर्वम् ॥

॥ अप्प दीपो भवः ॥

॥ ध्यान है तो सबकुछ है, ध्यान नहीं तो कुछ भी नहीं ॥

Dr .B .U .Patel. / Kamalben Patel .

मेरे माता पिता को सप्रेम प्रणाम ,

आदरपुर्वक समर्पित ,

"जय श्री कृष्णा"

॥ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्ण शुभाङ्गम्
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम्
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

जिनका स्वरूप अतिशय शांत है,जो जगत के आधार व देवताओं के भी ईश्वर है, जो शेषनाग की शैया पर विश्राम किए हुए हैं, जिनकी नाभि में कमल है और जिनका वर्ण श्याम रंग का है, जिनके अतिशय सुंदर रूप का योगीजन ध्यान करते हैं, जो गगन के समान सभी जगहों पर छाए हुए हैं, जो जन्म-मरण के भय का नाश करने वाले हैं, जो सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं, जिनकी भक्तजन बन्दना करते हैं, ऐसे लक्ष्मीपति कमलनेत्र भगवान श्रीविष्णु को अनेक प्रकार से विनती कर प्रणाम करता हूँ । ब्रह्मा, शिव, वरुण, इन्द्र, मरुद्गण जिनकी दिव्य स्तोत्रों से स्तुति गाकर रिझाते है, सामवेद के गाने वाले अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, योगीजन ध्यान में स्थित प्रसन्न हुए मन से जिनका दर्शन करते हैं, देवता और असुर जिनके अंत को नही पाते, उन नारायण को नमस्कार करता हूँ ॥

गीता महाभारत के भीष्म पर्व का भाग है ,जिसमें 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं. पांच हजार साल बीत गये मगर आज भी श्रीमद्भगवत गीता न केवल धर्म का ज्ञान कराती है, बल्कि जीवन जीने का ढंग भी बताती है।

हरियाणा के कुरुक्षेत्र में जब यह ज्ञान दिया गया तब तिथि एकादशी थी। कलियुग के प्रारंभ होने के मात्र तीस वर्ष पहले इस ज्ञान को दिया गया था और संभवत: उस दिन रविवार था। कहते हैं कि उन्होंने यह ज्ञान लगभग 45 मिनट तक दिया था। उपदेश प्रात: 8 से 9 बजे के बीच हुआ था।

गीता शब्द का अर्थ है गीत और भगवद शब्द का अर्थ है भगवान, अक्सर भगवद गीता को भगवान का गीत कहा जाता है। यह भगवान का गीत है इसलिए गीता का नाम गीता ही पड़ा। श्रीमद भागवत गीता धर्म शब्द से शुरू होती है और म शब्द पर पूरी होती है, मतलब पहला और आखिरी अक्षर मिल्कर धर्म हो जाता है, यही धर्म है I

श्रीमद्भगवद्गीता ' में मुख्यतः दो प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं - अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् छन्द के चार चरणों में से प्रत्येक में आठ - आठ अक्षर होते हैं । चार चरणोंवाले त्रिष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में ग्यारह - ग्यारह अक्षर होते हैं । ' श्रीमद्भगवद्गीता ' के ६४५ श्लोक अनुष्टुप् छन्द से और ५५ श्लोक त्रिष्टुप् छन्द से बँधे हुए हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीता ' में धृतराष्ट्र और संजय के संवाद के बीच श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद है । ' श्रीमद्भगवद्गीता ' के ७०० श्लोकों में एक श्लोक धृतराष्ट्र का , ४१ संजय के , ८४ अर्जुन के और ५७४ श्लोक भगवान् के हैं । इसी प्रकार इसमें ' श्रीभगवानुवाच ' २८ बार , ' अर्जुन उवाच ' २१ बार , ' संजय उवच ' ९ बार और ' धृतराष्ट्र उवाच ' १ बार आया है ।

श्रीमद्भगवद्गीता ' को संक्षेप में ' भगवद्गीता ' और ' गीता ' भी कहते हैं । श्रीमद्भगवद्गीता ' का अर्थ है - भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गायी गयी उपनिषद् । ' उपनिषद् ' संस्कृत में स्त्रीलिंग है ; परन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग पुँल्लिंग - दोनों है ।

गीता में समस्त उपनिषदों का सार आ गया है , इसीलिए इसे ' गीतोपनिषद् ' भी कहते हैं

गीता ' का अर्थ है- पद्य में कही गयी बात । भारत में बहुत - सी गीताएँ हैं । उनमें कुछ इतिहास - पुराणों से संबंधित हैं और कुछ अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं ; जैसे पराशर - गीता , हंसगीता , अवधूतगीता , अष्टावक्रगीता , अनुगीता , उत्तरगीता , कपिलगीता , पांडवगीता , शिवगीता , व्यासगीता , भिक्षुगीता , सूर्यगीता आदि । इन सारी गीताओं में श्रीमद्भगवद्गीता ' ही श्रेष्ठ है ।

श्रीमद्भगवद्गीता ' हमें जीवन - भर कर्मशील बने रहने की शिक्षा देती है , कर्म का त्याग करना वह कभी नहीं सिखाती । कहती है कि कर्म किये बिना प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता । कर्म का त्याग कर देने पर हमारे शरीर का निर्वाह होना भी कठिन हो जाएगा । अकर्तव्य कर्म का तो त्याग हमें अवश्य करना चाहिए ; परन्तु कर्तव्य कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए । कर्तव्य कर्म करते रहने पर हमें चित्त की शुद्धि प्राप्त होती है । यह चित्त की शुद्धि आत्म-साक्षात्कार कराने में सहायक बनती है । कर्तव्य कर्म भी हमें फल की आसक्ति का त्याग करके करना चाहिए । हम जो भी कर्तव्य कर्म करें , ईश्वर की प्रसन्नता के लिए करें , सब कर्मों तथा उनके फलों को ईश्वर को समर्पित करते जाएँ और मन में कर्तापन का अभिमान नहीं रखें ।

गीता कहती है कि आत्मसाक्षात्कार करने के लिए ज्ञानयोग , भक्तियोग , ध्यानयोग और कर्मयोग - इन सभी साधनों का सहारा लेना चाहिए । ये सभी साधन एक - दूसरे से अलग अलग नहीं , एक-दूसरे से संबंध / पूरक हैं ।

गीता **धर्मशास्त्र , कर्मयोगशास्त्र , अध्यात्मशास्त्र , दर्शनशास्त्र , योगशास्त्र , मोक्षशास्त्र और भक्तिशास्त्र** भी है ।

गीता की मुख्य शिक्षाएँ दूसरे - तीसरे अध्यायों में देखने को मिलती हैं । दूसरे अध्याय के ३८ वें श्लोक में गीता का प्रधान उपदेश आ गया है , वह श्लोक इस प्रकार है

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥
जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समज़कर, युद्धके लिए तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको प्राप्त नहीं होगा

गीता का बारहवाँ अध्याय सबसे छोटा है । इसमें भक्त के जो लक्षण बतलाये गये हैं , उन्हें भक्त बनने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को सदैव स्मरण में रखना चाहिए । अठारहवाँ अध्याय सबसे बड़ा है । इसमें ७८ श्लोक हैं । इन श्लोकों में गीता का सार आ गया है ।

कहा गया है कि सब धर्मग्रंथों का सार है वेद । वेद का सार है उपनिषद् । उपनिषद् का सार है ' श्रीमद्भगवद्गीता ' और ' श्रीमद्भगवद्गीता ' का सार अठारहवें अध्याय के निम्नलिखित दो श्लोकों में आ गया है

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५ ॥
(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझ में मनवाला (हो जा), मेरा पूजन करनेवाला (हो जा और) मुझे नमस्कार कर । (ऐसा करने से तू) मुझे ही प्राप्त हो जायेगा (यह में) तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; (क्यों कि तू) मेरा अत्यन्त प्रिय है ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६ ॥
सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर ।

महाभारत ' के भीष्मपर्व के एक श्लोक में गीता की महत्ता बतलाते हुए कहा गया है कि एकमात्र गीता का ही पाठ किया जाना चाहिए , अन्य अनेक शास्त्रों के पाठ से क्या प्रयोजन ! यह गीता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखकमल से निःसृत हुई है

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता ।।
जो अपने आप श्रीविष्णु भगवान के मुखकमल से निकली हुई है वह गीता अच्छी तरह कण्ठस्थ करना चाहिए । अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या लाभ ? - महर्षि व्यास

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।
गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्।।
गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।
गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः।।

गीता मेरा हृदय है। गीता मेरा उत्तम सार है। गीता मेरा अति उग्र ज्ञान है। गीता मेरा अविनाशी ज्ञान है। गीता मेरा श्रेष्ठ निवासस्थान है। गीता मेरा परम पद है। गीता मेरा परम रहस्य है। गीता मेरा परम गुरु है। - **भगवान श्री कृष्ण**

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम:

विष्णु सहस्त्रनाम भगवान श्री हरि विष्णु अर्थात भगवान नारायण के 1000 नामों है जिसे जपने मात्र से मानव के समस्त दुख और कष्ट दूर हो जाते हैं और भगवान विष्णु की अगाध कृपा प्राप्त होती है।

विष्णु सहस्त्रनाम का जाप करने में कोई ज्यादा नियम विधि नहीं है परंतु मन में श्रद्धा और विश्वास अटूट होना चाहिए। जो भी श्रीहरि भगवान विष्णु के नामों का स्मरण करता है उसकी आयु, विद्या, यश, बल बढ़ने के साथ साथ वह संपन्नता, सफलता, आरोग्य और सौभाग्य प्राप्त करता है। उसकी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं और वह दैवीय सुख, ऐश्वर्य, संपदा के साथ-साथ संपन्नता का स्वामी बनता है। कम से कम 108 दिन, पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ, नॉनवेज, मदिरा, धूम्रपान त्याग करके बिना एक दिन टूटे करने का प्रण करें , कम से कम साल में एक बार नियम से 108 दिन, बाद में रोज एक बार कर कर सकते हैं(आप अपने लिए 24 घंटे में 15 मिनट नहीं निकाल सकते), आप खुद भगवान से मिले और प्रार्थना करें , किसी को भी बिच वाला पसंद नहीं होता तो आप अपने लिए खुद प्रार्थना करें, किसी से ना करवाएं, आपकी प्रार्थना में दर्द, एहसास होगा जो दूसरे में नहीं होगा

बौद्ध दर्शन का एक सूत्र वाक्य है '**अप्प दीपो भव**' अर्थात अपना प्रकाश स्वयं बनो। गौतम बुद्ध के कहने का मतलब यह है कि किसी दुसरे से उम्मीद लगाने की बजाये अपना प्रकाश (प्रेरणा) खुद बनो।

"**अप्प दीपो भव**" अर्थात अपना दीपक स्वयं बनो कोई भी किसी के पथ के लिए सदेव मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता केवल आत्मज्ञान और अंतरात्मा के प्रकाश से ही हम सत्य के मार्ग /लक्ष पर आगे बढ़ सकते हैं।
बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैसाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरी बैसाखी के सहारे चल लिए- कितनी दूर चलोगे?मंजिल तक न पहुंच पाओगे। आज मैं साथ हूं, कल मैं साथ न रहूंगा, फिर तुम्हें अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी साथ की रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी देर को संग-साथ हो गया है अंधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रा स्तेअलग हो जाएंगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी, तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। अप्प दीपो भव!

- अप्प दीपो भव :

जिसने देखा, उसने जाना ।
जिसने जाना, वो पा गया ।
जिसने पाया, वो बदल गया,
अगर नहीं बदला तो समझो कि
उसके जानने में ही कोई खोट था ।

बुद्धा ने जाना तो बुद्धा पहुचेंगे तुम नहीं , तुम बुद्धा की पूजा करने से नहीं पहुचोगे न ही किसी अन्य की पूजा करने से या चेला बनने से|तुम खुद जानोगे तभी तुम पहुचोगे

॥ तत्त्वमसि ॥

॥ वासुदेवः सर्वम् ॥

गीता का पहला अध्याय अर्जुन-विषाद योग है (सेना का सैन्य निरीक्षण)। इसमें 47 श्लोक हैं।

सारांश : कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में सेनाओं का अवलोकन ,
गलत सोच हि जीवन में एकमात्र समस्या है। मोह ही सारे तनाव व विषादों का कारण होता है।

कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में पांडवों और कौरवों की दो सेनाएं आमने-सामने हैं। कई संकेत पांडवों की जीत के संकेत देते हैं। पांडवों के चाचा और कौरवों के पिता धृतराष्ट्र, अपने पुत्रों की जीत की संभावना पर संदेह करते हैं और अपने सचिव संजय से युद्ध के मैदान के दृश्य का वर्णन करने के लिए कहते हैं।

पांच पांडव भाइयों में से एक, अर्जुन लड़ाई से ठीक पहले एक संकट से गुज़रता है। वह अपने परिवार के सदस्यों और शिक्षकों के लिए करुणा से अभिभूत है, जिन्हें वह मारने वाला है। मैं इनकी हत्या कैसे कर सकता हूँ यह सोचकर अर्जुन शोक और ग्लानि से भर उठता है। कृष्ण के सामने कई महान और नैतिक कारण प्रस्तुत करने के बाद कि वह युद्ध क्यों नहीं करना चाहते हैं, अर्जुन ने दु:ख से अभिभूत होकर अपने हथियार एक ओर रख दिए। लड़ने के लिए अर्जुन की अनिच्छा उनके दयालु हृदय को इंगित करती है; ऐसा व्यक्ति पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करने के योग्य होता है।

गीता के दूसरे अध्याय "सांख्य-योग" (गीता का सार) में कुल 72 श्लोक हैं।

सारांश : गीता की सामग्री का सारांश

सही ज्ञान हि हमारी समस्याओं का अंतिम समाधान है I शरीर नही आत्मा को समझों और आत्मा अजन्मा - अमर है।

श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि क्यों व्यर्थ चिंता करते हो। आत्मा तो अजर -अमर है। वह कभी नहीं मरती। सिर्फ यह शरीर मरता है।

यह संसार और इसके लोग तुम्हारे बनाये हुए नहीं है। इनके मोह में क्यों बँध रहे हो ! इनके खो जाने का क्यों शोक कर रहे हो। ये सब तो पहले ही मर चुके हैं। और कई बार पैदा भी हो चुके हैं।

तुम्हे सिर्फ धर्म की रक्षा के लिए यह युद्ध करना है। यही कर्म है। यह सुनकर अर्जुन श्री कृष्ण से कहता है कि अभी भी उसके मन में बहुत से संशय हैं। और उसे सब कुछ विस्तार से बतायें।

कृष्ण को अर्जुन के तर्कों से सहानुभूति नहीं है। बल्कि, वह अर्जुन को याद दिलाते हैं कि उसका कर्तव्य लड़ना है और उसे अपने दिल की कमजोरी पर काबू पाने का आदेश देते हैं। अर्जुन अपने रिश्तेदारों को मारने के प्रति घृणा और कृष्ण की इच्छा कि वह युद्ध करे, के बीच बटा हुआ है। व्यथित और भ्रमित, अर्जुन ने कृष्ण से मार्गदर्शन मांगा और उनका शिष्य बन गया।

कृष्ण अर्जुन के आध्यात्मिक गुरु की भूमिका निभाते हैं और उसे सिखाते हैं कि आत्मा शाश्वत है और उसे मारा नहीं जा सकता। युद्ध में मरना एक योद्धा को स्वर्गीय ग्रहों में बढ़ावा देता है, इसलिए अर्जुन को आनन्दित होना चाहिए कि जिन लोगों को वह मारने वाला है, वे श्रेष्ठ जन्म प्राप्त करेंगे। एक व्यक्ति शाश्वत रूप से एक व्यक्ति है। केवल उसका शरीर नष्ट होता है। इस प्रकार, शोक करने के लिए कुछ भी नहीं है।

युद्ध न करने का अर्जुन का निर्णय ज्ञान और कर्तव्य की कीमत पर भी, अपने रिश्तेदारों के साथ जीवन का आनंद लेने की इच्छा पर आधारित है। ऐसी मानसिकता व्यक्ति को भौतिक संसार से बांधे रखती है। कृष्ण अर्जुन को सलाह देते हैं कि वह बुद्धि-योग में संलग्न रहे, फल की आसक्ति से रहित कर्म करे। इस प्रकार युद्ध करके अर्जुन स्वयं को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर लेगा और ईश्वर में प्रवेश करने के योग्य हो जाएगा।

कृष्ण ने अर्जुन की अब तक दी हुई सब युक्तियों को प्रज्ञावाद का झूठा रूप कहा। उनकी युक्ति यह है कि प्रज्ञादर्शन काल, कर्म और स्वभाव से होनेवाले संसार की सब घटनाओं और स्थितियों को अनिवार्य रूप से स्वीकार करता है। जीना और मरना, जन्म लेना और बढ़ना, विषयों का आना और जाना। सुख और दुख का अनुभव, ये तो संसार में होते ही हैं, इसी को प्राचीन आचार्य पर्यायवाद का नाम भी देते थे। काल की चक्रगति इन सब स्थितियों को लाती है और ले जाती है। जीवन के इस स्वभाव को जान लेने पर फिर शोक नहीं होता। यही भगवान का व्यंग्य है कि प्रज्ञा के दृष्टिकोण को मानते हुए भी अर्जुन इस प्रकार के मोह में क्यों पड़ गया है।

ऊपर के दृष्टिकोण का एक आवश्यक अंग जीवन की नित्यता और शरीर की अनित्यता था। नित्य जीव के लिए शोक करना उतना ही व्यर्थ है जितना अनित्य शरीर को बचाने की चिंता। ये दोनों अपरिहार्य हैं। जन्म और मृत्यु बारी बारी से होते ही हैं, ऐसा समझकर शोक करना उचित नहीं है।

फिर एक दूसरा दृष्टिकोण स्वधर्म का है। जन्म से ही प्रकृति ने सबके लिए एक धर्म नियत कर दिया है। उसमें जीवन का मार्ग, इच्छाओं की परिधि, कर्म की शक्ति सभी कुछ आ जाता है। इससे निकल कर नहीं भागा जा सकता। कोई भागे भी तो प्रकृत्ति उसे फिर खींच लाती है।

इस प्रकार काल का परिवर्तन या परिमाण, जीव की नित्यता और अपना स्वधर्म या स्वभाव जिन युक्तियों से भगवान् ने अर्जुन को समझाया है उसे उन्होंने सांख्य की बुद्धि कहा है। इससे आगे अर्जुन के प्रश्न न करने पर भी उन्होंने योगमार्ग की बुद्धि का भी वर्णन किया। यह बुद्धि कर्म या प्रवृत्ति मार्ग के आग्रह की बुद्धि है इसमें कर्म करते हुए कर्म के फल की आसक्ति से अपने को बचाना आवश्यक है। कर्मयोगी के लिए सबसे बड़ा डर यही है कि वह फल की इच्छा के दल दल में फँस जाता है; उससे उसे बचना चाहिए।

अर्जुन को संदेह हुआ कि क्या इस प्रकार की बुद्धि प्राप्त करना संभव है। व्यक्ति कर्म करे और फल न चाहे तो उसकी क्या स्थिति होगी, यह एक व्यावहारिक शंका थी। उसने पूछा कि इस प्रकार का दृढ़ प्रज्ञावाला व्यक्ति जीवन का व्यवहार कैसे करता है? आना, जाना, खाना, पीना, कर्म करना, उनमें लिप्त होकर भी निर्लेप कैसे रहा जा सकता है? कृष्ण ने कितने ही प्रकार के बाह्य इंद्रियों की अपेक्षा मन के संयम की व्याख्या की है। काम, क्रोध, भय, राग, द्वेष के द्वारा मन का सौम्यभाव बिगड़ जाता है और इंद्रियाँ वश में नहीं रहतीं। इंद्रियजय ही सबसे बड़ी आत्मजय है। बाहर से कोई विषयों को छोड़ भी दे तो भी भीतर का मन नहीं मानता। विषयों का स्वाद जब मन से जाता है, तभी मन प्रफुल्लित, शांत और सुखी होता है। समुद्र में नदियाँ आकर मिलती हैं पर वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। ऐसे ही संसार में रहते हुए, उसके व्यवहारों को स्वीकारते हुए, अनेक कामनाओं का प्रवेश मन में होता रहता है। किंतु उनसे जिसका मन अपनी मर्यादा नहीं खोता उसे ही शांति मिलती हैं। इसे प्राचीन अध्यात्म परिभाषा में गीता में ब्राह्मीस्थिति कहा है।

गीता का उपदेश अत्यन्त पुरातन योग है। श्री भगवान् कहते हैं इसे मैंने सबसे पहले सूर्य से कहा था। सूर्य ज्ञान का प्रतीक है अतः श्री भगवान् के वचनों का तात्पर्य है कि पृथ्वी उत्पत्ति से पहले भी अनेक स्वरूप अनुसंधान करने वाले भक्तों को यह ज्ञान दे चुका हूँ। यह ईश्वरीय वाणी है जिसमें सम्पूर्ण जीवन का सार है एवं आधार है। मैं कौन हूँ? यह देह क्या है? इस देह के साथ क्या मेरा आदि और अन्त है? देह त्याग के पश्चात् क्या मेरा अस्तित्व रहेगा? यह अस्तित्व कहाँ और किस रूप में होगा? मेरे संसार में आने का क्या कारण है? मेरे देह त्यागने के बाद क्या होगा, कहाँ जाना होगा? किसी भी जिज्ञासु के हृदय में यह बातें निरन्तर घूमती रहती हैं। हम सदा इन बातों के बारे में सोचते हैं और अपने को, अपने स्वरूप को नहीं जान पाते। गीता शास्त्र में इन सभी के प्रश्नों के उत्तर सहज ढंग से श्री भगवान् ने धर्म संवाद के माध्यम से दिये हैं। इस देह को जिसमें 36 तत्व जीवात्मा की उपस्थिति के कारण जुड़कर कार्य करते हैं, क्षेत्र कहा है और जीवात्मा इस क्षेत्र में निवास करता है, वही इस देह का स्वामी है परन्तु एक तीसरा पुरुष भी है, जब वह प्रकट होता है; अधिदैव अर्थात् 36 तत्वों वाले इस देह (क्षेत्र) को और जीवात्मा (क्षेत्रज्ञ) का नाश कर डालता है। यही उत्तम पुरुष ही परम स्थिति और परम सत् है। यही नहीं, देह में स्थित और देह त्यागकर जाते हुए जीवात्मा की गति का यथार्थ वैज्ञानिक एंव तर्कसंगत वर्णन गीता शास्त्र में हुआ है। जीवात्मा नित्य है और आत्मा (उत्तम पुरुष) को जीव भाव की प्राप्ति हुई है। शरीर के मर जाने पर जीवात्मा अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों में विचरण करता है। गीता का प्रारम्भ धर्म शब्द से होता है तथा गीता के अठारहवें अध्याय के अन्त में इसे धर्म संवाद कहा है। धर्म का अर्थ है धारण करने वाला अथवा जिसे धारण

किया गया है। धारण करने वाला जो है उसे आत्मा कहा गया है और जिसे धारण किया है वह प्रकृति है। आत्मा इस संसार का बीज अर्थात पिता है और प्रकृति गर्भधारण करने वाली योनि अर्थात माता है।

धर्म शब्द का प्रयोग गीता में आत्म स्वभाव एवं जीव स्वभाव के लिए जगह जगह प्रयुक्त हुआ है। इसी परिपेक्ष में धर्म एवं अधर्म को समझना आवश्यक है। आत्मा का स्वभाव धर्म है अथवा कहा जाय धर्म ही आत्मा है। आत्मा का स्वभाव है पूर्ण शुद्ध ज्ञान, ज्ञान ही आनन्द और शान्ति का अक्षय धाम है। इसके विपरीत अज्ञान, अशांति, क्लेश और अधर्म का द्योतक है।

आत्मा अक्षय ज्ञान का स्रोत है। ज्ञान शक्ति की विभिन्न मात्रा से क्रिया शक्ति का उदय होता है, प्रकृति का जन्म होता है। प्रकृति के गुण सत्त्व, रज, तम का जन्म होता है। सत्त्व-रज की अधिकता धर्म को जन्म देती है, तम-रज की अधिकता होने पर आसुरी वृत्तियाँ प्रबल होती और धर्म की स्थापना अर्थात गुणों के स्वभाव को स्थापित करने के लिए, सतोगुण की वृद्धि के लिए, अविनाशी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त आत्मा अपने संकल्प से देह धारण कर अवतार गृहण करती है।

सम्पूर्ण गीता शास्त्र का निचोड़ है बुद्धि को हमेशा सूक्ष्म करते हुए महाबुद्धि आत्मा में लगाये रक्खो तथा संसार के कर्म अपने स्वभाव के अनुसार सरल रूप से करते रहो। स्वभावगत कर्म करना सरल है और दूसरे के स्वभावगत कर्म को अपनाकर चलना कठिन है क्योंकि प्रत्येक जीव भिन्न भिन्न प्रकृति को लेकर जन्मा है, जीव जिस प्रकृति को लेकर संसार में आया है उसमें सरलता से उसका निर्वाह हो जाता है। श्री भगवान ने सम्पूर्ण गीता शास्त्र में बार-बार आत्मरत, आत्म स्थित होने के लिए कहा है। स्वाभाविक कर्म करते हुए बुद्धि का अनासक्त होना सरल है अतः इसे ही निश्चयात्मक मार्ग माना है। यद्यपि अलग-अलग देखा जाय तो ज्ञान योग, बुद्धि योग, कर्म योग, भक्ति योग आदि का गीता में उपदेश दिया है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो सभी योग बुद्धि से श्री भगवान को अर्पण करते हुए किये जा सकते हैं इससे अनासक्त योग निष्काम कर्म योग स्वतः सिद्ध हो जाता है।

नैनं छिद्रन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक: ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥ (द्वितीय अध्याय, श्लोक 23)
आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग उसे जला सकती है। न पानी उसे भिगो सकता है, न हवा उसे सुखा सकती है।

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महिम्।
तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय:॥ (द्वितीय अध्याय, श्लोक 37)
यदि तुम युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हो तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और यदि विजयी होते हो तो धरती का सुख को भोगोगे.. इसलिए उठो, हे कौन्तेय , और निश्चय करके युद्ध करो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (द्वितीय अध्याय, श्लोक 47)
कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है, लेकिन कर्म के फलों में कभी नहीं... इसलिए कर्म को फल के लिए मत करो और न ही काम करने में तुम्हारी आसक्ति हो।

योग: कर्मसु कौशलम'' (गीता 2/50)
अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्मयोग साधना में मनुष्य बिना कर्म बंधन में बंधे कर्म करता है तथा वह सांसारिक कर्मों को करते हुए भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

कर्मयोग का गूढ़ रहस्य अर्जुन को बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! शास्त्रों के द्वारा नियत किये गये कर्मों को भी आसक्ति त्यागकर ही करना चाहिए क्योंकि फलासक्ति को त्यागकर किये गये कर्मों में मनुष्य नहीं बंधता। इसीलिए इस प्रकार वे कार्य मुक्तिदायक होते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फल की इच्छा का त्याग करने पर कर्मों की प्रवृत्ति नहीं रहेगी, जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि कर्म तो कर्तव्य की भावना से किये जाते हैं तथा यही कर्मयोग भी सीखाता है।

कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे-धीरे सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करने लगता है, और साधक में भक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक परमात्मा में अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है-

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ (द्वितीय अध्याय, श्लोक 62)
विषयों वस्तुओं के बारे में सोचते रहने से मनुष्य को उनसे आसक्ति हो जाती है। इससे उनमें कामना यानी इच्छा पैदा होती है और कामनाओं में विघ्न आने से क्रोध की उत्पत्ति होती है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (द्वितीय अध्याय, श्लोक 63)
क्रोध से मनुष्य की मति मारी जाती है यानी मूढ़ हो जाती है जिससे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति-भ्रम हो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश हो जाने पर मनुष्य खुद का अपना ही नाश कर बैठता है।

॥ तत्त्वमसि ॥

गीता का तीसरा अध्याय कर्मयोग है, इसमें 43 श्लोक हैं।

सारांश : कर्म - योग

प्रगति और समृद्धि का एकमात्र तरीका निःस्वार्थता है। कर्तापन और कर्मफल के विचार को ही छोड़ना है, कर्म को कभी नही।

श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन हर किसी को इस संसार में अपना कर्म करना चाहिए। लेकिन फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। किसी भी चीज में आसक्त हुए बिना कर्म करना चाहिए। और वह कर्म, धर्म के अनुसार किया जाना चाहिए।

सारे कर्मों को ईश्वर को समर्पित किया जाना चाहिए।

यदि तुम युद्ध नहीं भी करते हो तो वह भी एक कर्म ही होगा। लेकिन इससे धरती पर बुरे लोगों की संख्या बढ़ जाएगी। जिसकी वजह से पाप फ़ैल जायेगा। इसलिए तुम मोह त्याग कर युद्ध करो। यही तुम्हारा कर्म है।

अर्जुन अब भी असमंजस में है। वह सोचता है कि बुद्धि-योग का अर्थ है कि व्यक्ति को सक्रिय जीवन से निवृत्त होना चाहिए और तपस्या करनी चाहिए। लेकिन कृष्ण कहते हैं, झगड़ा नहीं करना! लेकिन इसे त्याग की भावना से करें और सभी परिणामों को सर्वोच्च को अर्पित करें। यह सर्वोत्तम शुद्धि है। बिना आसक्ति के काम करने से, व्यक्ति परम को प्राप्त करता है।

भगवान की प्रसन्नता के लिए यज्ञ करना भौतिक समृद्धि और पाप कर्मों से मुक्ति की गारंटी देता है। आत्मज्ञानी व्यक्ति भी अपने कर्तव्य से कभी नहीं हटता। वह दूसरों को शिक्षित करने के लिए कार्य करता है।

अर्जुन तब भगवान से पूछता है कि ऐसा क्या है जो किसी को पाप कर्मों में संलग्न करता है। कृष्ण उत्तर देते हैं कि यह वासना है जो किसी को पाप करने के लिए प्रेरित करती है। यह वासना व्यक्ति को मोहित कर देती है और भौतिक जगत में उलझा देती है। वासना खुद को इंद्रियों, मन और बुद्धि में प्रस्तुत करती है, लेकिन आत्म-नियंत्रण से इसका प्रतिकार किया जा सकता है।

सांख्य और योग इन दोनों मार्गों में आप किसे अच्छा समझते हैं और क्यों नहीं यह निश्चित कहते कि मैं इन दोनों में से किसे अपनाऊँ? इसपर कृष्ण ने भी उतनी ही स्पष्टता से उत्तर दिया कि लोक में दो निष्ठाएँ या जीवनदृष्टियाँ हैं-सांख्यवादियों के लिए ज्ञानयोग है और कर्ममार्गियों के लिए कर्मयोग है। यहाँ कोई व्यक्ति कर्म छोड़ ही नहीं सकता। प्रकृति तीनों गुणों के प्रभाव से व्यक्ति को कर्म करने के लिए बाध्य करती है। कर्म से बचनेवालों के प्रति एक बड़ी शंका है, वह यह कि वे ऊपर से तो कर्म छोड़ बैठते हैं पर मन ही मन उसमें डूबे रहते हैं। यह स्थिति असह्य है और इसे कृष्ण ने गीता में मिथ्याचार कहा है। मन में कर्मेंद्रियों को रोककर कर्म करना ही सरल मानवीय मार्ग है। कृष्ण ने चुनौती के रूप में यहाँ तक कह दिया कि कर्म के बिना तो खाने के लिए अन्न भी नहीं मिल सकता। फिर कृष्ण ने कर्म के विधान को चक्र के रूप में उपस्थित किया। न केवल सामाजिक धरातल पर भिन्न व्यक्तियों के कर्मचक्र अरों की तरह आपस में पिरोए हुए हैं बल्कि पृथ्वी के मनुष्य और स्वर्ग के देवता दोनों का संबंध भी कर्मचक्र पर आश्रित है। प्रत्यक्ष है कि यहाँ मनुष्य कर्म करते हैं, कृषि करते हैं और दैवी शक्तियाँ वृष्टि का जल भेजती हैं। अन्न और पर्जन्य दोनों कर्म से उत्पन्न होते हैं। एक में

मानवीय कर्म, दूसरे में दैवी कर्म। फिर कर्म के पक्ष में लोकसंग्रह की युक्ति दी गई है, अर्थात् कर्म के बिना समाज का ढाँचा खड़ा नहीं रह सकता। जो लोक के नेता हैं, जनक जैसे ज्ञानी हैं, वे भी कर्म में प्रवृत्ति रखते हैं। कृष्ण ने स्वयं अपना ही दृष्टांत देकर कहा कि मैं नारायण का रूप हूँ, मेरे लिए कुछ कर्म शेष नहीं है। फिर भी तंद्रारहित होकर कर्म करता हूँ और अन्य लोग मेरे मार्ग पर चलते हैं। अंतर इतना ही है कि जो मूर्ख हैं वे लिप्त होकर कर्म करते हैं पर ज्ञानी असंग भाव से कर्म करता है। गीता में यहीं एक साभिप्राय शब्द बुद्धिभेद है। अर्थात् जो साधारण समझ के लोग कर्म में लगे हैं उन्हें उस मार्ग से उखाड़ना उचित नहीं, क्योंकि वे ज्ञानवादी बन नहीं सकते, और यदि उनका कर्म भी छूट गया तो वे दोनों ओर से भटक गये

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।। (गीता 3/5)
अर्थात् इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सभी मानव प्रकृतिजनित गुणों के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होते हैं। मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करने होते हैं और ये कर्म ही बन्धन के कारण होते हैं। साधारण अवस्था में किये गये कर्मों में आसक्ति बनी रहती है, जिससे कई प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य जीवन-मरण के चक्र में फंसा रहता है। जबकि ये कर्म यदि अनासक्त भाव से किये जाते हैं तो यह मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बन जाते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (तृतीय अध्याय, श्लोक 21)
श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण यानी जो-जो काम करते हैं, दूसरे मनुष्य (आम इंसान) भी वैसा ही आचरण, वैसा ही काम करते हैं। वह (श्रेष्ठ पुरुष) जो प्रमाण या उदाहरण प्रस्तुत करता है, समस्त मानव-समुदाय उसी का अनुसरण करने लग जाते हैं।

- **कर्म योग क्या है**

कर्म शब्द कृ धातु से बनता है। कृ धातु में 'मन' प्रत्यय लगने से कर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। कर्म योग एक ऐसा रास्ता है, जो कर्म के माध्यम से मोक्ष की ओर ले जाता है। मोक्ष चेतना की अंतिम अवस्था होती है। भगवत गीता के अनुसार, वैराग्य भाव रखते हुए अपने कर्म करने चाहिए। दिनभर दासों की तरह काम करने से एक ओर स्वार्थ का भाव पैदा होता है, तो दूसरी ओर अपने दिमाग को नियंत्रित रखते हुए कर्म करने से अनासक्ति और आनंद की प्राप्ति होती है ।

- **भगवदगीता में तीन प्रकार के कर्म बताये है जो इस प्रकार है -**

1. **कर्म -** शास्त्र के अनुकूल, वेदों के अनुकूल किये गये कर्म।
2. **अकर्म -** अकर्म का अर्थ है कर्म का अभाव यानि तुष्णी अभाव।
3. **विकर्म -** अर्थात जो निशिद्ध (पाप) कर्म है वह विकर्म है।

- कर्म योग के दो प्रकार होते हैं, जिनमें पहला सकाम कर्म और दूसरा निष्काम कर्म है। सकाम कर्म और निष्काम कर्म क्या है, इसके बारे में नीचे विस्तार से जानें।

1. **सकाम कर्म –** जब कोई भी व्यक्ति खुद के लाभ के लिए काम करता है, तो वह सकाम कर्म में आता है। यह व्यक्ति के सामाजिक और व्यापारिक दोनों तरह के काम पर लागू होता है। इस तरह के कर्म में व्यक्ति के

मन में स्वार्थ भाव रहता है, जो उन्हें लोभी बनता है। सकाम कर्म व्यक्ति के जन्म व मृत्यु चक्र में अहम भूमिका निभाता है।
2. **निष्काम कर्म** – जब कोई व्यक्ति किसी काम को स्वार्थहीनता भाव से करता है, तो उसे ही निष्काम कर्म कहते है। ऐसे व्यक्ति के मन में किसी तरह की लालसा और अहंकार की भावना नहीं होती है। इस कर्म को करने वाला व्यक्ति सभी को एक समान समझता है। साथ ही एकता और दूसरों की मदद करने में भरोसा रखता है। निष्काम कर्म व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है, जो व्यक्ति को असीम शांति देता है।

- **योग जगत में कर्म तीन प्रकार के होते हैं।**
  - ✓ **संचित**

    वे संचित कार्य जिन्हें आपने अतीत में पूरा किया है। इन्हें बदला नहीं जा सकता है, लेकिन केवल अमल में आने की प्रतीक्षा कर सकते हैं। यह कर्म का विशाल संचय है जिसमें हमारे अनगिनत पिछले जन्म शामिल हैं। इसमें वे सभी कार्य शामिल हैं जो आपने अपने पिछले और वर्तमान जीवन में किए हैं।

  - ✓ **प्रारब्ध**

    प्रारब्ध पिछले कर्म का वह हिस्सा है जो वर्तमान के लिए जिम्मेदार है। ये परिपक्व और फलदायी क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं हैं। जो चीजें आपने अतीत में कीं, वे आपको वह बनाती हैं जो आप आज हैं। इसे टाला या बदला नहीं जा सकता है, लेकिन केवल अनुभव करके समाप्त किया जा सकता है।

  - ✓ **क्रियमाण**

    क्रियमाण कर्म वह कर्म है जिसे हम वर्तमान क्षण में यहीं अपने लिए बना रहे हैं। यह वह क्रिया है जिसे हम बनाते हैं और जो चुनाव हम अभी करते हैं, क्योंकि हम इस वर्तमान जीवन को जीते है।

कर्म के ये तीनों पहलू एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं। **"जैसा आप सोचते हैं वैसा ही आप होंगे" वर्तमान क्षण के हमारे विकल्प और कार्य भविष्य में हमारे कर्म बन जाएंगे।**

कर्म को समझने का लाभ यह है कि यह व्यक्ति को अहितकर कार्यों को करने से हतोत्साहित करता है क्योंकि यह दुख लाएगा। इसके बजाय, यह खुशी को उनके फल के रूप में लाने के लिए अच्छाई और दया करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अभी हम जो कुछ भी सोचते हैं या करते हैं वह उस तरह के भविष्य का निर्माण करता है जो उन विचारों और कार्यों से संबंधित होता है।

कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे हैं, उन सबको करने वाले ईश्वर ही हैं। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बंधन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं।
कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्मयोग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

- **कर्म के भेद मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है -**

1. विहित कर्म
2. निशिद्ध कर्म

1. विहित कर्म -

विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी चार भेद है -

- ✓ **नित्य कर्म -** नित्य कर्म कर्म का अर्थ है, प्रतिदिन किये जाने वाला कर्म जैसे सन्ध्या पूजा, अर्चना, वन्दना इत्यादि।
- ✓ **नैमित्तिक कर्म -** जो कर्म किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है उदाहरणार्थ, किसी त्योहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि, जैसे पूत्र के जन्म होने पर जातकर्म, बड़े होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि।
- ✓ 3.**काम्य कर्म -** ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है। जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पूत्र की प्राप्ति के लिए, स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ, वर्षा को रोकने के लिए, अकाल पड़ने पर वर्षा करने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इच्छा के लिए दान इत्यादि ये काम्य कर्म है।
- ✓ **प्रायश्चित कर्म -** प्रायश्चित कर्म जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि अगर व्यरक्ति से कोई अनैतिक काम या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिए वो जो कर्म करता है उसके प्रायश्चित कर्म कहते है तथा जन्म -जन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के लिए तपचर्यादि इत्यादि प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

2. निषिद्ध कर्म -

निशिद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नहीं है, चोरी, हिंसा, झूठ, व्याभिचार इत्यादि कर्म निशिद्धकर्म है। हम जो भी कर्म करते है हमारा मन (आत्म, तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज के अनुसार कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात परमेश्वर का भय न करते हुए हम जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है।

कर्म योग करने के फायदे

कर्म योग से व्यक्ति को कई प्रकार के लाभ हो सकते हैं। ये फायदे व्यक्ति के जीवन को खुशहाल बनाने और शांति से जीवन व्यतीत करने में मदद करते हैं।

कर्म योग करने के फायदे कुछ इस प्रकार नजर आ सकते हैं।

✓ **मन को शांत रखता है**

कर्म योग करने के फायदे में सबसे पहला मन को शांत रखना है। दरअसल, इस योग को जीवन में लागू करने वालों के मन में कभी भी दूसरों के प्रति बुरे ख्याल नहीं आते हैं और न ही उनका मन अपने काम को लेकर विचलित होता है। इस योग से मन की शांति में सुधार हो सकता है, जिससे मानसिक समस्याओं को भी दूर रखने में मदद मिल सकती है।

✓ **धर्य को बढ़ता है**

कर्म योग व्यक्ति के धर्य को बढ़ावा देता है। इस योग के दौरान व्यक्ति को कई ऐसे काम करने होते हैं, जिसके लिए उन्हें ज्यादा धर्य रखना पड़ता है। साथ ही इस योग के दौरान क्रोध और अहंकार को भी त्यागना होता है, जो व्यक्ति के धर्य भाव को खुद-ब-खुद बढ़ाने का काम करते हैं।

✓ **एकाग्रता को बढ़ता है**

व्यक्ति के जीवन में एकाग्रता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अगर किसी भी काम में आगे बढ़ना है, तो उस काम को पूरी एकाग्रता के साथ करना होता है। कर्म योग यही सिखाता है कि अपने कर्म को अच्छे से करना चाहिए। किसी भी कार्य को सही से करने के लिए उस पर पूरी तरह ध्यान देना होता है। जब भी हम किसी कार्य पर सही से ध्यान देने की कोशिश करते हैं, तो एकाग्रता को बढ़ावा मिलता है। कर्म योग से पुरानी बातों को भूलने और आने वाली चीजों पर ध्यान केंद्रित करने की भी सीख मिलती है ।

✓ **कार्य क्षमता में सुधार**

कर्म योग करने के फायदे में कार्य क्षमता में सुधार भी शामिल है। कर्म योग करने वाले अपने और दूसरों के कार्य में मदद करने की भावना रखते हैं, जिससे कि वो न सिर्फ अपना काम सही तरीके से करते हैं, बल्कि अपने साथी की भी मदद करते हैं। इससे व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता बढ़ सकती है।

✓ **नकारात्मकता दूर करे**

कर्म योगी का अपने काम के प्रति सकारात्मक विचार होता है, जो उनके मन से हर तरह की नकारात्मकता को दूर कर सकता है। इससे व्यक्ति को जीवन में सफलतां की प्राप्ति होती है, क्योंकि कर्म योगी अपनी विफलता को भी सकारत्मक तरीके से लेते हैं और उस काम के लिए दोगुनी मेहनत करते हैं ।

- **कर्म योग के सिद्धांत** सकाम कर्म और निष्काम कर्मयोग क्या है जानने के बाद इसके सिद्धांतों को समझना भी जरूरी है।

- **कर्म योग के मार्ग को अपनाने वालों को इन सिद्धांतों का पालन करना होता है।**

✓ **अच्छी सोच** – कर्म योगी को अच्छी सोच रखने की जरूरत होती है, उन्हें हर व्यक्ति और काम के प्रति अच्छा विचार रखना होता है। व्यक्ति को अपना काम करते समय प्रेम भाव और अच्छा रवैया रखना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के जीवन, परिवार या किसी अन्य काम के प्रति खराब सोच नहीं रखनी चाहिए।

✓ **सही उद्देश्य** – किसी भी काम को लालच और बुरे उद्देश्य से नहीं करना चाहिए। हर काम के प्रति मन में साफ ख्याल होने चाहिए। साथ ही उस काम से किसी तरह के लाभ का विचार मन में नहीं आना चाहिए। अगर कोई किसी की मदद करता है, तो बदले में किसी तोहफा की इच्छा न रखें।

✓ **कर्तव्य का पालन** – कर्म योग को जो भी अपनाना चाहता है, उन्हें अपने हर कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। वह किसी भी काम को बहाना बनाकर नहीं छोड़ सकते। कर्म योगी को हर काम के प्रति लगन और निष्ठा रखनी होगी और उसे उसके मुकाम तक पहुंचाना होगा।

✓ **हर काम में अच्छा प्रदर्शन** – एक कर्म योगी को अपने हर काम में पूरी मेहनत और लग्न दिखानी होगी। किसी भी कार्य में कोताही कर्म योगी के सिद्धांत के खिलाफ है। इससे काम का अच्छा परिणाम मिलने में मदद मिलती है।

✓ **परिणाम की चिंता न करना** – निष्काम कर्म योग करने वाले अपने कार्य के फल और परिणाम दोनों के बारे में नहीं सोचते हैं। वो सिर्फ कर्म करने की भावना रखते हैं, उन्हें फल की लालसा नहीं होती है। ऐसे में अगर कोई कर्म योग को अपना चाह रहा है, तो उन्हें अपने काम से मिलने वाले परिणाम की चिंता करना छोड़ना होगा।

✓ **सेवा भाव** – कर्म योगी को व्यक्ति ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी आदि की भी सेवा करनी होता है। वो किसी भी व्यक्ति और जीव-जन्तु में भेदभाव नहीं करते और सभी के प्रति सम्मान और प्रेम भाव रखते हैं।

- ✓ **अनुशासित रहना** – कर्म योग का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत अनुशासित रहना है, जो भी व्यक्ति इसे अपनाता है, उन्हें अनुशासन का पालन करना होगा। उन्हें सरकारी कानून हो या घर के नियम किसी को भी भंग नहीं करना होगा। इन सभी सिद्धांतों का सही से पालन करने वाला ही सच्चा कर्म योगी कहलाता है।
- ✓ व्यक्ति को इसी जीवन में स्वर्ग और नरक दोनों का अनुभव होता है, जो व्यक्ति जैसा कार्य करता है, वैसा ही फल पाता है। अपने जीवन को अच्छा और महान बनाने के लिए कर्म योग को अपना सकते हैं।

योग सूत्र के अनुसार कर्म

महर्षि पतंजलि ने कैवल्यपाद के सातवें सूत्र में कर्म के भेद बताये है। कर्म के चार भेद है -

- ✓ **शुक्लकर्म -** जो कर्म श्रेष्ठ है अर्थात वेदों में बताई गई विद्याओं के आधार पर जो कर्म किये जाते है। इस शुक्ल कर्म से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है।
- ✓ **कृष्ण कर्म -** जो कर्म पाप कर्म है उन्हे कृष्ण कर्म कहा है। अर्थात शास्त्र विरूद्ध पापकर्मो को कृष्णकर्म कहा गया है। इन कृष्ण कर्मो से दुख तथा नरक की प्राप्ति होती है तथा इन कर्मो के फलों को जन्म जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है।
- ✓ **शुक्लकृष्णकर्म -** ऐसे कर्म जो पाप व पुण्य के मिश्रण हो। कहा गया है कि शुक्ल कृष्णकर्म से पुन: मनुष्य को जन्म की प्राप्ति होती है।
- ✓ **अशुक्लकृष्णकर्म -** जो न तो पाप कर्म हो न पुण्य कर्म और न पाप-पुण्य मिश्रित कर्म हो इन सब से भिन्न ये कर्म निष्काम कर्म है क्योंकि ये कर्म किसी भी कामना के नहीं किये जाते है। इन कर्मो को करने से अन्त:करण की शुद्धि होती है। अन्त:करण शुद्ध पवित्र तथा दर्पण की भॉंति स्वच्छ छवि वाला निर्मल बन जाता है। शीघ्र ही ऐसे साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान (आत्मा के ज्ञान) की प्राप्ति होती है या अन्त में निश्चित उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

गीता का चौथा अध्याय है , ज्ञान कर्म संन्यास योग (दिव्य ज्ञान), जिसमें 42 श्लोक हैं।

सारांश : पारलौकिक ज्ञान -प्रत्येक कार्य प्रार्थना का कार्य हो सकता है। सारे कर्मों को ईश्वर को अर्पण करके करना ही कर्म सन्यास है।

इस अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने **गीता** का पौराणिक इतिहास बताया है।
भगवान कहते हैं कि जब -जब धर्म का नाश होता है वे अवतार लेते हैं। पापियों को दण्डित करते हैं। लेकिन जो उन्हें सम्पर्पित हो जाता है उसकी रक्षा करते हैं। यह युद्ध उनके द्वारा ही रचा गया है। ताकि पापियों को दण्डित किया जा सके।

भगवद गीता का विज्ञान सबसे पहले कृष्ण ने सूर्यदेव विवस्वान को बताया था। विवस्वान ने अपने वंशजों को विज्ञान पढ़ाया, जिन्होंने इसे मानवता को सिखाया। ज्ञान के संचारण की इस प्रणाली को शिष्य उत्तराधिकार कहा जाता है।

जब कभी और जहाँ भी धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का उदय होता है, कृष्ण भौतिक प्रकृति से अछूते अपने मूल दिव्य रूप में प्रकट होते हैं। जो भगवान के पारलौकिक स्वभाव को समझता है वह मृत्यु के समय भगवान के शाश्वत निवास को प्राप्त करता है।

हर कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण को आत्मसमर्पण करता है, और कृष्ण किसी के समर्पण के अनुसार प्रतिफल देते हैं। कर्म के फल को परमेश्वर को अर्पण करके, लोग धीरे-धीरे पारलौकिक ज्ञान के स्तर तक ऊपर उठ जाते हैं। अज्ञानी और विश्वासहीन लोग जो शास्त्रों के प्रकट ज्ञान पर संदेह करते हैं, वे न तो कभी सुखी हो सकते हैं और न ही भगवद्भावनामृत प्राप्त कर सकते हैं।

ज्ञान प्राप्त करके कर्म करते हुए भी कर्मसंन्यास का फल किस उपाय से प्राप्त किया जा सकता है। यहीं गीता का वह प्रसिद्ध आश्वासन है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब तब मनुष्यों के बीच भगवान का अवतार होता है, अर्थात् भगवान की शक्ति विशेष रूप से मूर्त होती है।

यहीं पर एक वाक्य विशेष ध्यान देने योग्य है- क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा । 'कर्म से सिद्धि'- इससे बड़ा प्रभावशाली जय सूत्र गीतादर्शन में नहीं है। किंतु गीतातत्व इस सूत्र में इतना सुधार और करता है कि वह कर्म असंग भाव से अर्थात् फलासक्ति से बचकर करना चाहिए।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत:।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (चतुर्थ अध्याय, श्लोक 7)
हे भारत, जब-जब धर्म का लोप होता है और अधर्म में वृद्धि होती है, तब-तब मैं धर्म के अभ्युत्थान के लिए स्वयम् की रचना करता हूं अर्थात अवतार लेता हूं।

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥ (चतुर्थ अध्याय, श्लोक 8)
सज्जन पुरुषों के कल्याण के लिए और दुष्कर्मियों के विनाश के लिए... और धर्म की स्थापना के लिए मैं युगों-युगों से प्रत्येक युग में जन्म लेता आया हूं।

श्रद्धावान्ल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (चतुर्थ अध्याय, श्लोक 39)
श्रद्धा रखने वाले मनुष्य, अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने वाले मनुष्य, साधनपारायण हो अपनी तत्परता से ज्ञान प्राप्त करते हैं, फिर ज्ञान मिल जाने पर जल्द ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त होते हैं।

- ✓ **कर्म योग-** मनुष्य शरीर कर्म योनि में आता है ।यह मनुष्य शरीर ही कर्म प्रधान शरीर है । हमें कर्म योगी होना चाहिए । बिना कुछ कर्म किए बाकी के सारे योग हम कैसे सिद्ध करेंगे, । तो सबसे अहम योग यही है। इसमें मनुष्य कर्म फल और आसक्ति(लगाव) का त्याग कर जीवन मुक्त अवस्था का अनुभव करता है I

- ✓ **ज्ञान योग** के माध्यम से हम ईश्वर तत्त्व को समझते हैं । जिससे कि हम ईशवर की महानता को जानने का प्रयास कर सकते हैं । और उसे पाने के साधनों का पता लगाने की कोशिश करते हैं । लाभ-हानि, जय-पराजय ,सुख-दुख, आदि में समान दृष्टि रखना ज्ञान योग कहलाता है इसमें मन को इस प्रकार ढाला जाता हैं कि किसी भी अवस्था में मन विचलित न हो और हर अवस्था को एक समान मानकर मनुष्य जीवन मुक्त अवस्था का अनुभव करता है

- ✓ **भक्ति योग** के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। किसी सद्गुरु की शरण में जाकर वह हमें ईश्वर तक पहुंचने का रास्ता दिखाता है । इसमें मनुष्य अपने आप को सम्पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर जीवन मुक्त अवस्था का अनुभव करता है

राजयोग ही भक्ति योग का नाम है , जो सभी योग क्रियाओं में सर्वोच्च है अर्थात सभी योग साधनाओं का राजा है । इसलिए इसे राजयोग कहते हैं । ईश्वर को प्राप्त करने के लिए यही एकमात्र ऐसा साधन है , जिस से हम भगवद् प्राप्ति कर सकते हैं ।इसमें मनुष्य करता भाव त्याग देता है स्वयं को निमित यानी माध्यम मान प्रकृति को करता जान और ईश्वर को कारण जानकर जीवन मुक्त अवस्था का अनुभव करता है

भक्ति का अर्थ परमात्मा, या इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम।

ऐसी लागी लगन, मीरा होगई मगन, वो तो गली गली हरि गुण गाने लगी।ये हरिगुण गाना ही भक्ति है। अब जिसे हरि की जानकारी हो ,जिसे हरि के गुण पता हो वही तो हरिगुण गा पायेगा ना। ससुरदासजी और नृसिंह मेहता तो श्रीकृष्ण को पुत्रवत जाने लगे थे। प्रहलाद जी श्रीहरि पिता समान प्रेम करते थे। हनुमानजी स्वामी भाव से जानते थे। तो अर्जुन मित्रभाव से। तात्पर्य सभी भक्तों का इष्ट उनके अपने अन्तरङ्ग के समान अत्यन्त निकट होने से वे अपनें इष्ट को बहुत अच्छे से जानते थे।

जो योगी है वही भक्त है वही ज्ञानि है। जो भक्त है वही योगी है। वही ज्ञानि है। और जो ज्ञानि है वही योगी है, वही भक्त है।

भक्ति, योग और ज्ञान तीनों मार्ग अलग अलग न होते हुए एक ही है। परस्पर पुरक है। अतः तीनों में से किसी विशेष को अच्छा नही कहा जा सकता। सब समान ही है।

कर्म संन्यास योग गीता का पांचवां अध्याय है (कर्म वैराग्य योग) जिसमें 29 श्लोक हैं।

सारांश : कर्मयोग - कृष्णभावनामृत में कर्म -व्यक्तित्व अपने अहंकार को त्यागें और अनंतता के आनंद में गोता लगायें। मैं कर्ता हूँ- यह भाव ही अहंकार है, जिसे त्यागना और सम रहना ही ज्ञान मार्ग है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि सन्यास का मतलब है सांसारिक वस्तुओं से विरक्त होकर ईश्वर की उपासना करना। लेकिन सन्यास लेने के लिए हर किसी को वन – गमन की जरुरत नहीं है।
अपना कर्म करते हुए यदि भौतिक सुखों से मोह – भंग कर लिया जाये तो भी मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

अर्जुन अभी भी असमंजस में है कि क्या बेहतर है: काम का त्याग या भक्ति में काम। कृष्ण बताते हैं कि भक्ति सेवा बेहतर है। चूँकि सब कुछ कृष्ण का है, त्याग करने के लिए कुछ भी अपना नहीं है। इस प्रकार जिसके पास जो कुछ भी हो उसे कृष्ण की सेवा में उपयोग करना चाहिए। ऐसी चेतना में काम करने वाला व्यक्ति त्यागी है। यह प्रक्रिया, जिसे कर्म योग कहा जाता है, व्यक्ति को सकाम कर्म के परिणाम से बचने में मदद करती है - पुनर्जन्म में फँसना।

जो अपने मन और इंद्रियों को नियंत्रित करके भक्ति में काम करता है, वह दिव्य चेतना में है। यद्यपि उसकी इन्द्रियाँ इन्द्रियविषयों में लगी हुई हैं, वह पृथक है, शान्ति और सुख में स्थित है।

कर्म के साथ जो मन का संबंध है, उसके संस्कार पर या उसे विशुद्ध करने पर विशेष ध्यान दिलाया गया है। यह भी कहा गया है कि ऊँचे धरातल पर पहुँचकर सांख्य और योग में कोई भेद नहीं रह जाता है। किसी एक मार्ग पर ठीक प्रकार से चले तो समान फल प्राप्त होता है। जीवन के जितने कर्म हैं, सबको समर्पण कर देने से व्यक्ति एकदम शांति के ध्रुव बिंदु पर पहुँच जाता है और जल में खिले कमल के समान कर्म रूपी जल से लिप्त नहीं होता।

भगवान श्रीकृष्ण इस अध्याय में कर्मयोग और साधु पुरुष का वर्णन करते हैं। तथा बताते हैं कि मैं सृष्टि के हर जीव में समान रूप से रहता हूँ अतः प्राणी को समदर्शी होना चाहिए।

‘ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति य:।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा।। गीता 5/10
अर्थात् ब्रह्म को अर्पित करके अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता: समदर्शिन:

"ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा को देखने वाले होते हैं।"

योग - योग का अर्थ केवल शरीर को तोड़ना मरोड़ना नही बल्कि यह एक प्रकार की साधना है,जो जीवन मे आन्तरिक खुशहाली लाने के अलावा चित्त को शान्त रखती है। योग मानसिक अवसाद को कम करने के साथ-साथ कई तरह की बीमारियों को खत्म करने मे भी कारगर है। नियमित योग अभ्यास से व्यक्ति की ऊर्जा एवं आन्तरिक चेतना स्थिर रहती है। नियमित योग साधना करने वाले व्यक्तियो की मानसिक शक्ति अन्य लोगो की तुलना मे बेहतर होती है। यौगिक परंपरा मे भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग का विशेष महत्व है।
भक्तियोग, कर्मयोग ,राजयोग ,ज्ञानयोग ,हठयोग ,अष्टांगयोग ,कुडलिनीयोग ,मंत्रयोग ,जपयोग आदि योग के प्रकार है ।

भावनायोग / प्राणसंयमयोग योग के दो प्रमुख भेद बताये जाते है ।

- ✓ भावनायोग के प्रकार है भक्तियोग , ज्ञानयोग , कर्मयोग इनका अभ्यास भावना , श्रध्दा या विश्वासपर अवलंबित होता है , इसलिए इसे भावनायोग कहते है ।
- ✓ प्राणसंयम के प्रकार हठयोग , अष्टांगयोग , कुंडलिनीयोग , मंत्रयोग इ . इनमें श्वासोश्वास को नियंत्रित किया जाता है । जैसे आसन , प्राणायाम , ओंकारजप ,सोहम् जिसका अर्थ है "मैं वह हूं "।

॥ तत्त्वमसि ॥

आत्मसंयम योग गीता का छठा अध्याय है (ध्यान योग)जिसमें 47 श्लोक हैं।

सारांश : ध्यानयोग - साक्षीभाव दृढ करे । आत्मसंयम के बिना मन को नही जीता जा सकता है और बिना मन जीते योग नही हो सकता।

ध्यान करने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर काबू पा सकता है। बाहर की चीजों से ध्यान हटाकर सिर्फ परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

निरंतर अभ्यास करते रहने से, ध्यान करने वाला योगी बन जाता है। उसे सच्चे सुख प्राप्त होने लगते हैं। उसे किसी भी चीज की चिंता और डर नहीं रहता।

ध्यान की आखिरी अवस्था समाधि होती है। इस अवस्था में पहुँचकर योगी को ईश्वर के दर्शन होते हैं।

रहस्यवादी योग की प्रक्रिया भौतिक गतिविधियों की समाप्ति पर जोर देती है। फिर भी सच्चा रहस्यवादी वह नहीं है जो कोई कर्तव्य नहीं करता। एक वास्तविक योगी फल के प्रति आसक्ति या इन्द्रियतृप्ति की इच्छा के बिना कर्तव्य के अनुसार कार्य करता है। वास्तविक योग में हृदय के भीतर परमात्मा से मिलना और उनकी आज्ञा का पालन करना शामिल है। यह एक नियंत्रित दिमाग की मदद से हासिल किया जाता है। ज्ञान और बोध के माध्यम से, व्यक्ति भौतिक अस्तित्व (गर्मी और सर्दी, सम्मान और अपमान, आदि) के द्वैत से अप्रभावित हो जाता है। खाने, सोने, काम करने और मनोरंजन के नियमन से योगी अपने शरीर, मन और गतिविधियों पर नियंत्रण हासिल कर लेता है और पारलौकिक आत्म पर अपने ध्यान में स्थिर हो जाता है। अंततः, वह समाधि को प्राप्त करता है, जो पारलौकिक अर्थों के माध्यम से पारलौकिक आनंद का आनंद लेने की क्षमता की विशेषता है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (षष्ठ अध्याय, श्लोक 5)
अपने द्वारा अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है । **अप्प दीपो भव'** अर्थात अपना प्रकाश स्वयं बनो

- ✓ **मानव शरीर अस्थायी और आत्मा स्थायी है:**

भगवान श्री कृष्ण ने मनुष्य के शरीर को महज एक कपड़े का टुकड़ा बताया है। अर्थात एक ऐसा कपड़ा जिसे आत्मा हर जन्म में बदलती है। अर्थात मानव शरीर, आत्मा का अस्थायी वस्त्र है, जिसे हर जन्म में बदला जाता है। इसका आशय यह है कि हमें शरीर से नहीं उसकी आत्मा से व्यक्ति की पहचान करनी चाहिए। जो लोग मनुष्य के शरीर से आर्कषित होते हैं या फिर मनुष्य के भीतरी मन को नहीं समझते हैं ऐसे लोगों के लिए गीता का यह उपदेश बड़ी सीख देने वाला है।

✓ जीवन का एक मात्र सत्य है वो है मृत्यु:

श्री कृष्ण ने कहा है कि हर इंसान के द्वारा जन्म-मरण के चक्र को जान लेना बेहद आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य के जीवन का मात्र एक ही सत्य है और वो है मृत्यु। क्योंकि जिस इंसान ने इस दुनिया में जन्म लिया है। उसे एक दिन इस संसार को छोड़ कर जाना ही है और यही इस दुनिया का अटल सत्य है।

✓ गुस्से पर काबू करना चाहिए क्योंकि क्रोध से व्यक्ति का नाश हो जाता है:

गीता के उपदेश में कहा है कि 'क्रोध से भ्रम पैदा होता है और भ्रम से बुद्धि का विनाश होता है। वहीं जब बुद्धि काम नहीं करती है तब तर्क नष्ट हो जाता है और व्यक्ति का नाश हो जाता है।इस तरह हर व्यक्ति को अपने गुस्से पर काबू करना चाहिए, क्योंकि क्रोध भी भ्रम पैदा करता है। इंसान गुस्से में कई बार ऐसे काम करते हैं जिससे उन्हें काफी हानि पहुंचती है।वहीं अगर क्रोध पर काबू नहीं किया गया तो इंसान कई गलत कदम उठा लेता है। वहीं जब क्रोध की भावना इंसान के मन में पैदा होती है तो हमारा मस्तिष्क भी सही और गलत के बीच अंतर करना छोड़ देता है, इसलिए इंसान को हमेशा क्रोध के हालातों से बचकर हमेशा शांत रहना चाहिए। क्योंकि गुस्से में लिया गया फैसला इंसान को गहरी क्षति पहुंचाता है।

✓ व्यक्ति अपने कर्मों को नहीं छोड़ सकता है:

श्री कृष्ण ने बताया है कि कोई भी व्यक्ति अपने कर्म को नहीं छोड़ सकता है अर्थात् जो साधारण समझ के लोग कर्म में लगे रहते हैं उन्हें उस मार्ग से हटाना ठीक नहीं है Iवहीं अगर उनका कर्म भी छूट गया तो वे दोनों तरफ से भटक जाएंगे। प्रकृति व्यक्ति को कर्म करने के लिए बाध्य करती है। जो व्यक्ति कर्म से बचना चाहता है वह ऊपर से तो कर्म छोड़ देता है लेकिन मन ही मन उसमे डूबा रहता है। अर्थात जिस तरह व्यक्ति का स्वभाव होता है वह उसी के अनूरुप अपने कर्म करता है।

✓ मनुष्य को देखने का नजरिया:

मनुष्य को देखने के नजरिए पर भी संदेश दिया गया है, इसमें लिखा गया है जो ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान और कर्म को एक रूप में देखता है, उसी का नजरिया सही है। और जो अज्ञानी पुरुष होता है, उसे ज्ञान नहीं होने की वजह से वह हर किसी चीज को गलत नजरिए से देखता है।

✓ इंसान को अपने मन को काबू में रखना चाहिए:

गीता में उन लोगों के लिए संदेश दिया गया है जो लोग अपने मन को काबू में नहीं रखते हैं क्योंकि ऐसे लोगों का मन इधऱ-उधर भटकता रहता है और उनके लिए वह शत्रु के समान काम करता है। मन, व्यक्ति के मस्तिक पर भी गहरा प्रभाव डालता है जब व्यक्ति का मन सही होता है तो उसका मस्तिक भी सही तरीके से काम करता है।

✓ खुद का आकलन करें:

गीता में यह भी उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को पहले खुद का आकलन करना चाहिए और खुद की क्षमता को जानना चाहिए क्योंकि मनुष्य को अपने 'आत्म-ज्ञान की तलवार से काटकर अपने ह्रदय से अज्ञान के संदेह को अलग कर देना चाहिए। जब तक मनुष्य खुद के बारे में नहीं जानेगा तब तक उसका उद्धार नहीं हो सकता है।

✓ **मनुष्य को खुद पर विश्वास करना चाहिए:**

श्री कृष्ण ने उपदेश दिया है कि हर मनुष्य को खुद पर पूरा भरोसा रखना चाहिए क्योंकि जो लोग खुद पर भरोसा करते हैं वह निश्चय ही सफलता हासिल करते हैं। वहीं इंसान जैसा विश्वास करता है वह वैसा ही बन जाता है।

✓ **अच्छे कर्म करें और फल की इच्छा ना करें:**

जो लोग कर्म नहीं करते और पहले से ही परिणाम के बारे में सोचते हैं ऐसे लोगों के लिए गीता सार का यह उपदेश बड़ी सीख देने वाला है।इसमें श्री कृष्ण ने कहा है कि इंसान को अपने अच्छे कर्म करते रहना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए कि इसका क्या परिणाम होगा क्योंकि कर्म का फल हर इंसान को मिलता है। इसलिए इंसान को इस तरह की चिंता को अपने मन में जगह नहीं देनी चाहिए कि उसके कर्म का फल क्या होगा या फिर किसी काम को करने के बाद वह खुश रहेंगे या नहीं।अर्थात कर्म करने के दौरान इंसान को इसके परिणाम के बारे में बिल्कुल भी चिंता नहीं करना चाहिए और किसी भी काम को चिंता मुक्त होकर शुरु करना चाहिए।

✓ **मनुष्य की इंद्रियों का संयम ही कर्म और ज्ञान का निचोड़ है:**

जाहिर है कि मनुष्य के सुख और दुख में मन की स्थिति एक जैसी नहीं रहती है। सुख में मनुष्य ज्यादा उत्साहित हो जाता है और दुख में वह बेकाबू हो जाता है। इसलिए सुख और दुख दोनों में ही मनुष्य के मन की समान स्थिति हो इसे योग ही कहा जाता है।वहीं जब मनुष्य सभी सांसारिक इच्छाओं का त्याग करके बिना फल की इच्छा के कोई काम करता है तो उस समय वह मनुष्य योग मे स्थित कहलाता है। और जो मनुष्य मन को वश में कर लेता है, उसका मन ही उसका सबसे अच्छा मित्र बन जाता है, लेकिन जो मनुष्य अपने मन को वश में नहीं कर पाता है, उसके लिए वह मन ही उसका सबसे बड़ा दुश्मन बन जाता है।वहीं जो मनुष्य अपने अशांत मन को वश में कर लेते हैं, उनको परमात्मा की प्राप्ति होती है और जिस मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसके लिए सुख-दु:ख, सर्दी-गर्मी और मान-अपमान सब एक समान हो जाते हैं।ऐसा मनुष्य स्थिर चित्त और इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान द्वारा परमात्मा को प्राप्त करके हमेशा सन्तुष्ट रहता है।

✓ **खुद पर पूरा भरोसा रखे और अपने लक्ष्य को पाने के लिए लगातर प्रयास करें:**

गीता के इस उपदेश को अगर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में पालन करे तो निश्चय ही वह एक सफल व्यक्ति बन सकता है। जो लोग पूरे विश्वास के साथ अपने लक्ष्य को पाने का प्रयास करते हैं। वह निश्चय ही अपने लक्ष्य को पा लेते हैं, लेकिन मनुष्य को अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए लगातार चिंतन / कर्म करते रहना चाहिए।

✓ **तनाव से दूर रहने का संदेश:**

भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि लोगों को तनाव से दूर रहना चाहिए क्योंकि तनाव इंसान को सफल होने से रोकता है।

✓ **अपना काम को प्राथमिकता दें और इसे पहले करें:**

अपने काम को पहले प्राथमिकता दें और पहले अपने काम को पूरा करने की कोशिश करें तभी दूसरे का काम करें क्योंकि जो लोग पहले अपने काम को नहीं करते और दूसरें का काम करते रहते हैं। वे लोग अक्सर परेशान रहते हैं।

✓ **लोक में जितने देवता हैं, सब एक ही भगवान की विभूतियां हैं:**

सब एक ही भगवान की विभूतियां हैं। जो लोग भगवान के अलग-अलग रुपों की पूजा करते हैं और उनकी अलग-अलग शक्तियों में भरोसा रखते हैं। ऐसे लोगों के लिए यह जान लेना बेहद जरूरी है कि सभी एक ही भगवान की विभूतियां हैं। मनुष्य के अच्छे गुण और अवगुण भगवान की शक्ति के ही रूप हैं। इसका सार यह है कि लोक में जितने देवता हैं, सभी एक ही भगवान, की विभूतियां हैं। वहीं कोई पीपल को पूज रहा है। तो कोई पहाड़ को कोई नदी या समुद्र को। असंख्य देवता हैं जिनका कोई अंत नहीं है। लोग अपनी-अपनी आस्था के मुताबिक देवी-देवताओं के अलग-अलग स्वरूपों की पूजा करते हैं लेकिन सभी एक ही भगवान की विभूतियां हैं। **वासुदेवः सर्वम् I**

✓ **जो लोग भगवान का सच्चे मन से ध्यान लगाते हैं वह पूर्ण सिद्ध योगी माने जाते हैं**

जो लोग सच्चे मन से भगवान की आराधना करते हैं और अपना पूरा ध्यान भगवान की भक्ति में लगाते हैं वे लोग पूर्ण सिद्ध योगी माने जाते हैं।वहीं जो मनुष्य परमात्मा के सर्वव्यापी, अकल्पनीय, निराकार, अविनाशी, अचल स्थित स्वरूप की उपासना करता है और अपनी सभी इन्द्रियों को वश में करके, सभी परिस्थितियों में समान भाव से रहते हुए सभी प्राणीयों के हित में लगा रहता है उस पर ईश्वर की कृपा जरूर बरसती है।गीता सार में महाभारत के युद्ध में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन अपने मन को मुझमें ही स्थिर कर और अपनी बुद्धि को मुझमें ही लगा। इस तरह तू निश्चित रूप से मुझमें ही हमेशा निवास करेगा। वहीं अगर तू ऐसा नहीं कर सकता है, तो भक्ति-योग के अभ्यास द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा पैदा कर सकता है। इस तरह तू मेरे लिये कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्ति रूपी परम-सिद्धि को प्राप्त करेगा।

✓ **अपने काम को मन लगाकर करें और अपने काम में खुशी खोजें:**

जो लोग अपने काम को मन लगाकर करते हैं और अपने काम में खुशी ढूंढ लेते हैं वे लोग निश्चत ही सफलता प्राप्त करते हैं। वहीं दूसरी तरफ कई लोग ऐसे भी होते हैं जो किसी काम को बोझिल समझकर उस काम को सिर्फ निपटाने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग किसी काम को ढ़ंग से नहीं कर पाते हैं और अपने जीवन में पीछे / दुखी रह जाते हैं।

✓ **'किसी भी तरह की अधिकता इंसान के लिए बन सकती है बड़ा खतरा:**

इंसान के लिए किसी भी तरह की अधिकता घातक साबित हो सकती है। जिस तरह संबंधों में कड़वाहट हो या फिर मधुरता, खुशी हो या गम, हमें कभी भी "अति" नहीं करनी चाहिए।जीवन में संतुलन बनाए रखना बहुत जरूरी है। जब तक मनुष्य के जीवन में संतुलन नहीं रहेगा वह सुख से अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकेगा अर्थात मनुष्य को जरूरत से ज्यादा कोई भी चीज करने से बचना चाहिए और अपनी जिंदगी में संतुलन बनाकर रखना चाहिए।

✓ **स्वार्थी नहीं बनें:**

जो लोग दूसरी की भलाई पर ध्यान नहीं देते और सिर्फ अपना मतलब साधने में लगे रहते हैं उन लोगों का कभी भला नहीं होता।आपको बता दें कि इंसान का स्वार्थ उसे अन्य लोगों से दूर ले जाकर नकारात्मक हालातों की तरफ धकेलता है। जिसके चलते व्यक्ति अकेला रह जाता है। वहीं अगर आप चाहते हैं कि आप भी अपना जीवन खुशीपूर्वक व्यतीत करें तो इसके लिए यह जरूरी है कि, आप अपने स्वार्थ को कभी अपने पास नहीं आने दें क्योंकि स्वार्थी मनुष्य दोस्ती भी सिर्फ अपना स्वार्थ निकालने के लिए करते हैं।

- **ईश्वर हमेशा मनुष्य का साथ देता है:आपने अक्सर यह सुना होगा कि जिसका कोई नहीं होता उसका भगवान होता है।** गीता सार में भी यह कहा भी गया है कि ईश्वर हमेशा मनुष्यों का साथ देता है। वहीं जब व्यक्ति इस प्रभावशाली सत्य को मान लेता है तो उसका जीवन पूरी तरह बदल जाता है। सृष्टि निर्माता ईश्वर ही है जो सम्पूर्ण जगत को चला रहा है।

  वहीं इंसान तो बस ईश्वर की हाथ की एक कठपुतली है, इसलिए इंसान को कभी अपने भविष्य या फिर अतीत की चिंता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हर विकट परस्थिति में ईश्वर इंसान का साथ देता है और उसे मुश्किल से बाहर निकालता है इसलिए हम सभी को ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए।

- **संदेह की आदत इंसान के दुख का कारण बनती है:**

जिन लोगों में शक या संदेह की आदत होती है या फिर जो लोग जरूरत से ज्यादा शक करते हैं। ऐसे लोगों के लिए श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि पूर्ण सत्य की खोज या फिर संदेह की आदत इंसान के दुख का कारण बनती है। क्योंकि शक करना एक ऐसी आदत है जो कि मजबूत से मजबूत रिश्ते को भी खोखला कर देती है। वहीं जिज्ञासा होना भी लाजमी है लेकिन पूरी तरह सत्य की खोज या फिर संदेह ही इंसान के दुख का कारण बनती है और शक करने वाले इंसान बाद में इसका पाश्चाताप करते हैं।

जितने विषय हैं उन सबसे इंद्रियों का संयम-यही कर्म और ज्ञान का निचोड़ है। सुख में और दुख में मन की समान स्थिति, इसे ही योग कहते हैं।

॥ तत्त्वमसि ॥

ज्ञानविज्ञान योग गीता का सातवां अध्याय है (भगवद्ज्ञान की प्राप्ति) , जिसमें 30 श्लोक हैं।

सारांश : निरपेक्ष का ज्ञान - अमल करें / कर्म करें जो आप सीखते हैं - जाानते हैं। त्रिकालज्ञ ईश्वर को जानना ही भक्ति का कारण होना चाहिए, यही ज्ञानयोग है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि ब्रह्माण्ड की हर चीज उनकी ही बनायी हुई है। हर चीज में वे विद्धमान हैं। सूर्य, धरती, ग्रह , नक्षत्र, तारामंडल, ज्ञान , विज्ञान, इन्द्रियां, सुख -दुःख, पाप -पुण्य आदि सब उनके बनाये हुए हैं। जो मनुष्य इस बात को ज्ञान के द्वारा समझ जाते हैं वे ईश्वर को समर्पित हो जाते हैं। जबकि जो संदेह करते हैं वे संसार की भौतिक वस्तुओं को समर्पित हो जाते हैं। और यही उनके दुखों का कारण बना रहता है। उन्हें कभी बैकुंठ (मोक्ष) प्राप्त नहीं होता और बार -बार मृत्यु लोक में जन्म लेना पड़ता है। तथा सांसारिक दुःख भोगने पड़ते हैं। **वासुदेवः सर्वम् I**

कृष्ण स्वयं को सभी भौतिक और आध्यात्मिक ऊर्जाओं के मूल के रूप में प्रकट करते हैं। यद्यपि उनकी ऊर्जा भौतिक प्रकृति को प्रकट करती है, तीन अवस्थाओं (अच्छाई, जुनून और अज्ञानता) के साथ, कृष्ण भौतिक नियंत्रण में नहीं हैं। लेकिन बाकी सभी हैं, सिवाय उनके जिन्होंने उनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया है।

कृष्ण हर चीज का सार हैं; पानी का स्वाद, अग्नि में गर्मी, आकाश में ध्वनि, सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश, मनुष्य में क्षमता, पृथ्वी की मूल सुगंध, बुद्धिमानों की बुद्धि और सभी जीवों का जीवन।

चार प्रकार के पुरुष कृष्ण को समर्पण करते हैं, और चार प्रकार के नहीं करते। जो लोग समर्पण नहीं करते हैं वे कृष्ण की अस्थायी, मायावी शक्ति से आच्छादित रहते हैं और उन्हें कभी नहीं जान सकते, लेकिन पवित्र लोग भक्ति सेवा के लिए आत्मसमर्पण करने के पात्र बन जाते हैं। उनमें से, जो यह समझते हैं कि कृष्ण सभी कारणों के कारण हैं, भक्ति सेवा में बड़े दृढ़ संकल्प के साथ संलग्न होते हैं और कृष्ण के प्रिय हो जाते हैं। ये दुर्लभ आत्माएं उन्हें अवश्य प्राप्त करेंगी।

सातवें अध्याय की संज्ञा ज्ञानविज्ञान योग है। ये प्राचीन भारतीय दर्शन की दो परिभाषाएँ हैं। उनमें भी विज्ञान शब्द वैदिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण था। सृष्टि के नानात्व का ज्ञान विज्ञान है और नानात्व से एकत्व की ओर प्रगति ज्ञान है। ये दोनों दृष्टियाँ मानव के लिए उचित हैं। इस प्रसंग में विज्ञान की दृष्टि से अपरा और परा प्रकृति के इन दो रूपों की जो सुनिश्चित व्याख्या यहाँ गीता ने दी है, वह अवश्य ध्यान देने योग्य है। अपरा प्रकृति में आठ तत्व हैं, पंचभूत, मन, बुद्धि और अहंकार। जिस अंड से मानव का जन्म होता है। उसमें ये आठों रहते हैं। किंतु यह प्राकृत सर्ग है अर्थात् यह जड़ है। इसमें ईश्वर की चेष्टा के संपर्क से जो चेतना आती है उसे परा प्रकृति कहते हैं; वही जीव है। आठ तत्वों के साथ मिलकर जीवन नवाँ तत्व हो जाता है। इस अध्याय में भगवान के अनेक रूपों का उल्लेख किया गया है जिनका और विस्तार विभूतियोग नामक दसवें अध्याय में आता है। यहीं विशेष भगवती दृष्टि का भी उल्लेख है जिसका सूत्र-वासुदेव: सर्वमिति, सब वसु या शरीरों में एक ही देवतत्व है, उसी की संज्ञा विष्णु है। किंतु लोक में अपनी अपनी रु चि के अनुसार अनेक नामों और रूपों में उसी एक देवतत्व की उपासना की जाती है। वे सब ठीक हैं। किंतु अच्छा यही है कि बुद्धिमान मनुष्य उस ब्रह्मतत्व को पहचाने जो अध्यात्म विद्या का सर्वोच्च शिखर है।

पंचतत्व, मन, बुद्धि भी मैं हूँ| मैं ही संसार की उत्पत्ति करता हूँ और विनाश भी मैं ही करता हूँ। मेरे भक्त चाहे जिस प्रकार भजें परन्तु अंततः मुझे ही प्राप्त होते हैं। मैं योगमाया से अप्रकट रहता हूँ और मुर्ख मुझे केवल साधारण मनुष्य ही समझते हैं।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।7.21।।

जो-जो भक्त जिस-जिस देवताका श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहता है, उस-उस देवताके प्रति मैं उसकी श्रद्धाको दृढ़ कर देता हूँ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।7.26।।

जो प्राणी भूतकालमें हो चुके हैं, तथा जो वर्तमानमें हैं और जो भविष्यमें होंगे, उन सब प्राणियोंको तो मैं जानता हूँ; परन्तु मेरेको कोई (मूढ़ मनुष्य) नहीं जानता।

ज्ञानयोग क्या है

ज्ञानयोग से तात्पर्य है – 'विशुद्ध आत्मस्वरूप का ज्ञान' या 'आत्मचैतन्य की अनुभूति' है। इसे उपनिषदों में ब्रह्मानुभूति भी कहा गया है। और यह भी कहा गया है की –
"ऋते ज्ञानन्न मुक्तिः" ज्ञान के विना मुक्ति संभव नहीं है –
ज्ञानयोग के साहित्य में उपनिषत्, गीता, तथा आचार्य शंकर के अद्वैत ग्रन्थ तथा उन पर भाष्यपरक ग्रन्थ हैं। इन्हीं से ज्ञान योग की परम्परा दृढ़ होती है। आधुनिक युग में विवेकानन्द ,ओशो आदि विचारकों के विचार भी इसमें समाहित होते हैं।

ज्ञानयोग का स्वरूप

ज्ञानयोग दो शब्दों से मिलकर बना है – "ज्ञान" तथा "योग"। ज्ञान शब्द के कई अर्थ किये जाते हैं –

- लौकिक ज्ञान – वैदिक ज्ञान,
- साधारण ज्ञान एवं असाधारण ज्ञान
- प्रत्यक्ष ज्ञान – परोक्ष ज्ञान

किन्तु ज्ञानयोग में उपरोक्त मन्तव्यों से हटकर अर्थ सन्निहित किया गया है। ज्ञान शब्द की उत्पत्ति "ज्ञ" धातु से हुयी है, जिससे तात्पर्य है – जानना। इस जानने में केवल वस्तु (Object) के आकार प्रकार का ज्ञान समाहित नहीं है, वरन् उसके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति भी समाहित है। इस प्रकार ज्ञानयोग में यही अर्थ मुख्य रूप से लिया गया है।
ज्ञानयोग में ज्ञान से आशय अधोलिखित किये जाते हैं –

- आत्मस्वरूप की अनुभूति
- ब्रह्म की अनूभूति
- सच्चिदानन्द की अनुभूति
- विशुद्ध चैतन्य की अवस्था

- **ज्ञानयोग के दार्शनिक आधार**

ज्ञानयोग जिस दार्शनिक आधार को अपने में समाहित करता है, वह है ब्रह्म (चैतन्य) ही मूल तत्त्व है उसी की अभिव्यक्ति समस्त सृष्टि है। इस प्रकार मूल स्वरूप का बोध होना अर्थात् ब्रह्म की अनूभूति होना ही वास्तविक अनुभूति या वास्तविक ज्ञान है। एवं इस अनुभूति को कराने वाला ज्ञानयोग है।

व्यक्ति परमात्मा को ज्ञान मार्ग से पाना चाहता है । वह इस संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं से सन्तुष्ट होने वाला नहीं है । अनेक ग्रन्थों के अवलोकन से भी उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । उसकी आत्मा सत्य को उसके प्रकृत रूप में देखना चाहती है और उस सत्य-स्वरूप का अनुभव करके, तद्रूप होकर, उस सर्वव्यापी परमात्मा के साथ एक होकर सत्ता के अन्तराल में समा जाना चाहती है । ऐसे दार्शनिक के लिए तो ईश्वर उसके जीवन का जीवन है, उसकी आत्मा की आत्मा है । ईश्वर स्वयं उसी की आत्मा है । ऐसी कोई अन्य वस्तु शेष ही नहीं रह जाती, जो ईश्वर न हो , **वासुदेवः सर्वम् I**

- **ज्ञानयोग की विधि**

विवेकानन्द के अनुसार ज्ञानयोग के अन्तर्गत सबसे पहले निषेधात्मक रूप से उन सभी वस्तुओं से ध्यान हटाना है जो वास्तविक नहीं हैं, फिर उस पर ध्यान लगाना है जो हमारा वास्तविक स्वरूप है –
अर्थात् सत् चित् आनन्द।

उपनिषदों में इसे ब्रह्म वाक्य कहा गया है। इसके अन्तर्गत ब्रह्मवाक्यों श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन को कहा गया है।

- ✓ श्रवण (उपनिषदों में कही गयी बातों को सुनना या पढ़ना)
- ✓ मनन (श्रवण किये गये मन्तव्य पर चिन्तन करना)
- ✓ निदिध्यासन (सभी वस्तुओं से अपना ध्यान हटाकर साक्षी पक्षी की तरह बन जाना, स्वयं को तथा संसार को ब्रह्ममय समझने से ब्रह्म से एकत्व स्थापित हो जाता है)

- **ब्रह्म वाक्य प्रधान रूप से चार माने गये हैं –**

कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद "शुकरहस्योपनिषद " में महर्षि व्यास के आग्रह पर भगवान शिव उनके पुत्र शुकदेव को चार महावाक्यों का उपदेश 'ब्रह्म रहस्य' के रूप में देते हैं। वे चार महावाक्य ये हैं-

- ✓ ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म,
- ✓ ॐ अहं ब्रह्मास्मि,
- ✓ ॐ तत्त्वमसि,
- ✓ ॐ अयमात्मा ब्रह्म
- ✓ **प्रज्ञानं ब्रह्म**

  इस महावाक्य का अर्थ है- 'प्रकट ज्ञान ब्रह्म है।' वह ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म जानने योग्य है । वह विशुद्ध-रूप, बुद्धि-रूप, मुक्त-रूप और अविनाशी रूप है। वही सत्य, ज्ञान और सच्चिदानन्द-स्वरूप ध्यान करने योग्य है। उस महातेजस्वी देव का ध्यान करके ही हम 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकते हैं। वह परमात्मा सभी प्राणियों में जीव-रूप में विद्यमान है। वह सर्वत्र अखण्ड विग्रह-रूप है। वह हमारे चित और अहंकार पर सदैव नियन्त्रण करने वाला है। जिसके द्वारा प्राणी देखता, सुनता, सूंघता, बोलता और स्वाद-अस्वाद का अनुभव करता है, वह प्रज्ञान है। वह सभी में समाया हुआ है। वही 'ब्रह्म' है। **वासुदेवः सर्वम् I**

✓ **अहं ब्रह्माऽस्मि**

इस महावाक्य का अर्थ है- 'मैं ब्रह्म हूं।' यहाँ 'अस्मि' शब्द से ब्रह्म और जीव की एकता का बोध होता है। जब जीव परमात्मा का अनुभव कर लेता है, तब वह उसी का रूप हो जाता है। दोनों के मध्य का द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। उसी समय वह 'अहं ब्रह्मास्मि' कह उठता है।

✓ **तत्त्वमसि**

इस महावाक्य का अर्थ है-'वह ब्रह्म तुम्हीं हो।' सृष्टि के जन्म से पूर्व, द्वैत के अस्तित्त्व से रहित, नाम और रूप से रहित, एक मात्र सत्य-स्वरूप, अद्वितीय 'ब्रह्म' ही था। वही ब्रह्म आज भी विद्यमान है। उसी ब्रह्म को 'तत्त्वमसि' कहा गया है। वह शरीर और इन्द्रियों में रहते हुए भी, उनसे परे है। आत्मा में उसका अंश मात्र है। उसी से उसका अनुभव होता है, किन्तु वह अंश परमात्मा नहीं है। वह उससे दूर है। वह सम्पूर्ण जगत में प्रतिभासित होते हुए भी उससे दूर है।

✓ **अयमात्मा ब्रह्म**

इस महावाक्य का अर्थ है- 'यह आत्मा ब्रह्म है।' उस स्वप्रकाशित परोक्ष (प्रत्यक्ष शरीर से परे) तत्त्व को 'अयं' पद के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अहंकार से लेकर शरीर तक को जीवित रखने वाली अप्रत्यक्ष शक्ति ही 'आत्मा' है। वह आत्मा ही परब्रह्म के रूप में समस्त प्राणियों में विद्यमान है। सम्पूर्ण चर-अचर जगत में तत्त्व-रूप में वह संव्याप्त है। वही ब्रह्म है। वही आत्मतत्त्व के रूप में स्वयं प्रकाशित 'आत्मतत्त्व' है।अन्त में भगवान शिव शुकदेव से कहते हैं- 'हे शुकदेव ! इस सच्चिदानन्द- स्वरूप 'ब्रह्म' को, जो तप और ध्यान द्वारा प्राप्त करता है, वह जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।'गुरु मुख से इनके श्रवण के वास्तविक अर्थ की अनुभूति ही ज्ञानयोग की प्राप्ति कही गयी है।

गीता के अनुसार ज्ञान के प्रकार –

- **तार्किक ज्ञान** :

वस्तुओं के बाह्य रूप को देखकर उनके स्वरूप की चर्चा बुद्धि के द्वारा करता है। बौद्धिक अथवा तार्किक ज्ञान को 'विज्ञान' कहा जाता है। तार्किक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत विद्यमान रहता है

- **आध्यात्मिक ज्ञान :**

वस्तुओं के आभास में व्याप्त सत्यता का निरूपण करने का प्रयास करता है। जबकि आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। । आध्यात्मिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत नष्ट हो जाता है। ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन से होने वाला आत्मा का ज्ञान है जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर लेता है व सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को देखता है। वह विषयों में ईश्वर को और ईश्वर में सब को देखता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये मानव को अभ्यास करना पड़ता है।

श्रीमद भगवत गीता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की विधि

✓ जो व्यक्ति ज्ञान चाहता है उसे शरीर, मन और इन्द्रियों को शुद्ध रखना पड़ता है।

✓ इन्द्रियाँ और मन स्वभावत: चंचल होते हैं जिसके फलस्वरूप वे विषयों के प्रति आसक्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मन दूषित होता है, कर्मों के कारण अशुद्ध हो जाता है। यदि मन और इन्द्रियों को शुद्ध नहीं किया जाये तो साधक ईश्वर /लक्ष से मिलने से वंचित हो जाता है। क्योंकि ईश्वर /लक्ष अशुद्ध वस्तुओं को नहीं स्वीकार करता है।

- ✓ मन और इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर ईश्वर पर केन्द्रीभूत कर देना भी आवश्यक माना जाता हैं इस क्रिया का फल यह होता है कि मन की चंचलता नष्ट हो जाती है और वह ईश्वर के अनुशीलन में व्यस्त हो जाता है।
- ✓ जब साधक को ज्ञान हो जाता है तब आत्मा और ईश्वर में तादात्म्य का सम्बन्ध हो जाता है। वह समझने लगता है कि आत्मा ईश्वर का अंग है। इस प्रकार की तादात्म्यता का ज्ञान इस प्रणाली का तीसरा अंग है।

आत्मा अविनाशी है , अमर है , सर्वव्यापी है , ऐसा अनुभव चित्तशुध्दि के बाद ही आता है । अविद्या , अस्मिता , अज्ञान इनकी वजहसे मनुष्यको दु:ख सहना पड़ता है । उनसे मुक्ति पाने के लिये ज्ञानयोग मदद करता है ।

- **ज्ञानयोग साधना के दो प्रकार है : १) बहिरंग साधना २) अन्तरंग साधना**

१)बहिरंग साधना:

- **नित्यानित्य वस्तू विवेक**: सत्य और असत्य , नित्य और अनित्य का फरक जानना । नित्य वस्तू को नित्य और अनित्य वस्तूओको अनित्य समझ ही नित्यानित्य वस्तू विवेक है ।
- **वैराग्य**: भोग विलास और कर्म फलोंसे सर्वथा विमुख हो जाना ही वैराग्य है ।
- **शमादि**: इनमें शम , दम , तितिक्षा , उपरति , समाधान और श्रध्दा यह छ : बातें आती है । जिसे षट्संपत्ति कहते है । इनका वर्णन आगे दिया है।
    - ✓ **शम:** इंद्रियोंके विषयोंको संयमित करके आत्मा में चित्त को लगानेका नाम शम है ।
    - ✓ **दम:** विषयोंसे इंद्रियोंको हटाकर उन्हें स्थिर रखनेको दम कहते है ।
    - ✓ **उपरति:** फलेच्छा शून्य होकर समस्त कर्मो को भगवानमे केंद्रित करना ही उपरति है ।
    - ✓ **तितीक्षा:** मानापमान , सुख-दु:ख , शीत-उष्ण आदि को सहन करके उनके लिये पश्चाताप न करना ही तितिक्षा है ।
    - ✓ **समाधान:** परब्रम्ह में तत्पर होना तथा गुरू शुश्रूषा करना ही समाधान है ।
    - ✓ **श्रद्धा:** गुरू वाक्य और शास्त्र वाक्य में विश्वास करना ही श्रध्दा है ।
    - ✓ **मुमुक्षुत्व**: अज्ञान कल्पित बंधन से मुक्त हो जाने की इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते है ।

२) अंतरंग साधना: श्रवण , मनन , निदिध्यासन और समाधि ये चार अंतरंग साधन है।

- ✓ **श्रवण:** ईश्वर की विशेषताओं को सुनना ।
- ✓ **मनन:** ईश्वर के बारे में जो सुना है , उसका चिंतन करना यह मनन है ।
- ✓ **निदिध्यासन:** भिन्नत्व भावना को हटाकर सबमें ब्रम्ह का अस्तित्व है यह मानना निदिध्यासन है ।
- ✓ **समाधि:** ध्यान , ध्याता और ध्येय का भेद हटाकर एकही ब्रम्ह में चित्त की वृत्तीयों को एकाकार करना समाधि है ।

- ✓ **ज्ञान की प्राप्ति के साधन के रुप में ज्ञान की सात भूमिकाए महत्वपूर्ण मानी जाती है।**
    1. **शुभेच्छा :** इस भूमिका में साधक सांसरिक विषयों से विरक्त होकर मुक्ति की इच्छा से ज्ञान प्राप्त करने के लिये गुरू के पास जाता है ।
    2. **विचारणा :** इस भूमिका में वैराग्य संपन्न सदाचरणशील साधक गुरू के पास बैठकर आत्मतत्व विषयक रहस्योंको जानने का प्रयास करता है ।

3. **तनुमानसा :** इस भूमिका में सांसारिक विषयोंके प्रति अनासक्त भाव से देखकर मन की सूक्षतम अवस्था पाना है । जिससे दिव्यानंद की प्राप्ति होती है।
4. **सत्वापत्ति** : इस भूमिका में साधक संशय - भ्रम से रहित होकर ब्रम्ह तथा जीवात्मा के ऐक्य का साक्षात्कार करता है I
5. **असंसक्ति :** इस में साधक सविकल्प समाधि कें अभ्यास से संसारिक विषयोंको कुछ समय के लिये विस्मृत कर मनोनिग्रह के व्दारा निर्विकल्प समाधि की अवस्था में प्रविष्ठ होता है इसे सुप्पुत्पि अवस्था कहते है ।
6. **पदार्थाभावनी :** इस में साधक सविकल्प समाधि के निरंतर अभ्यास से संसारिक विषयों को दीर्घकाल तक विस्मृत कर मनोनिग्रह से निर्विकल्प समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है , इसे प्रगाढ सुषुप्ति अवस्था कहते है ।
7. **तुर्यभा :** इस भूमिका में साधक प्रप्रंचक विषयों को सदा के लिए सवर्था विस्मृत कर नितन्तर ब्रम्ह का ध्यान करता है । यह ब्रह्मीभूत अवस्था होती है । देह का भी भान नहीं होता ।

श्रीमद भगवत गीता के अनुसार ज्ञानयोग का सार

गीता में ज्ञान को पुष्ट करने के लिए योगाभ्यास का आदेश दिया जाता है। यद्यपि गीता योग का आदेश देती है ,ज्ञान को अपनाने के लिये इन्द्रियों के उन्मूलन का आदेश नहीं दिया गया है। ज्ञान से अमृत की प्राप्ति होती है। कर्मों की अपवित्रता का नाश होता है और व्यक्ति सदा के लिये ईश्वरमय हो जाता है, ज्ञानयोग की महत्ता बताते हुए गीता में कहा गया है, ''जो ज्ञाता है वह हमारे सभी भक्तों में श्रेष्ठ है, जो हमें जानता है वह हमारी आराधना भी करता है।" आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थिर हुए चित्त वाले यज्ञ के लिये आचरण करते हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है।

पंचतत्व क्या है, पंचतत्व किसे कहते हैं तथा पंचतत्व के नाम और महत्व क्या है

पंच तत्वों का ज्ञान व महत्व

हिंदू धर्म में प्रकृति की हर एक सजीव व निर्जीव वस्तु की उत्पत्ति मुख्यतया केवल 5 तत्वों से मिलकर बनी होती है जिन्हें प्रकृति के पांच तत्व कहते हैं। अंत में सभी वस्तुएं इन्हीं पंच तत्वों में समा जाती है फिर चाहे वह मानव शरीर हो या किसी जानवर का या फिर कोई निर्जीव वस्तु या पेड़-पौधे।

पंचतत्व के नाम –

पांच तत्वों के नाम हैं: आकाश, पृथ्वी, जल, वायु व अग्नि। इन्ही पांच तत्वों से मिलकर ही हर चीज़ का निर्माण होता है किंतु विभिन्न वस्तुओं में इनकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इनके मिलने से एक निर्जीव वस्तु का निर्माण होता है जिसमें प्राण नही होते है।

किसी वस्तु को सजीव बनाने के लिए इसमें परमात्मा का स्वरुप अर्थात आत्मा का होना आवश्यक है। कहने का अर्थ यह हुआ कि पंचतत्व मिलकर एक निर्जीव वस्तु का निर्माण कर सकते है या सरल शब्दों में कहे तो एक देह का निर्माण। जब इस देह में आत्मा का प्रवेश होता है तो इसमें प्राण आते है और वह वस्तु सजीव बन जाती है। जब आत्मा उस देह को त्याग देती है तब वह निर्जीव हो जाती हैं और फिर से इन्ही पंचतत्वो में मिल जाती है।

पांचो तत्व भिन्न-भिन्न चीजों का प्रतिनिधित्व करते है।

आकाश तत्व के बारे में जानकारी

आकाश का तात्पर्य अनंत से है जो हमारा शारीरिक संतुलन बनाए रखता है। इसी के द्वारा हमारे शरीर में शब्दों व वाणी का निर्माण होता है। इसका वर्ण काला रंग है। शरीर की स्थिति में इसे मस्तक नाम दिया गया है। हमारी वासना व संवेग का आधार आकाश तत्व ही है। मूल रूप से आकाश तत्व का तात्पर्य हमारे शरीर के रिक्त स्थान और मन से हैं। मन को ही आकाश तत्व की संज्ञा दी गयी हैं।

आकाश तत्व का गुण

इसका महत्व समझने के लिए हमे मन को समझना होगा। मन हमारे शरीर में विचारों का एक समूह हैं लेकिन कुछ लोग इसे आत्मा का पर्यायवाची समझ लेते हैं जबकि आत्मा परमात्मा का एक अंश हैं। आत्मा को नियंत्रित नही किया जा सकता जबकि मन को किया जा सकता हैं।

जिस प्रकार आकाश के अंत की कोई सीमा नही ठीक उसी प्रकार मन भी एक पल में कहीं से कहीं भी पहुँच सकता हैं। आकाश अपने आप में अनंत शक्तियों को समेटे हुए हैं ठीक उसी प्रकार मन भी अथाह ऊर्जा का सागर है। जैसे आकाश में कभी बादल आ जाते हैं तो कभी धूल तो कभी वह साफ नजर आता हैं ठीक उसी प्रकार हमारा मन भी परिस्थितियों के अनुसार कभी खुश तो कभी दुखी तो कभी सामान्य रहता हैं।

पृथ्वी तत्व के बारे में जानकारी

पृथ्वी का तात्पर्य हमारे शरीर की त्वचा व कोशिकाओं से है जिससे हमारे शरीर का बाहरी निर्माण होता है। इसी रूप में बाकि हमे देखते है और हम उन्हें देखते है। यह हमारे शरीर का भार भी दर्शाता है। इसका वर्ण पीला होता है। हमारे शरीर की गंध पृथ्वी तत्व से निर्धारित होती है व यह हमारे अंदर अहंकार का भी परिचारक है।

पृथ्वी तत्व का गुण

हमारे शरीर के हाड़, मास, मांसपेशियां, कोशिकाएं, त्वचा इत्यादि पृथ्वी तत्व के अंतर्गत ही आते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि हमारे शरीर की दिखने और महसूस होने वाली ज्यादातर चीज़ों का निर्माण पृथ्वी तत्व से ही हुआ हैं। गुरुत्वाकर्षण बल और चुम्बकीय गुण भी पृथ्वी तत्व की विशेषता हैं जो हमें पृथ्वी पर टिकाये रखती हैं और हमे अपना भार महसूस करवाती हैं।

जल तत्व के बारे में जानकारी

जल का तात्पर्य हमारे शरीर में विद्यमान हर एक दृव्य पदार्थ से है जो शीतलता को दर्शाता है। इससे हमारे शरीर में संकुचन आती है। इसका वर्ण सफेद है। हमारे शरीर में किसी भी चीज़ का स्वाद जानने की शक्ति जल तत्व से ही आती है। यह हमारे अंदर बुद्धि का परिचायक है।

जल तत्व के गुण

हमारे शरीर के सभी तरल पदार्थ फिर चाहे वह पानी हो, रक्त हो, रस हो, या अन्य कोई तरल पदार्थ, सभी जल तत्व के अंतर्गत ही आते है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शरीर में खून नसों के द्वारा पूरे शरीर में दौड़ता हैं और उसका संचालन करता हैं। इस प्रकार जल तत्व शरीर के संचालन, सभी पोषक तत्वों और ऊर्जा के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वायु तत्व के के बारे में जानकारी

वायु हमारे शरीर में गतिशीलता की परिचायक होती है जिससे हमारे शरीर में वेग या गति का निर्माण होता है। शरीर में इसकी स्थिति नाभि से होती है व इसका वर्ण नीला या भूरा होता है। वायु की प्रकृति अनिश्चित होती है। हमारे शरीर में स्पर्श करने की शक्ति व उसकी अनुभूति वायु तत्व से ही होती है।
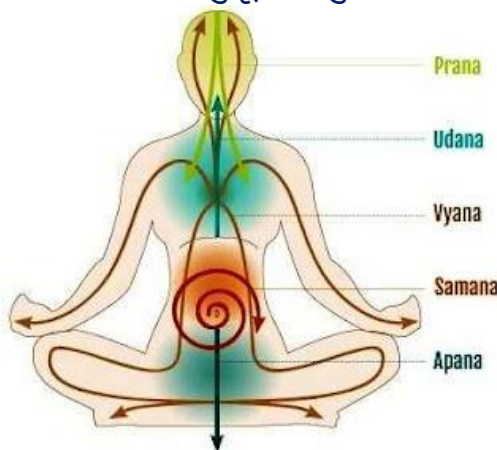
वायु तत्व का गुण

जिस भी जीव में प्राण हैं उसमें वायु तत्व पाया जाता हैं। जब भी किसी की मृत्यु हो जाती हैं तब हम सबसे पहले यही देखते हैं कि उसकी सांसे चल रही हैं या नही, यदि उसकी सांसे बंद हो गयी अर्थात शरीर में वायु तत्व नही रहा, इसका अर्थ वह मनुष्य जीवित नही रहा। वायु तत्व हमारे शरीर में प्राणवायु अर्थात ऑक्सीजन के रूप में विद्यमान हैं।

संसार के सारे जीवों (चल और स्थावर [पेड़-पौधे इत्यादि]) का जीवनचक्र एवं जीवन का निर्वाह विश्वव्यापी जैविक शक्ति (प्राण) पर निर्भर है (वाइटल फोर्स, वॉयोकॉस्मिक एनर्जी) ।

यह प्राण मानव-शरीर में विभिन्न कोष्टकों में विभिन्न कार्य करने के कारण इन्हें अलग-अलग नाम दिए गए हैं । इन्हें पाँच प्रकार के प्राणों का नाम दिया गया है । ये पाँच हैं - उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान।

- ✓ **उदान :**यह स्वरयन्त्र (लेरिन्क्स) से सिर तक के भाग का (ऊपर के भाग का) नियन्त्रण करता है । यह हमारी इन्द्रियों को स्वस्थ रखता है । हमारे शरीर के इस शिरोदेश के (सिफेलिक- पोर्शन) के स्वैच्छिक स्नायु संस्थान द्वारा स्वतः नियन्त्रित होने वाले सब कार्य इसी प्राणशक्ति द्वारा संचालित हैं ।

  इन सारे कार्यों पर जो कि अनुकम्पी स्नायु संस्थान के द्वारा उत्तेजित किए जाते हैं और अपचय (कैटाबॉलिज़्म) का कारण बनते हैं किन्तु शक्तियों के द्वारा प्रतिवर्त चाप (रिफ्लैक्स-एक्शन) के माध्यम से नियन्त्रण किया जाता है ये शक्तियाँ परानुकम्पी स्नायु संस्थान के माध्यम से शरीर को तथा उसके कार्यरत अंगों को उपचय (एनाबॉलिज़्म) के लिए प्रेरित करती हैं । जब इस स्वचालित व्यवस्था में विक्षोभ आ जाता है (डिस्टरवैन्स) तब प्रतिवर्त के उच्च केन्द्रों तक सूचना पहुँचती है जो मस्तिष्क में और भी उच्च केन्द्रों को सूचित करता है । प्रमस्तिष्क तो संवेदों को ग्रहण भी करता है और प्रेरक आज्ञाएँ भी भेजता है (रिसीविंग सैन्सरी इम्पल्सेस एण्ड सेंडिंग मोटर इम्पल्सेस) ।

  परन्तु सबसे उच्च केन्द्र (प्रमस्तिष्क, सेरीब्रम) के अन्तर्गत कार्य करनेवाले तो उपकेन्द्र है । एक तो चेतक और दूसरा 'कारपस-स्ट्रीयेटम'।

चेतक तो संवेदनाओं को नियन्त्रित करनेवाला उपकेन्द्र हैं (थैलेमस) जबकि कॉरपस-स्ट्रियेटम प्रेरक क्रियाओं का नियन्त्रण करनेवाला उपकेन्द्र है (मोटर एक्टीविटी) । परन्तु प्रेरक केन्द्रों पर (मोटर सेन्टर्स) बलवती दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा नियन्त्रण किया जा सकता है, जिसके लिए साधक को आत्मसंयम तथा 'यम', 'नियम' का पालन करने से काफ़ी सहायता मिलती है । परन्तु साधक को चेतक (थैलेमस) पर नियन्त्रण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि वहाँ पर अवचेतन मन पूरे जोर पर उछलता रहता है और वासनाओं एवं अनचाही इच्छाओं को जन्म देता रहता है ।

चेतक (थैलेमस) सारे संवेदों को ग्रहण करने का स्थान है । सुषुम्णा से सारे संदेश ऊपर पहुँचने से पहले चेतक (थैलेमस) के द्वारा ही पुनप्रेषण (रिले) किये जाते हैं और अन्ततः प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम) को पहुँचते हैं, क्योंकि चेतक (थैलेमस) सबसे मुख्य पुनप्रेषण केन्द्र (रिले-स्टेशन) है। इसलिए इसको 'उदान-प्राण' कहा गया है क्योंकि यह सुषुम्णा के सबसे ऊपरी सिरे से संवेदनाएँ इकट्ठी करता है जो नाक के मूल स्थान के स्तर पर है । यह 'उदान-प्राण' का कार्य क्षेत्र 'स्वर यन्त्र से शिरोदेश' माना गया है। इस 'उदान-प्राण' पर साधक का नियन्त्रण करना मुख्य कार्य है । तब इसके अन्दर से होकर जानेवाली सारी संवेदनाएँ व प्रेरक आज्ञाओं पर (सैन्सरी व मोटर एक्टीविटीज) साधक का ऐच्छिक नियन्त्रण हो जाता हैI

'पातंजल योगदर्शन' में लिखा है (विभूतिपाद-3, श्लोक संख्या 39) यह प्राण ऊपर की ओर गमन करने वाला है; कण्ठ में रहने वाला और सिर तक गमन करने वाला है । मृत्यु के समय इसी के सहारे सूक्ष्म शरीर का गमन होता है । जब योगी उक्त उदान वायु पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब उसका शरीर धुनी हुई रुई की भाँति अत्यन्त हल्का हो जाता है, अत: पानी या कीचड़ पर चलते हुए भी उसके पैर अन्दर नहीं जाते, काँटे आदि भी उसके शरीर में प्रविष्ट नहीं हो सकते । इसके सिवा, मरणकाल में उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र द्वारा निकलते हैं । इस कारण ऐसे योगी की शुक्ल मार्ग से गति होती है । उपनिषदों में भी ऊर्ध्वगति का वर्णन आया है ।

- ✓ **प्राण :**यह स्वरयन्त्र से लेकर हृदय के क्षेत्र तक के सारे स्थान का नियन्त्रण करता है । यह वाणी को शक्ति प्रदान करता है । आमाशय से ऊपर की भोजन नली (इसोफेगस), श्वसन संस्थान व उससे सम्बन्धित शारीरिक संरचनाएँ सब इसके द्वारा नियन्त्रित है । यह स्वैच्छिक स्नायु संस्थान के ग्रीवा वाले अंश के अन्तर्गत है ।

यह मज्जका (मेड्युला-ऑब्लांगेटा) में स्थित प्रतिवर्त केन्द्र है । यह शरीर के अन्दर से व बाहर से सारे संवेदों को ग्रहण करता है और अनुकम्पी स्नायु तन्त्र पर नियन्त्रण करता है । यह श्वसन व हृदय के केन्द्रों पर जो मज्जका में स्थित है, नियन्त्रण करता है । क्योंकि सबसे दूरस्थ भाग इसके कार्यक्षेत्र का हृदय का सबसे नीचे के सिरे का है (एपेक्स ऑफ दी हार्ट) तो यह कण्ठ से लेकर हृदय तक के इस सिरे तक के भाग का नियन्त्रण करता है I

- ✓ **समान :**यह हृदय चक्र से लेकर नाभि तक के क्षेत्र का नियन्त्रण करता है । वास्तव में यह चयापचय (मेटाबॉलिज़्म) से सम्बन्धित अंगों पर नियन्त्रण करता है और इस तरह से जीवन का धारक है जैसे आमाशय के पाचक रस, यकृत, अग्न्याशय एवं अँत्रिणियाँ, रक्त संचारण हृदय में एवं धमनियों व शिराओं में । यह स्वैच्छिक स्नायु संस्थान के वक्षीय भाग अनुकम्पी तंत्रिका के द्वारा आशयिक

तंत्रिकाओं (स्पलैंक्निक नर्वज़ू) के माध्यम से नियन्त्रण करता है जो कि अनुकम्पी वक्षीय गण्डिकाओं से निकलती हैं ।पाचन संस्थान की उत्तेजनात्मक स्थिति पर नियन्त्रण करता है और स्थिति को सामान्य बनाने की कोशिश करता है ।

- ✓ **अपान :**यह नाभि से नीचे के अंगों पर नियन्त्रण करता है । इस तरह यह वृक्क, वृहद् आंत्र, मलाशय, मूत्राशय, जनेन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है । इस प्रकार से उत्सर्जन संस्थान (एक्सक्रीटरी-सिस्टम) पर नियन्त्रण करता है । यह स्वैच्छिक स्नायु संस्थान के कटिपरक अंश भाग के द्वारा नियन्त्रण करता है । यह उत्सर्जन तन्त्र पर (एक्सक्रीटरी-आर्गन) कार्य करता है । इसका काम अवरोधनी, संवरणी (स्फिक्टर्स) पर नियन्त्रण ढीला करके उत्सर्जन से सम्बन्धित माँसपेशियों का संकुचन कराना होता है ।

- ✓ **व्यान :**यह प्राण पूरे शरीर पर एक साथ नियन्त्रण करता है और पूरे शरीर में व्याप्त हैं । यह ऐच्छिक माँसपेशियों के कार्य पर नियन्त्रण करता है । यह अनैच्छिक माँसपेशियों पर भी नियन्त्रण करता है । यह हड्डियों के सन्धि स्थानों का भी नियन्त्रण करता है । यह मानव को सीधा खड़ा करने के लिए स्थिरता प्रदान करता है । यह कार्य सुषुम्णा-रज्जु के प्रतिवर्त चाप पर आधारित है । यह स्वैच्छिक स्नायु संस्थान की गण्डिकाओं पर भी आधारित है , यह अनुमस्तिष्क को जानेवाले (सेरीबेलम और प्रघाण (वेस्टीवुलर-फाइवर) के संवेदों पर नियन्त्रण करता है, ताकि मनुष्य स्थिर खड़ा रह सके और गतिशीलता में शरीर का संतुलन बना रह सके ।

- ✓

- ✓ **प्राण वायु क्या है | प्राण वायु का स्थान है | प्राण वायु कितने होते हैं |**

यह भी पाँच हैं। और नाम भी वही हैं जो पंच प्राणों के है, जैसे प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान । परन्तु कार्यक्षेत्र में अन्तर होने के कारण इनका पाँच प्राणों से भेद है ।

वायु को यौगिक भाषा में 'स्नायु का संवेग' कहा गया है (नर्व-इम्पल्स) । ये 'प्राण वायु' अनुकम्पी स्नायु संस्थान के छह चक्रों से सम्बन्धित हैं जहाँ पर इसके स्नायु-केन्द्र हैं जो संवेदों को ग्रहण भी कर सकते है और आदेश भी दे सकते हैं ।

- ✓ **प्राण वायु :**प्राणायाम की क्रिया में जब श्वास अन्दर ली जाती है तो यह प्राण-वायु बाह्य वातावरण से अन्दर आकर एक संवेग पैदा करती है जो कि मस्तिष्क व मज्जका के श्वसन केन्द्रों पर पहुँचता है तो यह अभिवाही संदेश है (एफ्रैंट-इम्पल्स)।
- ✓ **अपान वायु :**प्राणायाम में बाह्य श्वसन (एक्सपीरेशन) में यह वायु पैदा होती है (स्नायु संवेग) और यह मस्तिष्क के केन्द्रों से आदेश को दूर माँसपेशियों तक ले जानेवाला होता है। यह अपवाही (इफ्रैंट इम्पल्स) है।
- ✓ **व्यान वायु** 'प्राण वायु' और 'अपानवायु' के सन्धिस्थल पर 'व्यान वायु' उपस्थित होती है। व्यान वायु का कार्य, प्राण वायु को अपान वायु में परिवर्तित करना (अर्थात् प्राणों के संवेग को अपान रूपी संवेगों में परिवर्तित कर देना)। इसका अर्थ यह है कि व्यान वायु प्रतिवर्त संवेग है । और यह संवेग या तो मस्तिष्क द्वारा शुरू किया जाता है या फिर सुषुम्णा के द्वारा उत्सर्जित किया जाता है या फिर अनुकम्पी स्नायु केन्द्रों के द्वारा उत्पन्न किया जाता है ।

जब यह संवेग मस्तिष्क के द्वारा पैदा किया जाता है तब यह संवेग प्राणों से अपान वायु में परिवर्तित होकर वक्ष की श्वसन में सहायक माँसपेशियों को संवेदना भेजता है और शरीर की दूसरी ऐच्छिक

माँसपेशियों को प्रेरक सूचनाएँ व आदेश भेजता है और इन सारी क्रियाओं का मनुष्य को पूर्ण ज्ञान रहता है अर्थात् यह सारी क्रियाएँ चेतनता में ऐच्छिक रूप से होती है, जैसे भागने रूपी ऐच्छिक क्रिया के समय गहरी व तेज श्वास का चलना ।

अगर यह प्रतिवर्त-संवेग (रिफ्लैक्स-इम्पल्स) अनुकम्पी स्नायु संस्थान के चक्रों से (सिम्पेथेटिक प्लैक्सस) शुरु होता है तो यह प्राण वायु के और अपान वायु के त्वरण प्रभाव (एक्सिलरेटिंग ऐफेक्ट) को नियन्त्रित करता है जिससे सम्बन्धित अंग अपनी सामान्य अवस्था में कार्य करे और जिसका जीव को पता भी न चले (विद आउट प्रोड्यूसिंग कॉनसियस संसेशन) ।

ऊपर लिखे सब तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि स्वैच्छिक स्नायु तन्त्र के द्वारा हमारे शरीर के सारे अंत:कार्यों का स्वचालित रूप से नियन्त्रण हो ही रहा है । परन्तु, फिर भी उन क्रियाओं को चेतनता में लाया जा सकता है और ऐच्छिक स्नायु संस्थान (सोमेटिक-नर्वस-सिस्टम) के संज्ञान में उन्हें इच्छानुसार नियन्त्रित किया जा सकता है ।

इसीलिए प्राचीन ऋषि-मुनियों ने सुषुम्णा रज्जु को 'चन्द्र-सूर्य-अग्नि' रूपिणी त्रिगुणमयी सुषुम्णा कहा था । उन्होंने कहा था कि भ्रूमध्य के ऊपर जहाँ पर इड़ा, पिंगला है वहाँ पर मेरुमध्य सुषुम्णा भी जा मिलती है ।

इसलिए यह स्थान 'त्रिवेणी' कहलाता है । शास्त्रों में इन तीनों नाड़ियों को गंगा, यमुना और सरस्वती कहा गया है । यह भी कहा गया है कि इस त्रिवेणी में योगबल से जो योगी अपनी आत्मा को स्नान करा सकता है । उसको 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है ।

अग्नि तत्व के के बारे में जानकारी

अग्नि का तात्पर्य हमारे शरीर की ऊर्जा से है जो शरीर को सुचारू रूप से चलाने में सहायक है। शरीर में इसकी स्थिति कंधो से है व इसका वर्ण लाल रंग होता है। देखने की शक्ति का विकास अग्नि तत्व से ही होता है व हमारे विवेक के निर्माण में भी इसी की भूमिका होती है।

अग्नि तत्व का गुण

हमारे शरीर को जीवित रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती हैं लेकिन जरा सोचिये यदि शरीर उस भोजन को पचायेगा नही तो उसे ऊर्जा कैसे मिलेगी। ऐसे में भोजन ग्रहण करना निरर्थक हो जाएगा। अग्नि तत्व का कार्य शरीर में भोजन को पचाकर उसे ऊर्जावान बनाए रखना होता हैं। इसी से हमे शक्ति, बल तथा ऊर्जा की प्राप्ति होती हैं।

भगवान शब्द का अर्थ क्या है?

हिंदू धर्म में ईश्वर को भगवान नाम की संज्ञा दी गयी है जो इन्ही पंचतत्वो को दर्शाता हैं। यदि भगवान शब्द को तोड़ा जाये तो यही पंचतत्व निकल कर आते है।

भगवान: भ+ग+व+अ+न इसमें......

“भ” का अर्थ भूमि से है अर्थात पृथ्वी।

“ग” का अर्थ गगन अर्थात आकाश।

“व” का अथ वायु से है अर्थात हवा।

“अ” का अर्थ अग्नि से है अर्थात आग।

“न” का अर्थ नीर से है अर्थात जल।
इसी प्रकार इन पांचो तत्वों के संगम से भगवान शब्द की रचना की गयी जो हमारे लिए पूजनीय है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिंदू धर्म में भगवान के स्वरुप में हमारे निर्माण के लिए उत्तरदायी तत्वों को पूजनीय बताया गया है व उनकी सुरक्षा करने का दायित्व भी हमे सौंपा गया है। इसी के साथ इन पञ्च तत्वों के मिलने के बाद इसमें प्राण डालने वाली आत्मा को स्वयं परमात्मा का स्वरुप बताया गया है जो नश्वर होती है।

पंचतत्व का महत्व

जैसा कि पहले ही बताया कि संपूर्ण प्रकृति का निर्माण इन्हीं पंचतत्वों के कारण हुआ हैं जिसमे मानव शरीर भी एक हैं। किंतु साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य हैं कि इन पंच तत्वों की मात्रा हर चीज़ में अलग-अलग होती हैं, साथ ही यह भी आवश्यक नही कि हर चीज़ में यह पाँचों तत्व उपस्थित हो। अर्थात किसी चीज़ में कोई तत्व नही होगा तो किसी में कोई, किसी चीज़ में किसी तत्व की मात्रा कम होगी तो किसी में ज्यादा।
इन्हीं पाँचों तत्वों की विभिन्न मात्राओं और योग से ही विभिन्न वस्तुएं के विभिन्न रूप और गुण निर्धारित होते हैं जैसे कि मानव शरीर। हमारे मानव शरीर में इन पाँचों तत्वों का समावेश होता हैं जिनकी मात्रा भी निश्चित हैं। यदि मानव शरीर में इनमे से किसी एक की भी मात्रा ऊपर या नीचे होती है या कोई एक तत्व सही से काम नहीं कर रहा होता है तब रोग की उत्पत्ति होती है जिसके फलस्वरूप मनुष्य बिमार पड़ जाता है। फिर हम विभिन्न माध्यमों चाहे वह योग हो या आयुर्वेद या दवाइयां, उनकी सहायता से उस तत्व को ठीक करने का काम करते हैं ताकि शरीर का संचालन सुचारू रूप से हो सके।

पंचतत्व में विलीन

जैसा कि आपको ऊपर बताया कि पंचतत्वों में इतनी शक्ति नही कि वह एक सजीव चीज़ का निर्माण कर सके क्योंकि यह शक्ति केवल परमात्मा अर्थात ईश्वर में हैं। ठीक उसी प्रकार पंच तत्व मिलकर एक मानव की देह का निर्माण कर सकते हैं लेकिन उसमे प्राण नही ला सकते। उसके लिए परमात्मा के अंश आत्मा की आवश्यकता होती हैं जो पंच तत्वों से बने उस मानव शरीर में प्राण लेकर आती हैं। उसी प्रकार परमात्मा की आज्ञा से जब आत्मा उस शरीर का त्याग कर देती हैं तब वह शरीर पुनः निर्जीव अवस्था में आ जाता हैं जिसमें पुनः आत्मा का प्रवेश नही हो सकता। इसलिए हिंदू धर्म में दाह संस्कार की प्रथा शुरू की गयी थी जिसके अनुसार एक शरीर का अंतिम संस्कार करके उसे पुनः इन पंचतत्वों में मिला दिया जाए।
हमारा शरीर पंच तत्व पृथ्वी, आकाश, पवन, अग्नी और जल से बना है। इनमें से यदि एक भी तत्व की शरीर में अधिकता या कमी हो या यूं कहें कि इनमें से कोई भी तत्व असंतुलित हो तो स्वस्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। निरोगी काया या रोग को दूर करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा बहुत कारगर होती है।

प्रकृति ने हमें आकाश (उपवास), वायु (श्वसन क्रिया, व्यायाम), अग्नी (सूर्य, रंग, भाप), जल (पानी पीने से लेकर पानी से संबंधित अन्य क्रियाएं) और पृथ्वी (मिट्टी का उपयोग) यह पांच चिकित्सक दिए हैं जिनके जरिए हम स्वस्थ रह सकते हैं। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा में इन पांच तत्वों के जरिए शरीर में नीहित पंच तत्वों को संतुलित किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत के अनुसार स्वस्थ रहने के लिए सप्ताह में एक दिन उपवास करना चाहिए जिसमें फलों का सेवन करें और भरपूर पानी पिएं , हेल्दी रहने के लिए दिन में 3-4 लीटर पानी जरूर पिएं. साथ ही पानी को बहुत जल्दी नहीं बल्कि आराम से पीने की आदत डालें. पानी को बहुत तेज गर्म या ठंडे की बजाय गुनगुना या नॉर्मल टेम्परेचर पर ही पिएं. । दिन में कम से कम 15 से 20 मिनट धूप में जरूर बैठें। इससे विटामिन डी की कमी नहीं होगी। अहार में अंकुरित अनाज, स्थानीय और मौसमी फल-सब्जी का अधिक इस्तेमाल करें। कोशिश करें कि इन्हें कच्चा ही खाएं। यदि पकाएं भी तो अधिक

नहीं पकाएं क्योंकि जितना ज्यादा पकाया जाता है, उतने पोषक तत्व कम होते हैं। मिर्च, मसाला के अलावा कुछ सफेद खाद्य पदार्थों से भी बचें जिसमें दूध और दूध से बने पदार्थ, शकर, नमक और मैदा शामिल हैं।

मनुष्य का शरीर तंत्रिकाओं पर खड़ा है। शरीरतंत्र में मुख्य चार अवयव हैं- मस्तिष्क, प्रमस्तिष्क, मेरुदंड और तंत्रिकाओं का पुंज। इसके अलावा कई और तंत्र हैं जैसे श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, ज्ञानेंद्रियां, प्रजनन तंत्र आदि। हम जानते हैं कि हाथ की पांच उंगलियां इन्हीं पांच तत्वों का प्रतिनिधत्व करती हैं। अंगूठा अग्नि का, तर्जनी वायु का, मध्यमा आकाश का, अनामिका पृथ्वी का और कनिष्का जल का प्रधिनिधित्व करती हैं। इन उंगलियों में विद्युत धारा प्रवाहित होती रहती है।

मानव शरीर प्रकृति द्वारा तैयार की गई एक मशीन है जिसके सूक्ष्म संसाधनों व तंत्रों और तत्वों के प्रयोग की सटीक सहज क्रिया के जरिए हम अपनी ऊर्जा को निरंतर गति दे सकते हैं।

॥ तत्त्वमसि ॥

गीता का आठवां अध्याय अक्षरब्रह्मयोग है (भगवान की प्राप्ति), जिसमें 28 श्लोक हैं

सारांश : सर्वोच्च को प्राप्त करना -अपने आप को कभी हारने न दें। हमेशा याद रखे की आप के अंदर परमात्मा रहते हैं , उनका अपमान ना होने दे I ईश्वर ही ज्ञान और ज्ञेय हैं- ज्ञेय को ध्येय बनाना योगमार्ग का द्वार है।

इस अध्याय में श्री कृष्ण, अर्जुन को ब्रह्म और आत्मा आदि के बारे में बताते हैं। कृष्ण कहते हैं कि अहम ब्रह्मास्मि। अर्थात मैं ही ब्रह्मा है। और चूँकि मनुष्य की आत्मा भी ईश्वर का ही भाग है इसलिए मनुष्य भी ब्रह्मा ही है। मनुष्य इन बातों को नहीं जान पाता क्यूँकि उसकी बुद्धि पर मोहमाया का पर्दा पड़ा रहता है। साथ ही कृष्ण बताते हैं कि बाकी सारे देवी -देवता भी कृष्ण द्वारा ही बनाये गए हैं। उनकी पूजा करना भी परम-ब्रह्म यानि श्री कृष्ण की पूजा करना ही है। **वासुदेवः सर्वम् I**

अर्जुन ने कृष्ण से सात प्रश्न पूछे: ब्रह्म क्या है? स्वयं क्या है? सकाम गतिविधियाँ क्या हैं? भौतिक अभिव्यक्ति क्या है? देवता कौन हैं ? बलिदान का देवता कौन है? और भक्ति सेवा में लगे लोग मृत्यु के समय कृष्ण को कैसे जान सकते हैं?

कृष्ण जवाब देते हैं "ब्राह्मण" अविनाशी जीवित इकाई (जीव) को संदर्भित करता है: "स्व" सेवा की आत्मा की आंतरिक प्रकृति को संदर्भित करता है; और "सकारात्मक गतिविधियों" का अर्थ है ऐसे कार्य जो भौतिक शरीरों को विकसित करते हैं। भौतिक अभिव्यक्ति सदैव परिवर्तनशील भौतिक प्रकृति है; देवता और उनके ग्रह परमेश्वर के विश्वरूप के अंग हैं; और बलिदान के भगवान कृष्ण स्वयं सुपर आत्मा के रूप में हैं।

जहाँ तक मृत्यु के समय कृष्ण को जानने की बात है, यह व्यक्ति की चेतना पर निर्भर करता है। सिद्धांत यह है: "जब कोई शरीर छोड़ता है तो जिस स्थिति का स्मरण करता है, वह निश्चित रूप से उस स्थिति को प्राप्त करेगा।"

कृष्ण कहते हैं, "जो कोई भी, जीवन के अंत में, केवल मुझे याद करते हुए अपने शरीर को छोड़ देता है, वह तुरंत मेरे स्वभाव को निःसंदेह प्राप्त करता है।" इसलिए, मेरे प्रिय अर्जुन, तुम्हें हमेशा मुझे कृष्ण के रूप में सोचना चाहिए और साथ ही युद्ध के अपने निर्धारित कर्तव्य को पूरा करना चाहिए। अपने कर्मों को मेरे प्रति समर्पित करके और अपने मन और बुद्धि को मुझमें एकाग्र करके, तुम निःसंदेह मुझे प्राप्त करोगे।

ब्रह्मा के प्रत्येक दिन के दौरान, सभी जीव प्रकट हो जाते हैं, और उनकी रात के दौरान वे अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। यद्यपि किसी के शरीर छोड़ने के लिए शुभ और अशुभ समय होते हैं, कृष्ण के भक्त उनकी परवाह नहीं करते हैं, क्योंकि कृष्ण की शुद्ध भक्ति सेवा में संलग्न होने से वे वेदों का अध्ययन करने या यज्ञ, दान, दार्शनिक अटकलों में संलग्न होने से प्राप्त होने वाले सभी परिणामों को स्वचालित रूप से प्राप्त करते हैं। , और इसी तरह। ऐसे शुद्ध भक्त भगवान के परम शाश्वत धाम में पहुँचते हैं।

नचिकेता और यम का संवाद

हमारे धर्म ग्रंथो में मृत्यु के देव यमराज से जुड़े दो ऐसे प्रसंग आते है जब यमराज को इंसान के हठ के आगे मजबूर होना पड़ा था। पहला प्रसंग सावित्री से सम्बंधित है, जहाँ यमराज को सावित्री के हठ पर मजबूर होकर

उसके पति सत्यवान को पुनः जीवित करना पड़ा। जबकि दूसरा प्रसंग एक बालक नचिकेता से सम्बंधित है, जहाँ यमराज को एक बालक की जिद के आगे मजबूर होकर उसे मृत्यु से जुड़े गूढ़ रहस्य बताने पढ़े।

- **किस तरह शरीर से होता है ब्रह्म का ज्ञान व दर्शन?**

मनुष्य शरीर दो आंखं, दो कान, दो नाक के छिद्र, एक मुंह, ब्रह्मरन्ध्र, नाभि, गुदा और शिश्न के रूप में 11 दरवाजों वाले नगर की तरह है, जो ब्रह्म की नगरी ही है। वे मनुष्य के हृदय में रहते हैं। इस रहस्य को समझकर जो मनुष्य ध्यान और चिंतन करता है, उसे किसी प्रकार का दुख नहीं होता है। ऐसा ध्यान और चिंतन करने वाले लोग मृत्यु के बाद जन्म-मृत्यु के बंधन से भी मुक्त हो जाता है।

- **क्या आत्मा मरती या मारती है?**

जो लोग आत्मा को मारने वाला या मरने वाला मानते हैं, वे असल में आत्मा को नहीं जानते और भटके हुए हैं। उनकी बातों को नजरअंदाज करना चाहिए, क्योंकि आत्मा न मरती है, न किसी को मार सकती है।

- **कैसे हृदय में माना जाता है परमात्मा का वास?**

मनुष्य का हृदय ब्रह्म को पाने का स्थान माना जाता है। यमदेव ने बताया मनुष्य ही परमात्मा को पाने का अधिकारी माना गया है। उसका हृदय अंगूठे की माप का होता है। इसलिए इसके अनुसार ही ब्रह्म को अंगूठे के आकार का पुकारा गया है और अपने हृदय में भगवान का वास मानने वाला व्यक्ति यह मानता है कि दूसरों के हृदय में भी ब्रह्म इसी तरह विराजमान है। इसलिए दूसरों की बुराई या घृणा से दूर रहना चाहिए।

- **क्या है आत्मा का स्वरूप?**

यमदेव के अनुसार शरीर के नाश होने के साथ जीवात्मा का नाश नहीं होता। आत्मा का भोग-विलास, नाशवान, अनित्य और जड़ शरीर से इसका कोई लेना-देना नहीं है। यह अनन्त, अनादि और दोष रहित है। इसका कोई कारण है, न कोई कार्य यानी इसका न जन्म होता है, न मरती है।

- **यदि कोई व्यक्ति आत्मापरमात्मा के ज्ञान को नहीं जानता है तो उसे कैसे फल भोगना पड़ते हैं ?**

जिस तरह बारिश का पानी एक ही होता है, लेकिन ऊंचे पहाड़ों पर बरसने से वह एक जगह नहीं रुकता और नीचे की ओर बहता है, कई प्रकार के रंग-रूप और गंध में बदलता है। उसी प्रकार एक ही परमात्मा से जन्म लेने वाले देव, असुर और मनुष्य भी भगवान को अलग-अलग मानते हैं और अलग मानकर ही पूजा करते हैं। बारिश के जल की तरह ही सुर-असुर कई योनियों में भटकते रहते हैं।

- **कैसा है ब्रह्म का स्वरूप और वे कहां और कैसे प्रकट होते हैं?**

ब्रह्म प्राकृतिक गुणों से एकदम अलग हैं, वे स्वयं प्रकट होने वाले देवता हैं। इनका नाम वसु है। वे ही मेहमान बनकर हमारे घरों में आते हैं। यज्ञ में पवित्र अग्रि और उसमें आहुति देने वाले भी वसु देवता ही होते हैं। इसी तरह सभी मनुष्यों, श्रेष्ठ देवताओं, पितरों, आकाश और सत्य में स्थित होते हैं। जल में मछली हो या शंख, पृथ्वी पर पेड़-पौधे, अंकुर, अनाज, औषधि हो या पर्वतों में नदी, झरने और यज्ञ फल के तौर पर भी ब्रह्म ही प्रकट होते हैं। इस प्रकार ब्रह्म प्रत्यक्ष देव हैं। **वासुदेवः सर्वम् I**

- **आत्मा निकलने के बाद शरीर में क्या रह जाता है?**

जब आत्मा शरीर से निकल जाती है तो उसके साथ प्राण और इन्द्रिय ज्ञान भी निकल जाता है। मृत शरीर में क्या बाकी रहता है, यह नजर तो कुछ नहीं आता, लेकिन वह परब्रह्म उस शरीर में रह जाता है, जो हर चेतन और जड़ प्राणी में विद्यमान हैं।

- **मृत्यु के बाद आत्मा को क्यों और कौन सी योनियां मिलती हैं?**

यमदेव के अनुसार अच्छे और बुरे कामों और शास्त्र, गुरु, संगति, शिक्षा और व्यापार के माध्यम से देखी-सुनी बातों के आधार पर पाप-पुण्य होते हैं। इनके आधार पर ही आत्मा मनुष्य या पशु के रूप में नया जन्म प्राप्त

करती है। जो लोग बहुत ज्यादा पाप करते हैं, वे मनुष्य और पशुओं के अतिरिक्त अन्य योनियों में जन्म पाते हैं। अन्य योनियां जैसे पेड़-पौध, पहाड़, तिनके आदि।

क्या है आत्मज्ञान और परमात्मा का स्वरूप?

मृत्यु से जुड़े रहस्यों को जानने की शुरुआत बालक नचिकेता ने यमदेव से धर्म-अधर्म से संबंध रहित, कार्य-कारण रूप प्रकृति, भूत, भविष्य और वर्तमान से परे परमात्म तत्व के बारे में जिज्ञासा कर की। यमदेव ने नचिकेता को 'ऊँ' को प्रतीक रूप में परब्रह्म का स्वरूप बताया। उन्होंने बताया कि अविनाशी प्रणव यानी ऊंकार ही परमात्मा का स्वरूप है। ऊंकार ही परमात्मा को पाने के सभी आश्रयों में सबसे सर्वश्रेष्ठ और अंतिम माध्यम है। सारे वेद कई तरह के छन्दों व मंत्रों में यही रहस्य बताए गए हैं। जगत में परमात्मा के इस नाम व स्वरूप की शरण लेना ही सबसे बेहतर उपाय है।

राजविद्याराजगुह्य योग गीता का नवां अध्याय है (परम गुप्त ज्ञान), जिसमें 34 श्लोक हैं।

सारांश : सबसे गोपनीय ज्ञान -अपने पुण्यों का मूल्यांकन करें। जीव का लक्ष्य स्वर्ग नही ईश्वर से मिलन होना चाहिए।

इस अध्याय में श्री कृष्ण बताते हैं कि सबसे बड़ा राज यही है कि – कृष्ण ही ईश्वर हैं। उन्होंने ही सृष्टि का निर्माण किया है। वे ही कण -कण में विद्धमान हैं। उन्हें समझ पाना मनुष्य के वश में नहीं है। लेकिन उनकी भक्ति से मनुष्य उन्हें पा सकता है। परन्तु यह भक्ति बिना संदेह और संशय के होनी चाहिए। और इसमें भगवान श्री कृष्ण के प्रति सिर्फ प्रेम ही प्रेम हो। **वासुदेवः सर्वम् I**

भगवान कृष्ण के अनुसार, सबसे गोपनीय ज्ञान, भक्ति सेवा का ज्ञान, सबसे शुद्ध ज्ञान और सर्वोच्च शिक्षा है। यह बोध द्वारा स्वयं का प्रत्यक्ष बोध कराता है और यही धर्म की पूर्णता है। यह चिरस्थायी और आनंदपूर्वक किया जाता है।

कृष्ण का अव्यक्त रूप सब कुछ व्याप्त है, लेकिन कृष्ण स्वयं पदार्थ से अलग रहते हैं। भौतिक प्रकृति, उनके निर्देशन में काम करते हुए, सभी चर और अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है।

अलग-अलग उपासक अलग-अलग लक्ष्यों तक पहुँचते हैं। जो पुरुष स्वर्गलोक को प्राप्त करना चाहते हैं वे देवताओं की पूजा करते हैं और फिर उनके बीच जन्म लेकर ईश्वरीय प्रसन्नता का आनंद लेते हैं; लेकिन ऐसे पुरुष, अपने पवित्र ऋणों को समाप्त करने के बाद, पृथ्वी पर लौट आते हैं। जो पुरुष पितरों की पूजा करते हैं वे पितरों के ग्रहों में जाते हैं और जो भूतों की पूजा करते हैं वे भूत बनते हैं। लेकिन जो अनन्य भक्ति के साथ कृष्ण की पूजा करता है वह हमेशा के लिए उनके पास जाता है।

कृष्ण का भक्त जो कुछ भी करता है, खाता है, अर्पित करता है, या दान में देता है, वह भगवान को अर्पण के रूप में करता है। कृष्ण अपने भक्त की कमी को पूरा करके और जो उसके पास है उसे संरक्षित करके प्रतिफल देते हैं। कृष्ण का आश्रय लेकर नीच लोग भी परम गति को प्राप्त कर सकते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (नवम अध्याय, श्लोक 26)
जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र , पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। (गीता 9/27)
हे अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दानादि देता है, जो तप करता है, वह सब मुझको अर्पण कर। ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बन्ध को बताते हुए कहा गया है

राज योग

योग के अलग-अलग सन्दर्भों में अलग-अलग अर्थ हैं - आध्यात्मिक पद्धति, आध्यात्मिक प्रकिया। ऐतिहासिक रूप में, कर्म योग की अन्तिम अवस्था समाधि' को ही 'राजयोग' कहते थे।

आधुनिक सन्दर्भ में, हिन्दुओं के छः दर्शनों में से एक का नाम 'राजयोग' (या केवल योग) है। महर्षि पतंजलि का योगसूत्र इसका मुख्य ग्रन्थ है। १९वीं शताब्दी में स्वामी विवेकानन्द ने 'राजयोग' का आधुनिक अर्थ में प्रयोग आरम्भ किया था।

राजयोग सभी योगों का राजा कहलाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक प्रकार के योग की कुछ न कुछ सामग्री अवश्य मिल जाती है। राजयोग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित अष्टांग योग का वर्णन आता है। राजयोग का विषय चित्तवृत्तियों का निरोध करना है। महर्षि पतंजलि ने समाहित चित्त वालों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा विक्षिप्त चित्त वालों के लिए क्रियायोग का सहारा लेकर आगे बढ़ने का रास्ता सुझाया है। इन साधनों का उपयोग करके साधक के क्लेषों का नाश होता है, चित्तप्रसन्न होकर ज्ञान का प्रकाश फैलता है और विवेकख्याति प्राप्त होती है।

योगांगानुष्ठानाद् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः। (1/28)

प्रत्येक व्यक्ति में अनन्त ज्ञान और शक्ति का आवास है। राजयोग उन्हें जाग्रत करने का मार्ग प्रदर्शित करता है- मनुष्य के मन को एकाग्र कर उसे समाधि नाम वाली पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में पंहुचा देना। स्वभाव से ही मानव मन चंचल है। वह एक क्षण भी किसी वस्तु पर ठहर नहीं सकता। इस मन की चंचलता को नष्ट कर उसे किसी प्रकार अपने काबू में लाना,किसी प्रकार उसकी बिखरी हुई शक्तियो को समेटकर सर्वोच्च ध्येय में एकाग्र कर देना-यही राजयोग का विषय है। जो साधक प्राण का संयम कर,प्रत्याहार,धारणा द्वारा इस समाधि अवस्था की प्राप्ति करना चाहते हे। उनके लिए राजयोग बहुत उपयोगी ग्रन्थ है।

"प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत कर आत्मा के इस ब्रह्म भाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।"

कर्म,उपासना,मनसंयम अथवा ज्ञान,इनमे से एक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्म भाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत,अनुष्ठान,शास्त्र,मंदिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया कलाप तो गौण अंग प्रत्यंग मात्र है।"

योग का अर्थ है चित्तवृत्ति का निरोध। चित्तभूमि या मानसिक अवस्था के पाँच रूप हैं

(१) क्षिप्त (२) मूढ़ (३) विक्षिप्त (४) एकाग्र और (५) निरुद्ध। प्रत्येक अवस्था में कुछ न कुछ मानसिक वृत्तियों का निरोध होता है।

- ✓ क्षिप्त अवस्था में चित्त एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ता रहता है।
- ✓ मूढ़ अवस्था में निद्रा, आलस्य आदि का प्रादुर्भाव होता है।
- ✓ विक्षिप्तावस्था में मन थोड़ी देर के लिए एक विषय में लगता है पर तुरन्त ही अन्य विषय की ओर चला जाता है। यह चित्त की आंशिक स्थिरता की अवस्था है जिसे योग नहीं कह सकते।
- ✓ एकाग्र अवस्था में चित्त देर तक एक विषय पर लगा रहता है। यह किसी वस्तु पर मानसिक केन्द्रीकरण की अवस्था है। यह योग की पहली सीढ़ी है।
- ✓ निरुद्ध अवस्था में चित्त की सभी वृत्तियों का (ध्येय विषय तक का भी) लोप हो जाता है और चित्त अपनी स्वाभाविक स्थिर, शान्त अवस्था में आ जाता है। इसी निरुद्ध अवस्था को 'असंप्रज्ञात समाधि'

या 'असंप्रज्ञात योग' कहते हैं। यही समाधि की अवस्था है। जब तक मनुष्य के चित्त में विकार भरा रहता है और उसकी बुद्धि दूषित रहती है, तब तक तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता।

✓

✓ **राजयोग के अन्तर्गत महिर्ष पतंजलि ने अष्टांग को इस प्रकार बताया है-**

यम , नियम , आसन , प्राणायाम , प्रत्याहार , धारणा , ध्यान , समाधि

उपर्युक्त प्रथम पाँच 'योग के बहिरंग साधन' हैं। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अंतरंग साधन हैं। ध्येय विषय ईश्वर होने पर मुक्ति मिल जाती है। यह परमात्मा से संयोग प्राप्त करने का मनोवैज्ञानिक मार्ग है जिसमें मन की सभी शक्तियों को एकाग्र कर एक केन्द्र या ध्येय वस्तु की ओर लाया जाता है।

योगदर्शन छः आस्तिक दर्शनों (षड्दर्शन) में से एक है। इसके प्रणेता पतञ्जलि मुनि हैं। यह दर्शन सांख्य दर्शन के 'पूरक दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाना है जिस पर चलकर वह जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर सके। अन्य दर्शनों की भांति योगदर्शन तत्त्वमीमांसा के प्रश्नों (जगत क्या है, जीव क्या है?, आदि..) में न उलझकर मुख्यतः मोक्षप्राप्ति के उपाय बताने वाले दर्शन की प्रस्तुति करता है। किन्तु मोक्ष पर चर्चा करने वाले प्रत्येक दर्शन की कोई न कोई तात्विक पृष्टभूमि होनी आवश्यक है। अतः इस हेतु योगदर्शन, सांख्यदर्शन का सहारा लेता है और उसके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा को स्वीकार कर लेता है। इसलिये प्रारम्भ से ही योगदर्शन, सांख्यदर्शन से जुड़ा हुआ है।

प्रकृति, पुरुष के स्वरूप के साथ ईश्वर के अस्तित्व को मिलाकर मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये दर्शन का एक बड़ा व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक रूप योगदर्शन में प्रस्तुत किया गया है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन (चित) की वृत्तियों पर नियन्त्रण रखकर जीवन में सफल हो सकता है और अपने अन्तिम लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

योगदर्शन, सांख्य की तरह द्वैतवादी है। सांख्य के तत्त्वमीमांसा को पूर्ण रूप से स्वीकारते हुए उसमें केवल 'ईश्वर' को जोड़ देता है। इसलिये योगदर्शन को 'सेश्वर सांख्य' (स + ईश्वर सांख्य) कहते हैं और सांख्य को 'निरीश्वर सांख्य' कहा जाता है।

✓ **यम-नियम**

विद्या और अविद्या, बन्धन और उससे छुटकारा, सुख और दु:ख सब चित्त में हैं। अत: जो कोई अपने स्वरूप में स्थिति पाने का इच्छुक है उसको अपने चित्त को उन वस्तुओं से हटाने का प्रयत्न करना होगा, जो हठात् प्रधान और उसके विकारों की ओर खींचती हैं और सुख दु:ख की अनुभूति उत्पन्न करती हैं। इस तरह चित्त को हटाने तथा चित्त के ऐसी वस्तुओं से हट जाने का नाम वैराग्य है। यह योग की पहली सीढ़ी है। पूर्ण वैराग्य एकदम नहीं हुआ करता। ज्यों ज्यों व्यक्ति योग की साधना में प्रवृत्त होता है त्यों त्यों वैराग्य भी बढ़ता है और ज्यों ज्यों वेराग्य बढ़ता है त्यों त्यों साधना में प्रवृत्ति बढ़ती है। जेसा पतंजलि ने कहा है: दृष्ट और अनुश्रविक दोनों प्रकार के विषयों में विरक्ति, अनासक्ति होनी चाहिए। स्वर्ग आदि, जिनका ज्ञान हमको अनुश्रुति अर्थात् महात्माओं के वचनों और धर्मग्रन्थों से होता है, अनुश्रविक कहलाते हैं। योग की साधना को अभ्यास कहते हैं।

चित्त जब तक इन्द्रियों के विषयों की ओर बढ़ता रहेगा, चंचल रहेगा। इन्द्रियाँ उसका एक के बाद दूसरी भोग्य वस्तु से सम्पर्क कराती रहेंगी। कितनों से वियोग भी कराती रहेंगी। काम, क्रोध, लोभ, आदि के उद्दीप्त होने के सैकड़ों अवसर आते रहेंगे। सुख दु:ख की निरन्तर अनुभूति होती रहेगी। इस प्रकार प्रधान ओर उसके विकारों के साथ जो बंधन अनेक जन्मों से चले आ रहे हैं वे दृढ़ से दृढ़तर होते चले जाएँगे। अत: चित्त को इन्द्रियों के विषयों से खींचकर अन्तर्मुखी करना होगा। साधारण मनुष्य के चित्त की अवस्था क्षिप्त कहलाती है। वह एक विषय से दूसरे विषय की ओर फेंका फिरता है। जब उसको प्रयत्न करके किसी एक विषय पर लाया जाता है तब भी वह जल्दी से विषयंतर की ओर चला जाता है। इस अवस्था को विक्षिप्त कहते हैं। दीर्ध प्रयत्न के बाद

साधक उसे किसी एक विषय पर देर तक रख सकता है। इस अवस्था का नाम एकाग्र है। चित्त को वशीभूत करना बहुत कठिन काम है। श्रीकृष्ण ने इसे प्रमाथि बलवत्-मस्त हाथी के समान बलवान्-बताया है।

✓ आसन

चित्त को वश में करने में एक चीज से सहायता मिलती है। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब तक शरीर चंचल रहता है, चित्त चंचल रहता है और चित्त की चंचलता शरीर को चंचल बनाए रहती है। शरीर की चंचलता नाड़ीसंस्थान की चंचलता पर निर्भर करती है। जब तक नाड़ीसंस्थान संक्षुब्ध रहेगा, शरीर पर इंद्रिय ग्राह्य विषयों के आधात होते रहेंगे। उन आधातों का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ेगा जिसके फलस्वरूप चित्त और शरीर दोनों में ही चंचलता बनी रहेगी। चित्त को निश्चल बनाने के लिये योगी वैसा ही उपाय करता है जैसा कभी-कभी युद्ध में करना पड़ता है। किसी प्रबल शत्रु से लड़ने में यदि उसके मित्रों को परास्त किया जा सके तो सफलता की संभावना बढ़ जाती है। योगी चित्त पर अधिकार पाने के लिए शरीर और उसमें भी मुख्यत: नाड़ीसंस्थान, को वश में करने का प्रयत्न करता है। शरीर भौतिक है, नाड़ियाँ भी भौतिक हैं। इसलिये इनसे निपटना सहज है। जिस प्रक्रिया से यह बात सिद्ध होती है उसके दो अंग हैं: आसन और प्राणायाम। आसन से शरीर निश्चल बनता है। बहुत से आसनों का अभ्यास तो स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता है। पतंजलि ने इतना ही कहा है: स्थिर सुखमासनम् : जिसपर देर तक बिना कष्ट के बैठा जा सके वही आसन श्रेष्ठ है। यही सही है कि आसनसिद्धि के लिये स्वास्थ्य संबंधी कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। जैसा श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

युक्ताहार बिहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दु:खहा॥

खाने, पीने, सोने, जागने सभी का नियन्त्रण करना होता है।

✓ प्राणायाम

प्राणायाम शब्द के संबंध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। इस भ्रम का कारण यह है कि आज लोग प्राण शब्द के अर्थ को प्राय: भूल गए हैं। योगी को इस बात का प्रयत्न करना होता है कि वह अपने प्राण को सुषुम्ना में ले जाय। सुषुम्ना वह नाड़ी है जो मेरुदण्ड की नली में स्थित है और मस्तिष्क के नीचे तक पहुँचती है। यह कोई गुप्त चीज नहीं है। आँखों से देखी जा सकती है। करीब-करीब कनष्ठाि उँगली के बराबर मोटी होती है, ठोस है, इसमें कोई छेद नहीं है। प्राण का और साँस या हवा करनेवालों को इस बात का पता नहीं है कि इस नाड़ी में हवा के घुसने के लिये और ऊपर चढ़ने के लिये कोई मार्ग नहीं है। प्राण को हवा का समानार्थक मानकर ही ऐसी बातें कही जाती हैं कि अमुक महात्मा ने अपनी साँस को ब्रह्मांड में चढ़ा लिया। साँस पर नियंत्रण रखने से नाड़ीसंस्थान को स्थिर करने में निश्चय ही सहायता मिलती है, परंतु योगी का मुख्य उद्देश्य प्राण का नियंत्रण है, साँस का नहीं। प्राण वह शक्ति है जो नाड़ीसंस्थान में संचार करती है। शरीर के सभी अवयवों को और सभी धातुओं को प्राण से ही जीवन और सक्रियता मिलती है। जब शरीर के स्थिर होने से ओर प्राणायाम की क्रिया से, प्राण सुषुम्ना की ओर प्रवृत्त होता है तो उसका प्रवाह नीचे की नाड़ियों में से खिंच जाता है। अत: ये नाड़ियाँ बाहर के आधातों की ओर से एक प्रकार से शून्यवत् हो जाती हैं।

कुण्डलिनी योग :

हमारे शरीर में कुण्डलिनी शक्ति होती है। यह शक्ति कुण्डली मारे हुए सांप की तरह हर इंसान के शरीर में रहती है। इसीलिए इसका नाम कुण्डलिनी शक्ति पड़ा। जब यह जागती है, तो इंसान की सांसारिक चेतना चली जाती है। और जब यह सोती है, तो इंसान फिर संसार के प्रति चेतन हो जाता है।
कुण्डलिनी योग के तहत कुण्डलिनी शक्ति शरीर के छह आध्यात्मिक ऊर्जा चक्रों को सक्रिय करते हुए सिर के शीर्ष पर मौजूद सहस्रार चक्र को जगाती है। आत्मा का परमात्मा से मिलन कराती है। उसे

ब्रह्मलीन करती है। इस अवस्था को ही पूर्ण समाधि कहा गया है।

कुण्डलिनी योग क्रिया के सबसे ज़रूरी हिस्से हैं चक्र, नाड़ियां और प्राण (वायु)।

शरीर में हैं सात चक्र : हमारे शरीर में सात चक्र हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्र, सहस्रार चक्र। ये प्राणशक्ति के केंद्र हैं।

मूलाधार चक्र :यह सबसे नीचे है। रीढ़ की हड्डी के शुरू यानी गुदा द्वार के पास। सबसे पहले ध्यान को यहीं लाया जाता है। यह त्रिकोण रूप में है और कुण्डलिनी शक्ति यहीं बैठती है। इसमें चार योग नाड़ियां हैं, जिन्हें कमल की पंखुड़ियों की तरह दिखाया है। यहां पीले रंग में पृथ्वी तत्व है, जो गंध का काम करता है। यहां देव रूप में गणेश विराजमान हैं। इसकी देवी हैं डाकिनी। इस चक्र में ब्रह्मग्रंथी है। यह भू-लोक को इंगित करता है। सब चक्रों के बीज अक्षर होते हैं। इस चक्र का बीज अक्षर 'लं' है। मूलाधार चक्र का भेदन करने वाला पृथ्वी तत्व पर विजय पा लेता है।

स्वाधिष्ठान चक्र :यह जननेंद्रियों के पास है। इसमें छह योग नाड़ियां हैं। सफेद रंग में जल तत्व है, जो रस या स्वाद का काम करता है।

यहां देव रूप में ब्रह्मा विराजमान हैं। इसकी देवी हैं राकिनी। यह भूव्र लोक को इंगित करता है। बीज अक्षर 'वं' है। इस चक्र पर ध्यान करने वाले को जल से किसी तरह का भय नहीं रहता। उसे कई सिद्धियां और इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या और अन्य दुर्गुण दूर हो जाते हैं।

मणिपूर चक्र : यह नाभि में है। इसमें 10 योग नाड़ियां हैं। लाल रंग में अग्नि तत्व है, जिसका काम है रूप यानी दृष्टि। यहां विष्णु विराजमान हैं।

इसकी देवी हैं लाकिनी। यह स्व: यानी स्वर्ग लोक को दर्शाता है। इस चक्र का बीज अक्षर है 'रं'। इस पर जो ध्यान करता है, उसे पाताल सिद्धि प्राप्त होती है। वह सभी रोगों से मुक्त रहता है। आग का भय नहीं रहता। घेरंड संहिता में लिखा है कि उसे आग में फेंक दिया जाए तो भी मौत उसे छू नहीं सकती।

अनाहत चक्र : यह दिल के पास है। इसमें 12 योग नाड़ियां हैं। धुंध रूप में वायु तत्व है, जो स्पर्श का काम करता है। यहां देव रूप में शिव विराजते हैं। इसकी देवी हैं काकिनी।

यह महालोक को इंगित करता है। बीज अक्षर 'यं' है। इसमें विष्णु ग्रंथि है। इससे दिल पर नियंत्रण होता है। इस चक्र पर ध्यान करने से आनंद महसूस होगा और ईष्ट देवों के दर्शन होंगे।

विशुद्ध चक्र : यह चक्र कण्ठ यानी गर्दन में है। इसमें 16 योग नाड़ियां हैं। नीले रंग में आकाश तत्व है। इसका काम है शब्द यानी सुनना। यहां देव रूप में महेश्वर सदाशिव हैं और इसकी देवी हैं शाकिनी।

यह जनह लोक को इंगित करता है। इसका बीज अक्षर है 'हं' है। मन के और शुद्ध होने से, ध्यान और लगन गहरी होने से साधक विशुद्ध चक्र को खोल सकता है। इससे और अधिक शक्ति और आनंद का आभास होगा। इतनी शक्ति मिलेगी कि प्रलय भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। साधक त्रिकाल ज्ञानी हो जाता है। उसे चारों वेदों का ज्ञान हो जाता है। लेकिन संभव है कि यहां तक पहुंचकर भी प्राण शक्ति नीचे आ जाए।

ज्ञान चक्र : दोनों आंखों के बीच यानी भृकुटी में ज्ञान चक्र है। इसमें योग नाड़ियां केवल दो हैं। बिना किसी रंग में यहां मानस तत्व होता है। संकल्प और विकल्प इसी से जन्म लेते हैं। यहां देव रूप में सदाशिव

शंभूनाथ हैं और इसकी देवी हाकिनी हैं।
यह तपो लोक को इंगित करता है। इसमें रुद्र ग्रंथि है। इस चक्र का बीज अक्षर 'ऊं' है। जब साधक यहां पहुंचता है, तो वह समाधि की अवस्था में चला जाता है। इससे उसे ब्रह्म यानी परमात्मा की अनुभूति होती है। वह अपने पूर्वजन्मों के सब कर्म यहां नष्ट कर सकता है। उसे सभी 8 प्रमुख और 32 सूक्ष्म सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।

सहस्रार चक्र : कुण्डलिनी योग में यह चक्र ही संपूर्ण समाधि दिलाता है। यह सिर के शीर्ष पर है। इसमें 1000 योग नाड़ियां हैं। सुषुम्ना नाड़ी ही यहां तक पहुंचती है। वह एक-एक चक्र को जगाते हुए सबसे आखिर में इस चक्र को जगाती है।
यहां पहुंचकर जो अनुभव होता है, वह वर्णन से परे है। यहीं निर्विकल्प समााधि यानी सुपरकॉन्सेसनेस मिलती है। कुण्डलिनी परमात्मा से मिल जाती है।
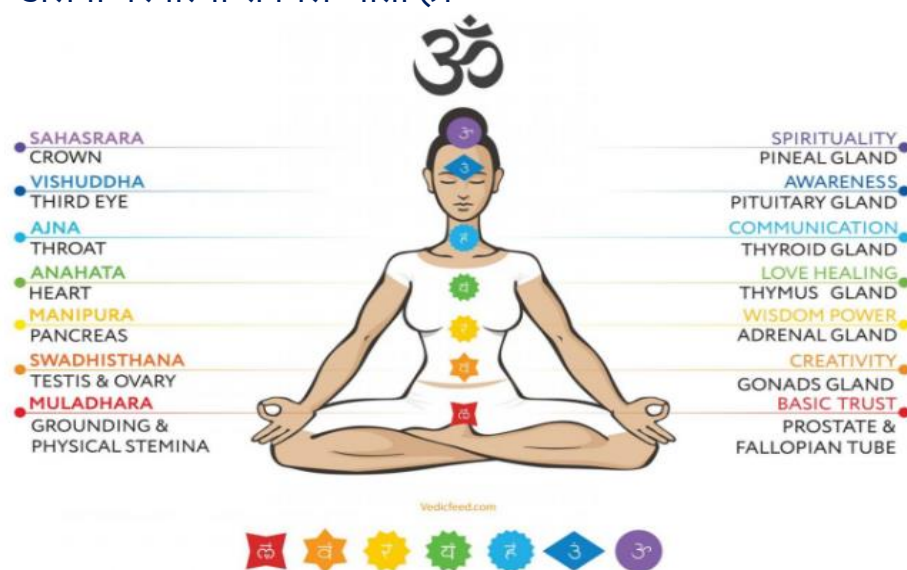
नाड़ियां :नाड़ी शब्द नड़ से बना है, जिसका मतलब है प्रवाह। इनसे ही शरीर में प्राण का प्रवाह होता है। योग नाड़ियां वैद्य या चिकित्सा शास्त्र में बताई गई नसों से अलग हैं। किसी ने इनकी संख्या 72 हजार बताई हैं, तो किसी ने साढ़े तीन लाख।
जब कुण्डलिनी जागती है तो सुषुम्ना नाड़ी के ज़रिए जागती है। सभी नाड़ियां मूलाधार चक्र के जरिए सुषुम्ना से जुड़ती हैं। इन अनगिनित नाड़ियों में 14 प्रमुख हैं। सुषुम्ना, ईडा, पिंगला, गांधारी, हस्तजीह्वा, कूहु, सरस्वती, पुषा, संकिनी, पायस्विनी, वरुणी, अलम्बूशा, विश्वोध्रा और यशस्विनी। इनमें भी पहली तीन यानी सुषुम्ना, ईडा और पिंगला कुण्डलिनी योग की सबसे अहम नाड़ियां हैं।

सुषुम्ना : यह स्पाइनल कॉर्ड से गुज़रती है। यही एक मात्र नाड़ी है, जो सहस्रार चक्र तक पहुंचती है। मेडिकल साइंस मानती है कि स्पाइनल कॉर्ड के भीतर सफ़ेद और ग्रे ब्रेन मैटर है। इससे दिमाग तक संदेश जाते हैं।
सुषुम्ना में भी एक के अंदर एक तीन नाड़ियां हैं। सबसे भीतर ब्रह्मनाड़ी है। मूलाधार चक्र से जब कुण्डलिनी जागती है, तो इसी के ज़रिए सभी चक्रों से गुज़रती हुए सहस्रार चक्र तक पहुंचती है। लेकिन अगर यह अशुद्ध हो तो प्राण वायु इसमें से नहीं गुज़र पाती। इसकी शुद्धि के लिए प्राणायाम और दूसरी योग क्रियाओं को जरूरी बताया गया है।

ईडा और पिंगला : ये दोनों नाड़ियां सुषुम्ना के दाईं और बाईं ओर से निकलती हैं। ईडा दाएं अंडकोष से और पिंगला बाएं अंडकोष से शुरू होती है। मूलाधार चक्र में ये सुषुम्ना से मिलती हैं। इसे मुक्त त्रिवेणी कहा गया है। यानी गंगा, यमुना और सरस्वती। जहां ये मिलती है, उसे ब्रह्म ग्रंथी कहते हैं। इसके बाद ये अनाहत और ज्ञान चक्र में मिलती हैं। फिर से प्रयाग की त्रिवेणी।
ईडा बाईं नासिका और पिंगला दाईं नासिका से प्राण वायु लेती हैं। ईडा (चंद्र) ठंडी और पिंगला (सूर्य) गर्म है। कहते हैं कि इन्हीं से एक योगी अपनी मृत्यु का समय जान सकता है।
नाड़ियों में वायु का प्रवाह बदलने के लिए कई योग अभ्यास हैं। कुछ इच्छा से यह प्रवाह बदल सकते हैं तो कुछ नौली क्रिया, खेचरी मुद्रा जैसे अभ्यास से। लेकिन इन सबमें बहुत सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। गलत साधना से बीमारियां हो सकती हैं।

प्रत्याहार

प्राणायाम का अभ्यास करना और प्राणायाम में सफलता पा जाना दो अलग अलग बातें हैं। परंतु वैराग्य और तीव्र संवेग के बल से सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ज्यों-ज्यों अभ्यास दृढ़ होता है, त्यों-त्यों साधक के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। एक और बात होती है। वह जितना ही अपने चित्त को इंद्रियों और उनके विषयों से दूर खींचता है उतना ही उसकी ऐंद्रिय शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् इंद्रियों की विषयों के भोग की शक्ति भी बढ़ती है। इसीलिये प्राणायाम के बाद प्रत्याहार का नाम लिया जाता है। प्रत्याहार का अर्थ है इंद्रियों को उनके विषयों से खींचना। वैराग्य के प्रसंग में यह उपदेश दिया जा चुका है परंतु प्राणायम तक पहँचकर इसकों विशेष रूप से दुहराने की आवश्यकता है। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के ही समुच्चय का नाम हठयोग है।

धारणा, ध्यान, समाधि

जो लोग आगे बढ़ते हैं उनके मार्ग को तीन विभागों में बाँटा जाता है: धारणा, ध्यान और समाधि। इन तीनों को एक दूसरे से बिल्कुल पृथक करना असंभव है। धारण पुष्ट होकर ध्यान का रूप धारण करती है और उन्नत ध्यान ही समाधि कहलाता है। पतंजलि ने तीनों को सम्मिलित रूप से संयम कहा है। धारणा वह उपाय है जिससे चित्त को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। यहाँ उपाय शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है परंतु वस्तुत: इस काम के अनेक उपाय हैं। इनमें से कुछ का चर्चा उपनिषदों में आया है। वैदिक वाड्मय में विद्या शब्द का प्रयोग किया गया है। किसी मंत्र के जप, किसी देव, देवी या महात्मा के विग्रह या सूर्य, अग्नि, दीपशिखा आदि को शरीर के किसी स्थानविशेष जेसे हृदय, मूर्घा, तिल अर्थात दोनों आँखों के बीच के बिंदु, इनमें से किसी जगह कल्पना में स्थिर करना, इस प्रकार के जो भी उपाय किए जायँ वे सभी धारणा के अंतर्गत हैं। जैसा कि कुछ उपायों को बतलाने के बाद पतंजलि ने यह लिख दिया है - यथाभिमत ध्यानाद्वा-जो वस्तु अपने को अच्छी लगे उसपर ही चित्त को एकाग्र करने से काम चल सकता है।

धारणा की सबसे उत्तम पद्धति वह है जिसे पुराने शब्दों में नादानुसंधान कहते हैं। कबीर और उनके परवर्ती संतों ने इसे सुरत शब्द योग की संज्ञा दी है। जिस प्रकार चंचल मृग वीणा के स्वरों से मुग्ध होकर चौकड़ी भरना भूल जाता है, उसी प्रकार साधक का चित्त नाद के प्रभाव से चंचलता छोड़कर स्थिर हो जाता है। वह नाद कौन सा है जिसमें चित्त की वृत्तियों को लय करने का प्रयास किया जाता है और यह प्रयास कैसे किया जाता है, ये बातें तो गुरुमुख से ही जानी जाती हैं। अंतर्नाद के सूक्ष्मत्तम रूप को प्रवल, ॐ -ओंकार, कहते हैं। प्रणव वस्तुत: अनुच्चार्य्य है। उसका अनुभव किया जा सकता है, वाणी में व्यंजना नहीं, नादविंदूपनिषद् के शब्दों में:

ब्रह्म प्रणव संयानं, नादो ज्योतिर्मय: शिव:।
स्वयमाविर्भवेदात्मा मेयापायेऽशुमानिव॥

ॐ प्रणव के अनुसंधान से, ज्योतिर्मय और कल्याणकारी नाद उदित होता है। फिर आत्मा स्वयं उसी प्रकार प्रकट होता है, जेसे कि बादल के हटने पर चंद्रमा प्रकट होता है। आदि शब्द ॐ आंकार को परमात्मा का प्रतीक कहा जाता है। योगियों में सर्वत्र ही इसकी महिमा गाई गई है। बाइबिल में , पहला ही वाक्य इस प्रकार हैं, आरंभ में शब्द था। वह शब्द परमात्मा के साथ था। वह शब्द परमात्मा था। सूफी संत कहते हैं हैफ़ दर बंदे जिस्म दरमानी, न शुनवी सौते पाके रहमानी दु:ख की बात है कि तू शरीर के बंधन में पड़ा रहता है और पवित्र दिव्य नाद को नहीं सुनता।

चित्त की एकाग्रता ज्यों ज्यों बढ़ती है त्यों त्यों साधकर को अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। मनुष्य अपनी इंद्रियों की शक्ति से परिचित नहीं है। उनसे न तो काम लेता है और न लेना चाहता है। यह बात सुनने में आश्चर्य की प्रतीत होती है, पर सच है। मान लीजिए, हमारी चक्षु या श्रोत्र इंद्रिया की शक्ति कल आज से कई गुना बढ़ जाय। तब न जाने ऐसी कितनी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी जिनको देखकर हम काँप उठेंगे। एक दूसरे के भीतर की रासायनिक क्रिया यदि एक बार देख पड़ जाय तो अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति की ओर से घृणा हो जायगी। हमारे परम मित्र पास की कोठरी में बैठे हमारे संबंध में क्या कहते हैं, यदि यह बात सुनने में आ जाय तो जीना दूभर हो जाय। हम कुछ वासनाओं के पुतले हैं। अपनी इंद्रयों से वहीं तक काम लेते हैं जहाँ तक वासनाओं की तृप्ति हो। इसलिये इंद्रियों की शक्ति प्रसुप्त रहती है परंतु जब योगाभ्यास के द्वारा वासनाओं का न्यूनाधिक शमन होता है तब इंद्रियाँ निर्बाध रूप से काम कर सकती हैं और हमको जगत् के स्वरूप के वास्तविक रूप का कुछ परिचय दिलाती हैं। इस विश्व में स्पर्श, रूप, रस और गंध का अपार भंडार भरा पड़ा है जिसकी सत्ता का हमको अनुभव नहीं हैं। अंतर्मुख होने पर बिना हमारे प्रयास के ही इंद्रियाँ इस भंडार का द्वार हमारे सामने खोल देती हैं। सुषुम्ना में नाड़ियों की कई ग्रंथियाँ हैं, जिनमें कई जगहों से आई हुई नाड़ियाँ मिलती हैं। इन स्थानों को चक्र कहते हैं। इनमें से विशेष रूप से छह चक्रों का चर्चा योग के ग्रंथों में आता है। सबसे नीचे मुलाधार है जो प्राय: उस जगह पर है जहाँ सुषुम्ना का आरंभ होता है। और सबसे ऊपर आज्ञा चक्र है जो तिल के स्थान पर है। इसे तृतीय नेत्र भी कहते हैं। थोड़ा और ऊपर चलकर सुषुम्ना मस्तिष्क के नाड़िसंस्थान से मिल जाती है। मस्तिष्क के उस सबसे ऊपर के स्थान पर जिसे शरीर विज्ञान में सेरेब्रम कहते हैं, सहस्रारचक्र है। जैसा कि एक महात्मा ने कहा है:

मूलमंत्र करबंद विचारी सात चक्र नव शोधै नारी।।

योगी के प्रारंभिक अनुभवों में से कुछ की ओर ऊपर संकेत किया गया है। ऐसे कुछ अनुभवों का उल्लेख श्वेताश्वर उपनिषद् में भी किया गया है। वहाँ उन्होंने कहा है कि अनल, अनिल, सूर्य, चंद्र, खद्योत, धूम, स्फुलिंग, तारे अभिव्यक्तिकरानि योगे हैं, यह सब योग में अभिव्यक्त करानेवाले चिह्न हैं अर्थात् इनके द्वारा योगी को यह विश्वास हो सकता है कि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ। इसके ऊपर समाधि तक पहुँचते पहुँचते योगी को जो अनुभव होते हैं उनका वर्णन करना असंभव है। कारण यह है कि उनका वर्णन करने के लिये साधारण मनुष्य को साधारण भाषा में कोई प्रतीक या शब्द नहीं मिलता। अच्छे योगियों ने उनके वर्णन के संबंध में कहा है कि यह काम वैसा ही है जैसे गूँगा गुड़ खाय। पूर्णांग मनुष्य भी किसी वस्तु के स्वाद का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता, फिर गूँगा बेचारा तो असमर्थ है ही। गुड़ के स्वाद का कुछ परिचय फलों के स्वाद से या किसी अन्य मीठी चीज़ के सादृश्य के आधार पर दिया भी जा सकता है, पर जैसा अनुभव हमको साधारणत: होता ही नहीं, वह तो सचमुच वाणी के परे हैं।

समाधि की सर्वोच्च भूमिका के कुछ नीचे तक अस्मिता रह जाती है। अपनी पृथक सत्ता अहम् अस्मि (मैं हूँ) यह प्रतीति रहती है। अहम् अस्मि = मैं हूँ की संतान अर्थात निरंतर इस भावना के कारण वहाँ तक काल की सत्ता है। इसके बाद झीनी अविद्या मात्र रह जाती है। उसके शय होने की अवस्था का नाम असंप्रज्ञात समाधि है जिसमें अविद्या का भी क्षय हो जाता है और प्रधान से कल्पित संबंध का विच्छेद हो जाता है। यह योग की पराकाष्ठा है। इसके आगे फिर शास्त्रार्थ का द्वार खुल जाता है। सांख्य के आचार्य कहते हैं कि जो योगी पुरुष यहाँ तक पहुँचा, उसके लिये फिर तो प्रकृति का खेल बंद हो जाता है। दूसरे लोगों के लिये जारी रहता है। वह इस बात को यों समझाते हैं। किसी जगह नृत्य हो रहा है। कई व्यक्ति उसे देख रहे हैं। एक व्यक्ति उनमें ऐसा भी है जिसको उस नृत्य में कोई अभिरुचि नहीं है। वह नर्तकी की ओर से आँख फेर लेता है। उसके लिये नृत्य नहीं के बराबर है। दूसरे के लिये वह रोचक है। उन्होंने कहा है कि उस अजा के साथ अर्थात नित्या के साथ अज एकोऽनुशेते = एक अज शयन करता है और जहात्येनाम् भुक्तभोगाम् तथान्य:-उसके भोग से तृप्त होकर दूसरा त्याग देता है।

अद्वैत वेदान्त के आचार्य सांख्यसंमत पुरुषों की अनेकता को स्वीकार नहीं करते। उनके अतिरिक्त और भी कई दार्श्निक संप्रदाय हैं जिनके अपने अलग अलग सिद्धांत हैं। जहां तक योग के व्यवहारिक रूप की बात है उसमें किसी को विरोध नहीं है। वेदांत के आचार्य भी निर्दिध्यासन की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं और वेदांत दर्शन में व्यास ने भी असकृदभ्यासात् ओर आसीन: संभवात् जैसे सूत्रों में इसका समर्थन किया है। इतना ही हमारे लिये पर्याप्त है।

साधारणत: योग को अष्टांग कहा जाता है परंतु यहाँ अब तक आसन से लेकर समाधि तक छह अंगों का ही उल्लेख किया गया है। शेष दो अंगों को इसलिये नहीं छोड़ा कि वे अनावश्यक हैं वरन् इसलिए कि वह योगी ही नहीं प्रत्युत मनुष्य मात्र के लिए परम उपयोगी हैं। उनमें प्रथम स्थान यम का है। इनके संबंध में कहा गया है कि यह देश काल, समय से अनवच्छिन्न ओर सार्वभौम महाव्रत हैं अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के साथ इनका पालन करना चाहिए। दूसरा अंग नियम कहलाता है। जो लोग ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते उनके लिये ईश्वर पर निष्ठा रखने का कोई और नहीं है। परंतु वह लोग भी प्राय: किसी न किसी ऐसे व्यक्ति पर श्रद्धा रखते हैं जो उनके लिये ईश्वर तुल्य है। बौद्ध को बुद्धदेव के प्रति जो निष्ठा है वह उससे कम नहीं है जो किसी भी ईश्वरवादी को ईश्वर पर होती होगी। एक और बात है। किसी को ईश्वर पर श्रद्धा हो या न हो, योग मार्ग के उपदेष्टा गुरु पर तो अनन्य श्रद्धा होनी ही चाहिए। योगाभ्यासी के लिये गुरु का स्थान किसी भी दृष्टि से ईश्वर से कम नहीं। ईश्वर हो या न हो परंतु गुरु के होने पर तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। एक साधक चरणादास जी की शिष्या सहजोबाई ने कहा है:

गुरुचरनन पर तन-मन वारूँ, गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ।

आज कल यह बात सुनने में आती है कि परम पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिये ज्ञान पर्याप्त है। योग की आवश्यकता नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान शब्द के अर्थ पर गंभीरता से विचार नहीं करते। ज्ञान दो प्रकार का होता है-तज्ज्ञान और तद्विषयक ज्ञान। दोनों में अंतर है। कोई व्यक्ति अपना सारा जीवन रसायन आदि शास्त्रों के अध्ययन में बिताकर शक्कर के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकता है। शक्कर के अणु में किन किन रासायनिक तत्वों के कितने कितने परमाणु होते हैं? शक्कर कैसे बनाई जाती है? उसपर कौन कौन सी रासानिक क्रिया और प्रतिक्रियाएँ होती हैं? इत्यादि। यह सब शक्कर विषयक ज्ञान है। यह भी उपयोगी हो सकता है परंतु शक्कर का वास्तविक ज्ञान तो उसी समय होता है जब एक चुटकी शक्कर मुँह में रखी जाती है। यह शक्कर का तत्वज्ञान है। शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह सच्चा आध्यात्मिक ज्ञान है और उसके प्रकाश में तद्विषयक ज्ञान भी पूरी तरह समझ में आ सकता हैं। इसीलिये उपनिषद् के अनुसार जब यम ने नचिकेता को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश दिया तो उसके साथ में योगविधि च कृत्स्नम् की भी दीक्षा दी, नहीं तो नचिकेता का बोध अधूरा ही रह जाता। जो लोग भक्ति आदि की साधना रूप से प्रशंसा करते हैं उनकोश् भी

यह ध्यान में रखना चाहिए कि यदि उनके मार्ग में वित्त को एकाग्र करने का कोई उपाय है तो वह वस्तुत: योग की धारणा अंग के अंतर्गत है। यह उनकी मर्जी है कि सनातन योग शब्द को छोड़कर नये शब्दों का व्यवहार करते हैं।

योग के अभ्यास से उस प्रकार की शक्तियों का उदय होता है जिनको विभूति या सिद्धि कहते हैं। यदि पर्याप्त समय तक अभ्यास करने के बाद भी किसी मनुष्य में ऐसी असाधारण शक्तियों का आगम नहीं हुआ तो यह मानना चाहिए कि वह ठीक मार्ग पर नहीं चल रहा है। परन्तु सिद्धियों में कोई जादू की बात नहीं है। इंद्रियों की शक्ति बहुत अधिक है परंतु साधारणत: हमको उसका ज्ञान नहीं होता और न हम उससे काम लेते हैं। अभयासी को उस शक्ति का परिचय मिलता है, उसको जगत् के स्वरूप के संबंध में ऐसे अनुभव होते हैं जो दूसरों को प्राप्त नहीं हैं। दूर की या छिपी हुई वस्तु को देख लेना, व्यवहृत बातों को सुन लेना इत्यादि इंद्रियों की सहज शक्ति की सीमा के भीतर की बाते हैं परंतु साधारण मनुष्य के लिये यह आश्चर्यश् का विषय हैं, इनकों सिद्धि कहा जायगा। इसी प्रकार मनुष्य में और भी बहुत सी शक्तियाँ हें जो साधारण अवस्था में प्रसुप्त रहती हैं। योग के अभ्यास से जाग उठती हैं। यदि हम किसी सड़क पर कहीं जा रहे हो तो अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए भी अनायास ही दाहिने बाएँ उपस्थित विषयों को देख लेंगे। सच तो यह है कि जो कोई इन विषयों को देखने के लिये रुकेगा वह गन्तव्य स्थान तक पहुँचेगा ही नहीं ओर बीच में ही रह जायगा। इसीलिये कहा गया है कि जो कोई सिद्धियों के लिये प्रयत्न करता है वह अपने को समाधि से वंचित करता है। पतंजलि ने कहा है:

ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ।

अर्थात् ये विभूतियाँ समाधि में बाधक हैं परंतु समाधि से उठने की अवस्था में सिद्धि कहलाती हैं।

- हमारा **अवचेतन (sub conscious mind)**मन एक छिपे हुए खजाने के समान है, कस्तूरी मृग की तरह जो अपने भीतर कस्तूरी की खोज करता है। इसी प्रकार, हम अक्सर अपनी समस्याओं के समाधान के लिए स्वयं के बाहर देखते हैं, जब वे हमारे भीतर पहले से मौजूद हो सकते हैं। हमारे अवचेतन मन की क्षमता अपार है और हम इसके उपयोग में महारत हासिल करके इसके साथ कुछ भी हासिल कर सकते हैं। हालाँकि, हमारा अवचेतन मन सही और गलत के बीच अंतर नहीं करता है, और बस हमारे विचारों पर कार्य करता है। इसलिए, हमें इसका सकारात्मक तरीके से उपयोग करना सीखना चाहिए और नकारात्मक प्रभावों से बचना चाहिए। अपने अवचेतन मन को एक बगीचे की तरह पोषित करके हम सकारात्मक विचारों और विश्वासों को लगा सकते हैं और खरपतवारों को दूर रख सकते हैं। **हमारे जीवन को बदलने के लिए हमारे अवचेतन मन का उपयोग करने के कई तरीके हैं,** जैसे सकारात्मक सोच, नकारात्मक आत्म-चर्चा से बचना, अपने मन सकारात्मक सुझाव देना, अच्छे विचारों केसाथ सोना, अपनी इच्छाओं को लिखना और स्वयं के लिए सकारात्मक पुष्टि दोहराना। धैर्य और दृढ़ता के साथ, हम असंभव को प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि हमारा अवचेतन मन सत्य और कल्पना के बीच अंतर नहीं करता है और जो कुछ भी हम इसे कहते हैं, उस पर कार्य करेंगे।

1. हमेशा सकारात्मक रहें - हमेशा सकारात्मक सोचें। यदि आप अपने जीवन में कुछ नहीं चाहते हैं, तो यह मत सोचिए कि मुझे यह नहीं चाहिए, इस बारे में सोचें कि आप क्या चाहते हैं।
2. कोई नकारात्मक शब्द नहीं - कभी मत कहो कि मेरा दिमाग तेज नहीं है। मेरे पास ताकत नहीं है। इसके बजाय, सोचें: मेरा दिमाग तेज है और तेज हो रहा है। मेरे पास अद्भुत गतिशीलता है। मेरा बल बढ़ता है।

3. अपने मन को सकारात्मक सुझाव दें - आपने शायद देखा होगा कि कभी-कभी जब आपको सुबह जल्दी उठने की जरूरत होती है, तो आप रात को अलार्म घड़ी लगा देते हैं और सोचते हैं कि सुबह जल्दी उठने का समय कब है, और फिर आपके साथ ऐसा होता है कि आप अलार्म घड़ी बजने से पहले सो ही खुलता है। यह अवचेतन की शक्ति है।

4. हमेशा रात को अच्छे विचारों के साथ सोएं - जब आप रात को सोने जाएं तो उन चीजों के बारे में सोचें जो आप अपने जीवन में चाहते हैं। लेकिन याद रखें कि यह नकारात्मक नहीं होना चाहिए।

5. लिखने की आदत डालें - अपनी सभी इच्छाओं को सकारात्मक तरीके से लिखना सबसे अच्छा है और रात को पूरी श्रद्धा से पढ़कर सो गए।

6. चमत्कार कब होगा? आपकी वर्षों की नकारात्मक सोच की धूल आपकी सकारात्मक सोच की झाड़ू से धीरे-धीरे हट रही है। इसमें थोड़ा वक्त लगेगा। लेकिन अगर आप अपनी खोज में धैर्य रखते हैं तो यह चमत्कार जल्द ही होगा और आपके सपने सच होंगे।

7. किसी चीज को दोहराने से वह अवचेतन का हिस्सा बन जाता है। इसका मतलब यह है कि आप अपने जीवन में जिस तरह का सुधार या बदलाव चाहते हैं, आप जिस स्तर की सहजता हासिल करना चाहते हैं, और जिस तरह की ताकत और क्षमता आप अपने आप में चाहते हैं, उसे अपने दिमाग में दोहराएं और ध्यान करें। याद रखें कि केवल एक शक्तिशाली विचार ही अवचेतन में अपना स्थान ले सकता है, इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि विचार मजबूत हो और स्पष्ट रूप से दृढ़ विश्वास के साथ, निश्चित रूप से सत्य का रूप ले, ऐसा कुछ भी नहीं है जो अवचेतन तक पहुंच सके। आप मन की शक्ति से परे हैं। साथ ही इन विचारों को वर्तमान काल में दोहराना भी आवश्यक है।

8. अवचेतन मन सत्य और कल्पना के बीच का अंतर नहीं जानता है, आपका शक्तिशाली अवचेतन मन , जैसा आप उसे कहेंगे, वह वैसा ही करेगा। इसके लिए अपने विचारों को सकारात्मक रूप से व्यक्त करना महत्वपूर्ण है क्योंकि अवचेतन मन नकारात्मक विचारों को नहीं समझ सकता। योग के माध्यम से हम अपने अशांत मन को नियंत्रित कर सकते हैं और अपनी श्वास और विचारों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए ध्यान कर सकते हैं। ध्यान में विभिन्न मुद्राएं और त्राटक भी शामिल हो सकते हैं। हमें अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन्हें स्पष्ट और सकारात्मक रूप से देखना चाहिए और नकारात्मक विचारों से बचना चाहिए। 17 सेकंड के लिए लगातार एक विचार पर ध्यान केंद्रित करके, हमारे अवचेतन मन की शक्ति से एक वास्तविकता बन सकता है। हमारा अवचेतन मन उर्वर भूमि की तरह है, जहां हमारे विचार बीज हैं जो फलदार वृक्षों में विकसित हो सकते हैं। इसलिए हमें सकारात्मक रूप से सोचना चाहिए और अपने अवचेतन मन की अनंत शक्ति का उपयोग अपने सपनों को प्राप्त करने और ईश्वर के करीब होने के लिए करना चाहिए। शक्तिशाली अवचेतन मन हमेशा सक्रिय रहता है, जबकि आप सोए हुए होते हैं। यदि आप सकारात्मक विचार बोते हैं, तो आप सकारात्मक परिणाम प्राप्त करेंगे, लेकिन यदि आप नकारात्मक विचार बोते हैं, तो आप नकारात्मक परिणाम अनुभव करेंगे। आप अपने अवचेतन मन को नियंत्रित नहीं कर सकते, लेकिन आप इसे सकारात्मक परिणामों की ओर निर्देशित कर सकते हैं। आपका चेतन मन आपके विचारों और कार्यों को नियंत्रित करता है, लेकिन आपका अवचेतन मन आपके जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों को प्रभावित करता है। अपने अवचेतन मन तक पहुँचने के लिए, आपको अपने चेतन मन को कमजोर करना होगा , जब आप सो रहे होते हैं तो आपका अवचेतन मन सबसे कमजोर होता है, और आप सही दृष्टिकोण से इसके दरवाजे को तोड़ सकते हैं। यदि आप अपने अवचेतन मन में प्रचुरता के सकारात्मक विचारों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो आप अपने जीवन में समृद्धि को आकर्षित करेंगे। इसके विपरीत, यदि आप गरीबी

के नकारात्मक विचारों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तो
आप अधिक कमी को आकर्षित करेंगे। ज्ञानी संतों ने हमेशा सकारात्मक सोच के महत्व पर बल दिया है।
अवचेतन मन हमारी मानसिक क्षमता के 95% के लिए जिम्मेदार है, और इसमें ईश्वर
के समान अनंत शक्तियाँ हैं। आपका चेतन मन, जो आपके मस्तिष्क का केवल
5% हिस्सा बनाता है, निर्णय लेने और विचार प्रक्रियाओं के लिए जिम्मेदार होता है। हालाँकि, आपका
अवचेतन मन आपकी बाहरी परिस्थितियों, जैसे धन, खुशी और सफलता को आकार देने के लिए ज़िम्मेदार है।
जब आप सो रहे होते हैं तब भी यह 24/7 संचालित होता है। प्रश्न यह है कि आपका
चेतन मन सबसे अधिक संवेदनशील कब होता है? जब आप सोते हैं तो आपका चेतन
मन काम करना बंद कर देता है और केवल अवचेतन मन सक्रिय रहता है। अपने अवचेतन
में विचारों को डालने का यह सबसे अच्छा समय
है क्योंकि यह उन्हें वास्तविकता बनाने की शक्ति रखता है। जब आप जाग रहे होते हैं, तो आपका चेतन मन इस प्रक्रिया में बाधा डालता है। आपको दोनों के बीच एक जगह जाना होगा जहां आप जागे रहोगे लेकिन आपका चेतन मन सो जाएगा और आपका अवचेतन मन जागा रहेगा. जब आप चेतन मन को सुला देंगे, उस समय आप आसानी से अवचेतन मन में अपना कोई भी प्रभाव डाल सकते हैं. सोने से पहले आत्म-शांति करें. अपने शरीर को स्वस्थ रखें. जागृत और नींद में रहे. आपका शरीर सो जाएगा और आपको आधी नींद आ जाएगी, फिर भी आप कुछ जागृत हैं. जब आप आधी नींद में आ जाते हैं, आपका चेतन मन कमजोर हो जाता है. और आप सीधे अपने अवचेतन को ट्रिगर कर सकते हैं ,महसूस करें और आधी नींद की अवस्था में आकर उसी घटना को सोचें जो आप अपने जीवन में देखना चाहते हैं. सुबह उठने पर भी यही काय करना चाहिए. उठे हुए चेतन मन अचानक जागृत नहीं होता. धीरे-धीरे उठता है. तो उस समय भी यह बुद्धिमान मन कमजोर है. इसलिए सुबह उठते ही अपना लक्ष्य सोचें. आप इस प्रकार 21 दिन तक यह करेंगे तो परिवर्तन या बदलाव हो सकता है. 22वें दिन में आपको अपने जीवन में ऐसे अनुभव मिलने लगेंगे जब आप अपने लक्ष्य को पूरा करने में सक्षम होंगे.

विपश्यना (Vipassana) ध्यान (Meditation) विधि :

भगवान शंकर ने मां पार्वती को ध्यान की 112 विधियां बताई थी जो 'विज्ञान भैरव तंत्र' में संग्रहित हैं। ओशो रजनीश ने ध्यान की 100 से अधिक विधियों का वर्णन अपने प्रवचनों में किया हैं। विपश्यना (Vipassana) एक प्राचीन ध्यान (Meditation) विधि है, **Vipassana** इसे संस्कृत में विपश्यना तथा पालि में विपस्सना कहते हैं। यह तीन शब्दों से मिलकर बना है **वि+ पश्य+ ना** जिसका अर्थ है **विशेष प्रकार से देखना**। दूसरों शब्दों में कहूं तो **साक्षी होकर देखना**। ,**देखकर लौटना.** इसे आत्म निरीक्षण और आत्म शुद्धि की सबसे बेहतरीन पद्धति माना गया है. 2500 साल पहले भगवान बुद्ध ने इसी ध्यान विधि के जरिए बुद्धत्व हासिल किया था. भगवान बुद्ध ने इसे सरलतम रूप में लोगों के सामने रखा था.यह ध्यान विधि खुद को जानने (Know Yourself) में आपकी मदद करती है. विपश्यना एक आत्मदर्शन की विद्या है। जिसका अभ्यास करते –करते धीरे-धीरे हमारे नये संस्कार बनना बन्द हो जाते है और फिर पुराने संस्कार भी धीरे-धीरे क्षीण हो जाते है। और इस तरह समता में स्थित होकर आप मुक्ति(निर्वाण) को प्राप्त कर लेते हैं।

यह प्राणायाम और साक्षीभाव का मिलाजुला योग है.इस विधि में खुद की सांस को महसूस करना यानि कि सांस के आवागमन को महसूस करना और उसके प्रति सजग रहना अभ्यास किया जाता है. विपश्यना ध्यान के पांच सिद्धांत माने गए हैं. जीव हिंसा की पूर्ण मनाही, चोरी ना करना, बह्मचर्य का पालन, अपशब्दों का प्रयोग ना करना, नशे से दूर रहना इसके मूल पांच सिद्धांत है.

विपश्यना बड़ा सीधा-सरल प्रयोग है। अपनी आती-जाती श्वास के प्रति साक्षीभाव। प्रारंभिक अभ्यास में उठते-बैठते, सोते-जागते, बात करते या मौन रहते किसी भी स्थिति में बस श्वास के आने-जाने को नाक के छिद्रों में महसूस करें। जैसे अब तक आप अपनी श्वासों पर ध्यान नहीं देते थे लेकिन अब स्वाभाविक रूप से उसके आवागमन को साक्षी भाव से देखें या महसूस करें कि ये श्वास छोड़ी और ये ली। श्वास लेने और छोड़ने के बीच जो गैप है, उस पर भी सहजता से ध्यान दें। जबरन यह कार्य नहीं करना है। बस, जब भी ध्यान आ जाए तो सब कुछ बंद करके इसी पर ध्यान देना ही विपश्यना है।

श्वास के अलावा दूसरी स्टेप में आप बीच बीच में यह भी देखें कि यह एक विचार आया और गया, दूसरा आया। यह क्रोध आया और गया। किसी भी कीमत पर इन्वॉल्व नहीं होना है। बस चुपचाप देखना है कि आपके मन, मस्तिष्क और शरीर में किसी तरह की क्रिया और प्रतिक्रियाएं होती रहती है।
शरीर और आत्मा के बीच श्वास ही एक ऐसा सेतु है, जो हमारे विचार और भावों को ही संचालित नहीं करता है बल्कि हमारे शरीर को भी जिंदा बनाए रखता है। श्वास जीवन है। ओशो कहते हैं कि यदि तुम श्वास को ठीक से देखते रहो, तो अनिवार्य रूपेण, अपरिहार्य रूप से, शरीर से तुम भिन्न अपने को जानने लगोगे। जो श्वास को देखेगा, वह श्वास से भिन्न हो गया, और जो श्वास से भिन्न हो गया वह शरीर से तो भिन्न हो ही गया। शरीर से छूटो, श्वास से छूटो, तो शाश्वत का दर्शन होता है। उस दर्शन में ही उड़ान है, ऊंचाई है, उसकी ही गहराई है। बाकी न तो कोई ऊंचाइयां हैं जगत में, न कोई गहराइयां हैं जगत में। बाकी तो व्यर्थ की आपाधापी है।

विपस्सना के साथ सबसे अच्छी बात यह है कि आप इसे कहीं भी कर सकते हैं। आपके आसपास बैठे लोगों को भी इस बात का पता नहीं चलेगा कि आप क्या कर रहे हैं। यह प्रक्रिया बाहर से देखने में जितनी सरल है, इसमें उतनी ही अधिक गहराई है, जिसे अपनाने के बाद ही महसूस किया जा सकता है। इस ध्यान विधि को आप सुबह एक घंटा या शाम को एक घंटा कर सकते हैं. अगर आप दोनों वक्त करते हैं तो यह काफी लाभकारी साबित होगा.

- ✓ अपनी आती जाती स्वाभाविक साँस पर ध्यान देना। (आनापाना साधना)
- ✓ नाक के किस सुर से साँस अन्दर आ रही दाँये से बाँये से या फिर दोनो से। इस पर ध्यान देंगे। नाक के अन्दर साँस कहाँ-कहाँ टकरा रही है, इस पर ध्यान देंगे। सम्पुर्ण नाक मे होने संवेदनाओ पर ध्यान देंगे।(आनापाना साधना)
- ✓ अपनी मूछ वाली जगह पर होने वाली संवेदनाओ पर सारा ध्यान देना।(आनापाना साधना)
- ✓ अपने सिर से लेकर पैर तक शरीर के प्रत्येक अंग मे से एक-एक करके अपना मन गुजारना और उसमें होने वाली संवेदनओ पर ध्यान देना।(विपश्यना साधना)
- ✓ अपने सिर से लेकर पैर तक और अपने पैर से लेकर सिर तक शरीर के प्रत्येक अंग मे से अपना मन गुजारना और उसमें होने वाली संवेदनओ पर ध्यान देना।(विपश्यना साधना)
- ✓ अपने सारे शरीर में एक साथ एक जैसी संवेदनाओ की धारा प्रवाह का अनुभव करना।
- ✓ अपने शरीर के भीतरी अंगो में से भी अपने मन को गुजारते हुए होने वाली संवेदनाओ पर ध्यान देना। अपनी रीढ की हड्डी में से अपना मन नीचे से ऊपर गुजारते हुए होने वाली संवेदनाओ पर ध्यान देना। (विपश्यना साधना)
- ✓ संवेदनाये अच्छी भी होंगी और बुरी भी। आपको न तो अच्छी को साथ राग करना है और न बुरी के साथ द्वेश। आपको समता बनाये रखनी है। और जानना है कि ये सारी संवेदनायें अनित्य है।

.

विभूति योग गीता का दसवां अध्याय है (श्रीभगवान का ऐश्वर्य)जिसमें 42 श्लोक हैं।

सारांश : निरपेक्षता का ऐश्वर्य - चारों ओर श्री कृष्ण दिव्यता को देखें। परम कृपालु सर्वोत्तम नही बल्कि अद्वितीय हैं।

इस संसार में जो भी अच्छे -बुरे गुण हैं जैसे – ज्ञान, सुंदरता , शक्ति, डर, साहस, हिंसा, आदि उन सबका निर्माण श्री कृष्ण ने ही किया है। जो लोग कृष्ण पर विश्वास रखते हैं वे अच्छे गुणों को प्राप्त करते हैं। और जो ऐसा नहीं करते हैं वे बुरे गुणों को प्राप्त करते हैं। दोनों को ही ईश्वर उनके कर्मों के अनुसार उचित फल अथवा दंड देते हैं।

भक्त कृष्ण को अजन्मा, अनादि, सभी लोकों के सर्वोच्च भगवान, उन पितृपुरुषों के निर्माता के रूप में जानते हैं जिनसे सभी जीव अवतरित होते हैं, हर चीज का मूल। बुद्धिमत्ता, ज्ञान, सत्यवादिता, मानसिक और इन्द्रिय नियंत्रण, अभय, अहिंसा, तपस्या, जन्म, मृत्यु, भय, संकट, अपकीर्ति - अच्छे और बुरे सभी गुण, कृष्ण द्वारा बनाए गए हैं। भक्ति सेवा व्यक्ति को सभी अच्छे गुणों को विकसित करने में मदद करती है।

जो भक्त प्रेमपूर्वक भक्ति सेवा में संलग्न होते हैं, उन्हें कृष्ण के ऐश्वर्य, रहस्यमय शक्ति और सर्वोच्चता पर पूर्ण विश्वास होता है। ऐसे भक्तों के विचार कृष्ण में बसते हैं। उनका जीवन उनकी सेवा के लिए समर्पित है, और वे एक दूसरे को प्रबुद्ध करके और उसके बारे में बातचीत करके महान आनंद और संतुष्टि प्राप्त करते हैं।

शुद्ध भक्ति सेवा में लगे भक्तों को, भले ही शिक्षा या वैदिक सिद्धांतों के ज्ञान की कमी हो, कृष्ण द्वारा भीतर से मदद की जाती है, जो व्यक्तिगत रूप से अज्ञान से पैदा हुए अंधेरे को नष्ट कर देते हैं।
अर्जुन ने कृष्ण की स्थिति को भगवान के सर्वोच्च व्यक्तित्व, परम निवास और पूर्ण सत्य, शुद्धतम, पारलौकिक और मूल व्यक्ति, अजन्मा, महानतम, मूल और सभी के भगवान के रूप में महसूस किया है। अब अर्जुन और जानना चाहता है। भगवान कृष्ण अधिक बताते हैं, और फिर निष्कर्ष निकालते हैं: "सभी ऐश्वर्यपूर्ण, सुंदर और गौरवशाली रचनाएँ मेरे वैभव की एक चिंगारी से निकलती हैं।"

विभूतियोग का सार यह है कि लोक में जितने देवता हैं, सब एक ही भगवान, की विभूतियाँ हैं, मनुष्य के समस्त गुण और अवगुण भगवान की शक्ति के ही रूप हैं। बुद्धि से इन देवताओं की व्याख्या चाहे ने हो सके किंतु लोक में तो वह हैं ही। कोई पीपल को पूज रहा है। कोई पहाड़ को कोई नदी या समुद्र को, कोई उनमें रहनेवाले मछली, कछुओं को। यों कितने देवता हैं, इसका कोई अंत नहीं। विश्व के इतिहास में देवताओं की यह भरमार सर्वत्र पाई जाती है। भागवतों ने इनकी सत्ता को स्वीकारते हुए सबको विष्णु का रूप मानकर समन्वय की एक नई दृष्टी प्रदान की। इसी का नाम विभूतियोग है। जो सत्व जीव बलयुक्त अथवा चमत्कारयुक्त है, वह सब भगवान का रूप है। इतना मान लेने से चित्त निर्विरोध स्थिति में पहुँच जाता है।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

सम्पूर्ण प्राणी मेरे ही अंश हैं और सदा मेरेमें ही स्थित रहनेवाले हैं। परन्तु वे प्रकृति और प्रकृतिके कार्य शरीर आदिके साथ तादात्म्य (मैं-मेरेपनका सम्बन्ध) करके जो कुछ भी कर्म करते हैं, उन कर्मों तथा उनके फलोंके

साथ उनका सम्बन्ध जुड़ता जाता है, जिससे वे बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं। जब महाप्रलयका समय आता है,(जिसमें ब्रह्माजी सौ वर्षकी आयु पूरी होनेपर लीन हो जाते हैं), उस समय प्रकृतिके परवश हुए वे सम्पूर्ण प्राणी प्रकृतिजन्य सम्बन्धको लेकर अर्थात् अपने-अपने कर्मोंको लेकर मेरी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं।महासर्गके समय प्राणियोंका जो स्वभाव होता है, उसी स्वभावको लेकर वे महाप्रलयमें लीन होते हैं।

'पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्'-- महाप्रलयके समय अपने-अपने कर्मोंको लेकर प्रकृतिमें लीन हुए प्राणियोंके कर्म जब परिपक्व होकर फल देनेके लिये उन्मुख हो जाते हैं, तब प्रभुके मनमें **'बहु स्यां प्रजायेय'** ऐसा संकल्प हो जाता है। यही महासर्गका आरम्भ है। इसीको आठवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहा है -- **'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः'** अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंका जो होनापन है, उसको प्रकट करनेके लिये भगवान्का जो संकल्प है, यही विसर्ग (त्याग) है और यही आदिकर्म है। चौदहवें अध्यायमें इसीको **'गर्भं' 'दधाम्यहम्'** (14। 3) और **'अहं बीजप्रदः पिता'** (14। 4) कहा है।तात्पर्य यह हुआ कि कल्पोंके आदिमें अर्थात् महासर्गके आदिमें ब्रह्माजीके प्रकट होनेपर मैं पुनः प्रकृतिमें लीन हुए, प्रकृतिके परवश हुए, उन जीवोंका उनके कर्मोंके अनुसार उन-उन योनियों(शरीरों-) के साथ विशेष सम्बन्ध करा देता हूँ--यह मेरा उनको रचना है। इसीको भगवान्ने चौथे अध्यायके तेरहवें श्लोकमें कहा है--**'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'**अर्थात् मेरे द्वारा गुणों और कर्मोंके विभागपूर्वक चारों वर्णोंकी रचना की गयी है।ब्रह्माजीके एक दिनका नाम 'कल्प' है, जो मानवीय एक हजार चतुर्युगीका होता है। इतने ही समयकी ब्रह्माजीकी एक रात होती है। इस हिसाबसे ब्रह्माजीकी आयु सौ वर्षोंकी होती है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर जब ब्रह्माजी लीन हो जाते हैं, उस महाप्रलयको यहाँ **'कल्पक्षये'** पदसे कहा गया है। जब ब्रह्माजी पुनः प्रकट होते हैं, उस महासर्गको यहाँ **'कल्पादौ'**पदसे कहा गया है।

यहाँ **'सर्वभूतानि प्रकृतिं यान्ति'** महाप्रलयमें तो जीव स्वयं प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और **'तानि कल्पादौ विसृजामि'** महासर्गके आदिमें मैं उनकी रचना करता हूँ -- ये दो प्रकारकी क्रियाएँ देनेका तात्पर्य है कि क्रियाशील होनेसे प्रकृति स्वयं लयकी तरफ जाती है अर्थात् क्रिया करते-करते थकावट होती है तो प्रकृतिका परमात्मामें लय होता है। ऐसी प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेसे महाप्रलयके समय प्राणी भी स्वयं प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और प्रकृति परमात्मामें लीन हो जाती है। महासर्गके आदिमें उनके परिपक्व कर्मोंका फल देकर उनको शुद्ध करनेके लिये मैं उनके शरीरोंकी रचना करता हूँ। रचना उन्हीं प्राणियोंकी करता हूँ, जो कि प्रकृतिके परवश हुए हैं। जैसे मकानका निर्माण तो किया जाता है, पर वह धीरे-धीरे स्वतः गिर जाता है, ऐसे ही सृष्टिकी रचना तो भगवान् करते हैं, पर प्रलय स्वतः होता है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रकृतिके कार्य(संसारशरीर) की रचनामें तो भगवान्का हाथ होता है पर प्रकृतिका कार्य ह्रासकी तरफ स्वतः जाता है। ऐसे ही भगवान्का अंश होनेके कारण जीव स्वतः भगवान्की तरफ, उत्थानकी तरफ जाता है। परन्तु जब वह कामना, ममता, आसक्ति करके स्वतः पतन-(ह्रास-) की तरफ जानेवाले नाशवान् शरीरसंसारके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, तब वह पतनकी तरफ चला जाता है। इसलिये मनुष्यको अपने विवेकको महत्त्व देकर तत्परतासे अपना उत्थान करना चाहिये अर्थात् कामना, ममता, आसक्तिका त्याग करके केवल भगवान्के ही सम्मुख हो जाना चाहिये।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (द्वादश अध्याय, श्लोक 15)
जिससे किसी को कष्ट नहीं पहुँचता तथा जो अन्य किसी के द्वारा विचलित नहीं होता, जो सुख-दुख में, भय तथा चिन्ता में समभाव रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

॥ वासुदेव सर्वम् ॥

विश्वरूपदर्शन योग गीता का ग्यारहवां अध्याय है (विराट रूप)जिसमें 55 श्लोक है।

सारांश : सार्वभौम रूप - सत्य को देखने के लिए आत्मसमर्पण करें। यह संसार भी ईश्वर का स्वरूप है, चिन्ताएं मिटाने का प्रभुचिन्तन ही श्रेष्ठ और एक मात्र उपाय है।

इस अध्याय में श्री कृष्ण अर्जुन को अपने विराट रूप के दर्शन करवाते हैं। अर्जुन देखता है कि उनका स्वरुप तीनों लोकों में फैला हुआ है। समस्त ब्रह्माण्ड में उनकी ही छवि है।उनके चार हाथ हैं। और असंख्य सिर हैं। कुछ सिर बेहद डरावने हैं और कुछ बेहद सौम्य। कुछ मुखों से आग, जल आदि निकल रहे हैं। उनके एक तरफ से जीव -जंतु जन्म लेकर पृथ्वी की तरफ आ रहे हैं। और दूसरी तरफ वे मौत के गाल में समा रहे हैं। जन्म और मृत्यु सब श्री कृष्ण के द्वारा ही हैं। यह सब देखकर अर्जुन विस्मित हो जाता है और श्रदा – पूर्वक प्रभु के चरणों में नमन करता है।

जब अर्जुन ने भगवान का विराट रुप देखा तो उसके मस्तक का विस्फोटन होने लगा। ‘दिशो न जाने न लभे च शर्म’ ये ही घबराहट के वाक्य उनके मुख से निकले और उसने प्रार्थना की कि मानव के लिए जो स्वाभाविक स्थिति ईश्वर ने रखी है, वही पर्याप्त हैं।

निर्दोष लोगों को ढोंगियों से बचाने के लिए, अर्जुन ने कृष्ण से अपने सार्वभौमिक रूप का प्रदर्शन करके अपनी दिव्यता को साबित करने के लिए कहा - एक ऐसा रूप जो कोई भी जो भगवान होने का दावा करता है उसे दिखाने के लिए तैयार रहना चाहिए। कृष्ण अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं जिसके द्वारा चमकदार, चमकदार, असीमित सार्वभौमिक रूप को देखने के लिए, जो एक स्थान पर प्रकट करता है, वह सब कुछ जो कभी था या अब है या होगा।

अर्जुन हाथ जोड़कर प्रणाम करता है और भगवान की स्तुति करता है। तब कृष्ण ने खुलासा किया कि पांचों पांडवों को छोड़कर, युद्ध के मैदान में इकट्ठे हुए सभी सैनिकों को मार दिया जाएगा। इसलिए कृष्ण अर्जुन को अपने साधन के रूप में लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और उसे जीत और एक फलते-फूलते राज्य की गारंटी देते हैं।

अर्जुन ने कृष्ण से अपना भयानक रूप वापस लेने और अपना मूल रूप दिखाने का अनुरोध किया। तब भगवान अपने चतुर्भुज रूप और अंत में अपने मूल द्विभुज रूप को प्रदर्शित करते हैं। भगवान के सुंदर मानवीय रूप को देखकर अर्जुन शांत हो जाता है। जो शुद्ध भक्ति सेवा में रत है, वह ऐसा रूप देख सकता है

निराकार, साकार और अवतार ये हैं मनुष्य की पूजा, उपासना और ध्यान के तीन भगवान , निर्गुण और सगुण भक्ति में अंतर

निराकार ईश्वर

हम लोग सदियों से यह बात कहते और सुनते आ रहे कि परमेश्वर निराकार है प्रकाश स्वरूप हैं, निराकार का मतलब जो सृष्टि के कण-कण में व्यापत हैं, सिद्ध पुरुष सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वदा परमेश्वर को सबके बुरे-भले कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को अलग न मानते हुए कुकर्म करना तो बड़ी दूर का बात रही वह मन में भी कुचेष्टा नहीं कर सकता । क्योंकि वह जानता है जो मैं मन, वचन, कर्म से भी बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी निराकार ब्रह्म के न्याय से बिना दण्ड पाए कदापि नही

बचूंगा। इसलिए ईश्वर को निराकार रूप में भजने वाले उपासक साधक कण कण में विराजमान मानते हुए शुद्ध, पवित्र जीवन जीते हुए सबकों श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते हैं। भगवान एक अनंत अगाध समुद्र की भाँती है, जिस साधक ने जितनी डुबकी लगाई उसने परमात्मा का उतना ही बखान किया।
श्रीराम चरित्र मानस में भी ऐसा उल्लेख आता है कि राम निराकार हैं या राजा दशरथ के पुत्र (साकार) जिसका निराकरण स्वयं भगवान शंकर जी ने बालकाण्ड में किया हैं।

जेही इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोई दसरथ सुत भगत हित कोसलपति बगवान ।।

साकार ईश्वर

कहा जाता हैं कि इस अखिल विश्व ब्रह्मांड व जीव मात्र को संचालित करने वाली सूक्ष्म शक्ति हैं जो दिखाई तो नहीं देती पर उसके होने का अनुभव बराबर होता रहता हैं। लेकिन परमात्मा का साकार रूप देखना हो तो यह विश्व ही परमेश्वर माना जा सकता है। साकार रूप में ईश्वर के दर्शन करना बड़ा ही सहज और सरल हैं, साकार अर्थात प्राणी मात्र और कहा जाता है कि प्राणी मात्र में भी ईश्वर बालक, दुःखी जन में ईश्वर का वास होता हैं इसलिए साकार ब्रह्म के उपासक पीड़ित मानवता की सेवा को ही पर्मात्मा की पूजा, जप, तप ध्यान आदि मानते हैं। भगवत गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सातवें अध्याय से ग्यारहवें अध्याय तक तो विशेष रूप से सगुण भगवान की उपासना का महत्त्व दिखलाया है। ग्याहरवें अध्याय के अंत में सगुण-साकार भगवान की अनन्य भक्ति का फल भगवत्प्राप्ति बतलाकर 'मत्कर्मकृत्' से आरम्भ होने वाले इस अंतिम श्लोक में सगुण-साकार-स्वरूप भगवान के भक्त की विशेष-रूप से बड़ाई की। समग्र ब्रह्म का दर्शन न सम्भव है न आवश्यक न उपयोगी। ईश्वर दर्शन मानव-प्राणी की-अन्य प्राणधारियों की सत्प्रवृत्तियों के रूप में करना चाहिए। उस दिव्य प्रेरणा से सम्पन्न प्रकाश को ही परमेश्वर का साकार स्वरूप कह सकते हैं। वेदमंत्रः गायत्री मंत्रः- में उसी सविता देवता को वरेण्य-वन्दनीय कहा गया है। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

अवतार ईश्वर

इस सृष्टि में जब धर्म की हानि हानि होती है, पापाचार, अधर्म, अनाचार जैसे दुष्टों का बोलबाला बढ़ता है एवं साधु सन्तों, ऋषियों , सज्जनों के उद्धार लिए उन पर हो रहे अत्याचारों को खत्म करने के लिए तब-तब ईश्वर धर्म की स्थापना करने और धरती से दुष्टों का संहार करने के लिए चाहे श्रीराम हो, श्रीकृष्ण हो, श्री वानम, नरसिंह, वराह या कश्यप अवतार हो के रूप में अवतार लेते हैं, इस धरा धाम को पापियों से मुक्त कर धर्म की स्थापना करते हैं।
राम चरित्र मानस में तुलसीदास लिखते हैं कि-
जब-जब होई धरम के हानि....!
बढहिं अधम असुर अमिभानी...!!
तब-तब प्रभु धर विविध शरीरा...!
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा......!!
और इसी अवतार परंपरा के बारे स्वयं गीताकार योगेश्वर ने गीता में कहा कि-
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

भावार्थ : साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।
इससे स्पष्ट होता है कि ईश्वर धरती पूत्र बनकर हर युग में लेते रहे हैं और कहा जाता है कि इस कलयुग में भी अपने सज्जन भक्तों का उद्धार करने के लिए लेंगे।

निर्गुण और सगुण भक्ति में अंतर :

	निर्गुण भक्ति	सगुण भक्ति
1.	निर्गुण भक्ति में ईश्वर के निर्गुण रूप की आराधना की जाती है।	सगुण भक्ति में ईश्वर के सगुण रूप की उपासना की जाती है।
2.	निर्गुण में ईश्वर की रूप, रंग, गुण, जाति नहीं होती है।	सगुण भक्ति में ईश्वर की रूप, गुण, जाति होती है।
3.	निर्गुण भक्ति में गुरु को ज्ञान के नेत्रों को खोलने वाला बताया है।	सगुण भक्ति में गुरू की महिमा को अनंत बताया है।
4.	निर्गुण भक्ति में तीर्थमाला, मंदिर, मस्ज़िद, रोजा, नमाज, तिलक जपमाला आदि का विरोध किया गया है।	सगुण भक्ति में मूर्ति पूजा, नित्यध्मान, संकीर्तन तिलक, तीर्थयात्रा आदि को आवश्यक बताया है।
5.	निर्गुण भक्ति में ईश्वर में को निराकार मानकर मानक एक बताया है।	सगुण भक्ति में ईश्वर के अलग-अलग रूपों को बताकर अनेकता व अवतारों का वर्णन हुआ है।
उदाहरण	कबीर, वृंद, रहीम आदि ।	तुलसी, सूर, मीरा ,रसखान आदि ।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दु:खं देहवद्भिरवाप्यते।।
अव्यक्तमें आसक्त चित्तवाले-- इस विशेषणसे यहाँ उन साधकोंकी बात कही गयी है, जो निर्गुण-उपासनाको श्रेष्ठ तो मानते हैं, पर जिनका चित्त निर्गुणतत्त्वमें आविष्ट नहीं हुआ है। तत्त्वमें आविष्ट होनेके लिये साधकमें तीन बातोंकी आवश्यकता होती है - रुचि, विश्वास और योग्यता। शास्त्रों और गुरुजनोंके द्वारा निर्गुण-तत्त्वकी महिमा सुननेसे जिनकी (निराकारमें आसक्त चित्तवाला होने और निर्गुण-उपासनाको श्रेष्ठ माननेके कारण) उसमें कुछ रुचि तौ पैदा हो जाती है और वे विश्वासपूर्वक साधन आरम्भ भी कर देते हैं; परन्तु वैराग्यकी कमी और देहाभिमानके कारण जिनका चित्त तत्त्वमें प्रविष्ट नहीं होता-- ऐसे साधकोंके लिये
यहाँ **'अव्यक्तासक्तचेतसाम्'** पदका प्रयोग हुआ है।
भगवान्ने छठे अध्यायके सत्ताईसवें-अट्ठाईसवें श्लोकोंमें बताया है कि 'ब्रह्मभूत' अर्थात् ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित साधकको सुखपूर्वक ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। परन्तु यहाँ इस श्लोकमें **'क्लेश: अधिकतर:'** पदोंसे यह स्पष्ट किया है कि इन साधकोंका चित्त ब्रह्मभूत साधकोंकी तरह निर्गुण-तत्त्वमें सर्वथा तल्लीन नहीं हो पाया है। अत: उन्हें अव्यक्तमें 'आविष्ट' चित्तवाला न कहकर आसक्त चित्तवाला कहा गया है। तात्पर्य यह है कि इन साधकोंकी आसक्ति तो देहमें होती है पर अव्यक्तकी महिमा सुनकर वे निर्गुणोपासनाको ही श्रेष्ठ मानकर उसमें आसक्त हो जाते हैं; जबकि आसक्ति देहमें ही हुआ करती है, अव्यक्तमें नहीं।

तेरहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें **'अव्यक्तम्'** पद प्रकृतिके अर्थमें आया है तथा और भी कई जगह वह प्रकतिके लिये ही प्रयुक्त हुआ है; परन्तु यहाँ **'अव्यक्तासक्तचेतसाम्'** पदमें **'अव्यक्त'** का अर्थ प्रकृति नहीं, प्रत्युत निर्गुण-निराकार ब्रह्म है। कारण यह है कि इसी अध्यायके पहले श्लोकमें अर्जुनने **'त्वाम्'** पदसे सगुण-साकार स्वरूपके और **'अव्यक्तम्'** पदसे निर्गुण-निराकार स्वरूपके विषयमें ही प्रश्न किया है। उपासनाका विषय भी परमात्मा ही है, न कि प्रकृति; क्योंकि प्रकृति और प्रकृतिका कार्य तो त्याज्य है। इसलिये उसी प्रश्नके उत्तरमें भगवान्ने 'अव्यक्त' पदका (व्यक्तरूपके विपरीत) निर्गुण-निराकार स्वरूपके अर्थमें ही प्रयोग किया है। अतः यहाँ प्रकृतिका प्रसङ्ग न होनेके कारण 'अव्यक्त' पदका अर्थ प्रकृति नहीं लिया जा सकता।

नवें अध्यायके चौथे श्लोकमें **'अव्यक्तमूर्तिना'** पद सगुण-निराकार स्वरूपके लिये आया है। ऐसी दशामें यह प्रश्न हो सकता है कि यहाँ भी **'अव्यक्तासक्तचेतसाम्'** पदका अर्थ 'सगुण-निराकार' में आसक्त चित्तवाले पुरुष ही क्यों न ले लिया जाय? परन्तु ऐसा अर्थ भी नहीं लिया जा सकता; क्योंकि इसी अध्यायके पहले श्लोकमें अर्जुनके प्रश्नमें **'त्वाम्'** पद सगुण-साकारके लिये और **'अव्यक्तम्'** पदके साथ **'अक्षरम्'** पद निर्गुण-निराकारके लिये आया है। ब्रह्म क्या है? -- अर्जुनके इस प्रश्नके उत्तरमें आठवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें भगवान् बता चुके हैं कि परम् अक्षर ब्रह्म है अर्थात् वहाँ भी **'अक्षरम्'**पद निर्गुण-निराकारके लिये ही आया है। इसलिये अर्जुनने **'अव्यक्तम् अक्षरम्'** पदोंसे जिस निर्गुण-ब्रह्मके विषयमें प्रश्न किया था, उसीके उत्तरमें यहाँ ('अक्षर' विशेषण होनेसे) अव्यक्त पदसे निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही लेना चाहिये, सगुण-निराकार नहीं।

'क्लेशोऽधिकतरः' पदका भाव यह है कि जिन साधकोंका चित्त निर्गुण-तत्त्वमें तल्लीन नहीं होता, ऐसे निर्गुण-उपासकोंको देहाभिमानके कारण अपनी साधनामें विशेष कष्ट अर्थात् कठिनाई होती है । गौणरूपसे इस पदका भाव यह है कि साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थासे लेकर अन्तिम अवस्थातकके सभी निर्गुण-उपासकोंको सगुण-उपासकोंसे अधिक कठिनाई होती है।'**विशेष बात** अब सगुणउपासनाकी सुगमताओं और निर्गुणउपासनाकी कठिनताओंका विवेचन किया जाता है –

'सगुणउपासनाकी सुगमताएँ'

- ✓ सगुणउपासनामें उपास्यतत्त्वके सगुणसाकार होनेके कारण साधकके मनइन्द्रियोंके लिये भगवान्के स्वरूप? नाम? लीला? कथा आदिका आधार रहता है। भगवान्के परायण होनेसे उसके मनइन्द्रियाँ भगवान्के स्वरूप एवं लीलाओंके चिन्तन? कथाश्रवण? भगवत्सेवा और पूजनमें अपेक्षाकृत सरलतासे लग जाते हैं (गीता 8। 14)। इसलिये उसके द्वारा सांसारिक विषयचिन्तनकी सम्भावना कम रहती है।
- ✓ सांसारिक आसक्ति ही साधनमें क्लेश देती है। परन्तु सगुणोपासक इसको दूर करनेके लिये भगवान्के ही आश्रित रहता है। वह अपनेमें भगवान्का ही बल मानता है। बिल्लीका बच्चा जैसे माँपर निर्भर रहता है? ऐसे ही यह साधक भी भगवान्पर निर्भर रहता है। भगवान् ही उसकी सँभाल करते हैं (गीता 9। 22)।

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।।
करउँ सदा तिन कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी।।(मानस 3।) अतः उसकी सांसारिक आसक्ति सुगमतासे मिट जाती है।

- ✓ ऐसे उपासकोंके लिये गीतामें भगवान्ने **नचिरात्** आदि पदोंसे शीघ्र ही अपनी प्राप्ति बतायी है (गीता 12। 7)।
- ✓ सगुण-उपासकोंके अज्ञानरूप अन्धकारको भगवान् ही मिटा देते हैं (गीता 10। 11)।
- ✓ उनका उद्धार भगवान् करते हैं (गीता 12। 7)।
- ✓ ऐसे उपासकोंमें यदि कोई सूक्ष्म दोष रह जाता है, तो (भगवान्पर निर्भर होनेसे) सर्वज्ञ भगवान् कृपा करके उसको दूर कर देते हैं (गीता 18। 58? 66)।

- ✓ ऐसे उपासकोंकी उपासना भगवान्की ही उपासना है। भगवान् सदा-सर्वदा पूर्ण हैं ही। अतः भगवान्की पूर्णतामें किञ्चिन्मात्र भी संदेह न रहनेके कारण उनमें सुगमतासे श्रद्धा हो जाती है। श्रद्धा होनेसे वे नित्य-निरन्तर भगवत्परायण हो जाते हैं। अतः भगवान् ही उन उपासकोंको बुद्धियोग प्रदान करते हैं, जिससे उन्हें भगवत्प्राप्ति हो जाती है (गीता 10। 10)।
- ✓ ऐसे उपासक भगवान्को परम कृपालु मानते हैं। अतः उनकी कृपाके आश्रयसे वे सब कठिनाइयोंको पार कर जाते हैं। यही कारण है कि उनका साधन सुगम हो जाता है और भगवत्कृपाके बलसे वे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति कर लेते हैं (गीता 18। 56 58)।
- ✓ मनुष्यमें कर्म करनेका अभ्यास तो रहता ही है (गीता 3। 5), इसलिये भक्तको अपने कर्म भगवान्के प्रति करनेमें केवल भाव ही बदलना पड़ता है कर्म तो वे ही रहते हैं। अतः भगवान्के लिये कर्म करनेसे भक्त कर्मबन्धनसे सुगमतापूर्वक मुक्त हो जाता है (गीता 18। 46)।
- ✓ हृदयमें पदार्थोंका आदर रहते हुए भी यदि वे प्राणियोंकी सेवामें लग जाते हैं तो उन्हें पदार्थोंका त्याग करनेमें कठिनाई नहीं होती। सत्पात्रोंके लिये पदार्थोंके त्यागमें तो और भी सुगमता है। फिर भगवान्के लिये तो पदार्थोंका त्याग बहुत ही सुगमतासे हो सकता है।
- ✓ साधनां में विवेक और वैराग्यकी उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी प्रेम और विश्वासकी है। जैसे, कौरवोंके प्रति द्वेषवृत्ति रहते हुए भी द्रौपदीके पुकारनेमात्रसे भगवान् प्रकट हो जाते थे क्योंकि वह भगवान्को अपना मानती थी। भगवान् तो अपने साथ भक्तके प्रेम और विश्वासको ही देखते हैं, उसके दोषोंको नहीं। भगवान्के साथ अपनापनका सम्बन्ध जोड़ना उतना कठिन नहीं (क्योंकि भगवान्की ओरसे अपनापन स्वतःसिद्ध है), जितना कि पात्र बनना कठिन है।

'निर्गुणउपासनाकी कठिनताएँ'

- ✓ निर्गुणउपासनामें उपास्यतत्त्वके निर्गुणनिराकार होनेके कारण साधकके मनइन्द्रियोंके लिये कोई आधार नहीं रहता। आधार न होने तथा वैराग्यकी कमीके कारण इन्द्रियोंके द्वारा विषयचिन्तनकी अधिक सम्भावना रहती है।
- ✓ देहमें जितनी अधिक आसक्ति होती है, साधनमें उतना ही अधिक क्लेश मालूम देता है। निर्गुणोपासक उसे विवेकके द्वारा हटानेकी चेष्टा करता है। विवेकका आश्रय लेकर साधन करते हुए वह अपने ही साधनबलको महत्त्व देता है। बँदरीका छोटा बच्चा जैसे (अपने बलपर निर्भर होनेसे) अपनी माँको पकड़े रहता है और अपनी पकड़से ही अपनी रक्षा मानता है? ऐसे ही यह साधक अपने साधनके बलपर अपनी उन्नति मानता है (गीता 18। 51 -- 53)। इसीलिये श्रीरामचरितमानसमें भगवान्ने इसको अपने समझदार पुत्रकी उपमा दी है --

मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी।
'बालक सुत सम दास अमानी।।' (3। 43। 4)

- ✓ ज्ञानयोगियोंके द्वारा लक्ष्यप्राप्तिके प्रसङ्गमें चौथे अध्यायके उनतालीसवें श्लोकमें **'अचिरेण'** पद तत्त्वज्ञानके अनन्तर शान्तिकी प्राप्तिके लिये आया है, न कि तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये।
- ✓ निर्गुण-उपासक तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति स्वयं करते हैं (गीता 13। 34)।
- ✓ ये अपना उद्धार (निर्गुण-तत्त्वकी प्राप्ति) स्वयं करते हैं (गीता 5। 24)।
- ✓ ऐसे उपासकोंमें यदि कोई कमी रह जाती है, तो उस कमीका अनुभव उनको विलम्बसे होता है और कमीको ठीक-ठीक पहचाननेमें भी कठिनाई होती है। हाँ, कमीको ठीक-ठीक पहचान लेनेपर ये भी उसे दूर कर सकते हैं।
- ✓ चौथे अध्यायके चौंतीसवें और तेरहवें अध्यायके सातवें श्लोकमें भगवान्ने ज्ञानयोगियोंको ज्ञान-प्राप्तिके लिये गुरुकी उपासनाकी आज्ञा दी है। अतः निर्गु-उपासनामें गुरुकी आवश्यकता भी है; किंतु गुरुकी

पूर्णताका निश्चित पता न होनेपर अथवा गुरुके पूर्ण न होनेपर स्थिर श्रद्धा होनेमें कठिनाई होती है तथा साधनकी सफलतामें भी विलम्बकी सम्भावना रहती है।

- ✓ ऐसे उपासक उपास्य-तत्त्वको निर्गुण, निराकार और उदासीन मानते हैं। अतः उन्हें भगवान्की कृपाका वैसा अनुभव नहीं होता। वे तत्त्वप्राप्तिमें आनेवाले विघ्नोंको अपनी साधनाके बलपर ही दूर करनेमें कठिनाईका अनुभव करते हैं। फलस्वरूप तत्त्वकी प्राप्तिमें भी उन्हें विलम्ब हो सकता है।
- ✓ ज्ञानयोगी अपनी क्रियाओँको सिद्धान्ततः प्रकृतिके अर्पण करता है; किन्तु पूर्ण विवेक जाग्रत् होनेपर ही उसकी क्रियाएँ प्रकृतिके अर्पण हो सकती हैं। यदि विवेककी किञ्चिन्मात्र भी कमी रही तो क्रियाएँ प्रकृतिके अर्पण नहीं होंगी और साधक कर्तृत्वाभिमान रहनेसे कर्मबन्धनमें बँध जायगा।
- ✓ जबतक साधकके चित्तमें पदार्थोंका किञ्चिन्मात्र भी आदर तथा अपने कहलानेवाले शरीर और नाममें अहंताममता है, तबतक उसके लिये पदार्थोंको मायामय समझकर उनका त्याग करना कठिन होता है।
- ✓ यह साधक पात्र बननेपर ही तत्त्वको प्राप्त कर सकेगा। पात्र बननेके लिये विवेक और तीव्र वैराग्यकी आवश्यकता होगी, जिनको आसक्ति रहते हुए प्राप्त करना कठिन है।

'अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते' - 'देही' 'देहभृत्' आदि पदोंका अर्थ साधारणतया 'देहधारी पुरुष' लिया जाता है। प्रसङ्गानुसार इनका अर्थ 'जीव' और 'आत्मा 'भी लिया जाता है। यहाँ **'देहवद्भिः'** पदका अर्थ 'देहाभिमानी मनुष्य' लेना चाहिये; क्योंकि निर्गुणउपासकोंके लिये इसी श्लोकके पूर्वार्धमें **'अव्यक्तासक्तचेतसाम्'** पद आया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वे निर्गुण-उपासनाको श्रेष्ठ तो मानते हैं; परन्तु उनका चित्त देहाभिमानके कारण निर्गुण-तत्त्वमें आविष्ट नहीं, हुआ है। देहाभिमानके कारण ही उन्हें साधनमें अधिक क्लेश होता है।निर्गुण-उपासनामें देहाभिमान ही मुख्य बाधा है -- **'देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति' --** इस बाधाकी ओर ध्यान दिलानेके लिये ही भगवान्ने **'देहवद्भिः'** पद दिया है। इस देहाभिमानको दूर करनेके लिये ही (अर्जुनके पूछे बिना ही) भगवान्ने तेरहवाँ और चौदहवाँ अध्याय कहा है। उनमें भी तेरहवें अध्यायका प्रथम श्लोक देहाभिमान मिटानेके लिये ही कहा गया है।ब्रह्मके निर्गुणनिराकार स्वरूपकी प्राप्तिको यहाँ **'अव्यक्ताः गतिः'** कहा गया है। साधारण मनुष्योंकी स्थिति व्यक्त अर्थात् देहमें होती है। इसलिये उन्हें अव्यक्तमें स्थित होनेमें कठिनाईका अनुभव होता है। यदि साधक अपनेको देहवाला न माने, तो उसकी अव्यक्तमें सुगमता और शीघ्रतापूर्वक स्थिति हो सकती है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव त्वमेव सर्वम् मम देव देव ॥

हे शक्तिशाली भगवान! तुम मेरे माता और पिता हो, तुम मेरे भाई और मित्र हो। आप मेरी शिक्षा और धन हैं, आप मेरे सब कुछ हैं और मैं आप में मुक्ति चाहता हूं।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

मैं भगवान को नमन करता हूं जो सभी के दिलों में रहते हैं"

॥ वासुदेव सर्वम् ॥

भक्ति योग गीता का बारहवां अध्याय है जिसमें 20 श्लोक हैं।

सारांश : भक्ति सेवा सर्वोच्च भगवान में अपने दिमाग और दिल को अवशोषित करें। अनन्यता और बिना पूर्ण समपर्ण भक्ति नही हो सकती और बिना भक्ति भगवान नही मिल सकते।

श्री कृष्ण कहते हैं कि सबसे बड़ा योग भक्ति योग ही है। यदि कोई बड़े -बड़े वेद -पुराण नहीं पढ़ सकता, यज्ञ -हवन- तप आदि नहीं कर सकता तो उसे भक्ति योग का सहारा लेना चाहिए। मनुष्य को ईश्वर के प्रेम में लीन होकर उसकी भक्ति करनी चाहिए। उसके भजन गाने चाहिये। उसका मनन -चिंतन -और गुणगान करना चाहिये। स्वयं को पूरी तरह से श्री कृष्ण के चरणों में समप्रित कर देना चाहिए। ऐसे भक्त श्री कृष्ण को परम -प्रिय होते हैं। और वे खुद उनके भक्त हो जाते हैं।

कौन अधिक पूर्ण है," अर्जुन पूछता है, "भगवान के साकार रूप की पूजा और सेवा करने वाला भक्त या निराकार ब्रह्म का ध्यान करने वाला अध्यात्मवादी?"

कृष्ण उत्तर देते हैं, "जो भक्त अपने मन को मेरे साकार रूप में स्थिर करता है, वह सर्वाधिक सिद्ध है।"

क्योंकि भक्ति सेवा मन और इंद्रियों को नियोजित करती है, यह एक देहधारी आत्मा के लिए सर्वोच्च गंतव्य तक पहुँचने का आसान, स्वाभाविक तरीका है। अवैयक्तिक मार्ग अप्राकृतिक और कठिनाइयों से भरा है। कृष्ण इसकी अनुशंसा नहीं करते हैं।

भक्ति सेवा की सर्वोच्च अवस्था में, व्यक्ति की चेतना पूरी तरह से कृष्ण पर स्थिर होती है। एक कदम नीचे नियामक भक्ति सेवा का अभ्यास है। उससे भी नीचे कर्मयोग है, कर्म के फल का त्याग। सर्वोच्च प्राप्त करने के लिए अप्रत्यक्ष प्रक्रियाओं में ध्यान और ज्ञान की खेती शामिल है।

एक भक्त जो शुद्ध, विशेषज्ञ, सहिष्णु, आत्मसंयमी, साम्य, ईर्ष्यारहित, मिथ्या अहंकार से मुक्त, सभी जीवों के प्रति मित्रवत, और मित्रों और शत्रुओं के समान है, वह भगवान को प्रिय है।

मीरा और सूरदास सच्चे भक्तों का उदाहरण हैं। ऐसे भक्तों को प्रभु मोक्ष प्रदान करते हैं।

भक्तियोग – जाने भक्ति योग क्या है, कितने प्रकार की होती है / संक्षिप्त सार

भक्ति संस्कृत के मूल शब्द “भज” से निकला है – जिसका अर्थ है प्रेममयी सेवा और संस्कृत में योग का अर्थ है “जोड़ना”।
भक्ति योग का अर्थ है परमेश्वर से प्रेममयी सेवा के द्वारा जुड़ना। प्रेम में स्वार्थ नहीं होता है । प्रेम में लोग बलिदान देते हैं । प्रेम में लोग त्याग करते हैं । प्रेम में उपहार उस वस्तु को देते हैं जो अनमोल हो । अर्थात वह प्रेम जो अनमोल हो, जिसमें स्वार्थ नहीं हो उस नि:स्वार्थ सेवा द्वारा परमेश्वर से जुड़ने का नाम भक्ति योग है । पराभक्ति ही भक्तियोग के अन्तर्गत आती है जिसमें मुक्ति को छोड़कर अन्य कोई अभिलाषा नहीं होती। गीता के अनुसार पराभक्ति तत्व ज्ञान की वह पराकाष्ठा है जिसको प्राप्त होकर और कुछ भी जानना बांकी नहीं रह जाता ।

भक्तियोग में ईश्वर के किसी रूप की आराधना भी सम्मिलित है। ईश्वर सब जगह है। ईश्वर हमारे भीतर और हमारे चारों ओर निवास करता है। यह ऐसा है जैसे हम ईश्वर से एक उत्तम धागे से जुड़े हों – प्रेम का धागा। ईश्वर विश्व प्रेम है। प्रेम और दैवी अनुकम्पा हमारे चारों ओर है और हमारे माध्यम से बहती है, किन्तु हम इसके प्रति सचेत नहीं हैं। जिस क्षण यह चेतनता, यह दैवीय प्रेम अनुभव कर लिया जाता है उसी क्षण से व्यक्ति किसी अन्य वस्तु की चाहना ही नहीं करता। तब हम ईश्वर प्रेम का सच्चा अर्थ समझ जाते हैं।
भक्तिहीन व्यक्ति एक जलहीन मछली के समान, बिना पंख के पक्षी, बिना चन्द्रमा और तारों के रात्रि के समान है। सभी को प्रेम चाहिये। इसके माध्यम से हम वैसे ही सुरक्षित और सुखी अनुभव करते हैं जैसे एक बच्चा अपनी माँ की बाहों में या एक यात्री एक लम्बी कष्टदायी यात्रा की समाप्ति पर अनुभव करता है।

भक्ति के प्रकार

- ✓ अपरा भक्ति– अहम् भावपूर्ण प्रेम
- ✓ परा भक्ति– विश्व प्रेम

भक्त उसके साथ जो भी घटित होता है, उसे वह ईश्वर के उपहार के रूप में स्वीकार करता है। कोई इच्छा या अपेक्षा नहीं होती, ईश्वर की इच्छा के समक्ष केवल पूर्ण समर्पण ही होता है। यह भक्त जीवनभर स्थिति को प्रारब्ध द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत वस्तु के रूप में ही स्वीकार करता है। इसमें कोई ना नुकर नहीं, उसकी एक मेव प्रार्थना है 'ईश्वर तेरी इच्छा'।
सामान्य जीवन में भी आप जो कुछ कार्य करते हैं वह अगर इस भावना से किए जाएँ कि वे सब परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए हैं एवं उनके फलस्वरूप जो भी प्राप्त होगा वो उनको ही अर्पित करें तो यह भी भक्ति योग ही है ।
यदि कोई व्यक्ति मृत्यु से डरता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे अपने जीवन से प्रेम है । यदि कोई व्यक्ति अधिक स्वार्थी है तो इसका तात्पर्य यह है कि उसे स्वार्थ से प्रेम है । किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी या पुत्र आदि से विशेष प्रेम हो सकता है । इस प्रकार के प्रेम से भय, घृणा अथवा शोक उत्पन्न होता है ।
यदि यही प्रेम परमात्मा से हो जाय तो वह मुक्तिदाता बन जाता है । ज्यों-ज्यों ईश्वर से लगाव बढ़ता है, नश्वर सांसारिक वस्तुओं से लगाव कम होने लगता है । जब तक मनुष्य स्वार्थयुक्त उद्देश्य लेकर ईश्वर का ध्यान करता है तब तक वह भक्तियोग की परिधि में नहीं आता । पराभक्ति ही भक्तियोग के अन्तर्गत आती है जिसमें मुक्ति को छोड़कर अन्य कोई अभिलाषा नहीं होती । भक्तियोग शिक्षा देता है कि ईश्वर से, शुभ से प्रेम इसलिए करना चाहिए कि ऐसा करना अच्छी बात है, न कि स्वर्ग पाने के लिए अथवा सन्तति, सम्पत्ति या अन्य किसी कामना की पूर्ति के लिए । वह यह सिखाता है कि प्रेम का सबसे बढ़ कर पुरस्कार प्रेम ही है, और स्वयं ईश्वर प्रेम स्वरूप है ।

भक्ति योग विष्णु पुराण के अनुसार

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरत: सा मे हृदयान्मापसमर्पतु ।

''हे ईश्वर! अज्ञानी जनों की जैसी गाढ़ी प्रीति इन्द्रियों के भोग के नाशवान् पदार्थों पर रहती है, उसी प्रकार की प्रीति मेरी तुझमें हो और तेरा स्मरण करते हुए मेरे हृदय से वह कभी दूर न होवे '' भक्तियोग सभी प्रकार के संबोधनों द्वारा ईश्वर को अपने हृदय का भक्ति-अर्घ्य प्रदान करना सिखाता है- जैसे, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी आदि । सबसे बढ़कर वाक्यांश जो ईश्वर का वर्णन कर सकता है, सबसे बढ़कर कल्पना जिसे मनुष्य का मन ईश्वर के बारे में ग्रहण कर सकता है, वह यह है कि 'ईश्वर प्रेम स्वरूप है' । जहाँ कहीं प्रेम है, वह परमेश्वर ही है । जब पति पत्नी का चुम्बन करता है, तो वहाँ उस चुम्बन में वह ईश्वर है । जब माता बच्चे को दूध पिलाती है तो इस वात्सल्य में वह ईश्वर ही है । जब दो मित्र हाथ मिलाते हैं, तब वहाँ वह

परमात्मा ही प्रेममय ईश्वर के रूप में विद्यमान है । मानव जाति की सहायता करने में भी ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट होता है । यही भक्तियोग की शिक्षा है ।
भक्तियोग भी आत्मसंयम, अहिंसा, ईमानदारी, निश्छलता आदि गुणों की अपेक्षा भक्त से करता है क्योंकि चित्त की निर्मलता के बिना नि:स्वार्थ प्रेम सम्भव ही नहीं है । प्रारम्भिक भक्ति के लिए ईश्वर के किसी स्वरूप की कल्पित प्रतिमा या मूर्ति (जैसे दुर्गा की मूर्ति, शिव की मूर्ति, राम की मूर्ति, कृष्ण की मूर्ति, गणेश की मूर्ति आदि) को श्रद्धा का आधार बनाया जाता है । साधारण स्तर के लोगों को ही इसकी आवश्यकता पड़ती है ।

भक्ति योग कैसे करे | भक्ति सूत्रों में नारद मुनि (ऋषि) ने भक्तियोग के नौ तत्वों का वर्णन किया है:

श्रवणं किर्तनं विष्णोः स्मरणमं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सरव्यआत्मनिवेदनम् ॥

1. सत्संग-अच्छा आध्यात्मिक साथ
2. हरि कथा-ईश्वर के बारे में सुनना और पढना
3. श्रद्धा-विश्वास
4. ईश्वर भजन-ईश्वर के गुणगान करना
5. मंत्र जप-ईश्वर के नामों का स्मरण
6. शम दम-सांसारिक वस्तुओं के संबंध में इन्द्रियों पर नियंत्रण
7. संतों का आदर-ईश्वर को समर्पित जीवन वाले व्यक्तियों के समक्ष सम्मान प्रगट करना।
8. संतोष-संतुष्टि
9. ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर की शरण

भक्ति के बिना कोई आध्यात्मिक मार्ग नहीं है। यदि विद्यालय का एक छात्र अध्ययन के किसी विषय को नापसंद करता है, तो वह पाठ्यक्रम को मुश्किल से पूरा कर पाता है। इसी प्रकार हमारे अभ्यास के लिए जब प्रेम और निष्ठा है, हमारे मार्ग पर चलते रहने का दृढ़निश्चय और हमारे उद्देश्य के संबंध में सदैव मान्यता हो तभी हम सभी समस्याओं का समाधान करने के योग्य हो सकते हैं। हम सभी जीवधारियों के प्रति प्रेम और ईश्वर के प्रति निष्ठा के बिना ईश्वर का साहचर्य प्राप्त नहीं कर सकते।

भक्ति योग गीता के अनुसार

हम सभी में प्रेम और भक्ति है, परन्तु सुप्त अवस्था में। और इस अवस्था से निकल कर परम पुरुषोत्तम भगवन की सेवा में लगने का एक सरल उपाय है। यह उपाय स्वयं भगवान श्री कृष्ण द्वारा ही भगवद-गीता में बताया गया है, इस सुप्तावस्था से पुनः प्रेम जागृत करने की प्रक्रिया न केवल शुद्धिकरण ही करती है अपितु आत्मसंतुष्टि भी प्रदान करती है। जप या कीर्तन, नृत्य और प्रसाद सेवन ये तीन क्रियाएँ इस प्रक्रिया के मुख्य अंग हैं ।
भगवान के शुद्ध नामों का जप या नित्य कीर्तन – "हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥", ॐ का उच्चारण द्वारा किया जा सकता है । जप – सामान्यतया जपमाला पर निर्धारित संख्या में किया जाता है, जबकि कीर्तन – कुछ लोगों के संग एकसाथ मिलकर वाद्य-यंत्रो को बजाकर किया जाता है। हरिनाम जप एवं कीर्तन से हम, अपने दर्पण रूपी चेतना पर जमी कई जन्मों की धूल को साफ़ कर सकते हैं (नियमपूर्वक छः महीने साधना को चलाइये।)
नृत्य भी हमारे प्रेममयी सेवा को प्राप्त करने एवं शुद्धिकरण का एक प्रमुख अंग है। यह बहुत ही अनुग्रहित भाव में भगवान के समक्ष किया जाता है। नृत्य हमारे सम्पूर्ण शरीर को भगवान के गुणगान में लगाता है।

प्रसाद-सेवन अर्थात भोजन जो सिर्फ भगवान के लिए पकाया और प्रेमपूर्वक अर्पित गया, उसे पाना। ऐसे भोजन को “प्रसाद” कहा जाता है और यह कर्म-रहित होने के कारण हमें जन्म-मृत्यु के पुनरावृत्त चक्र से बाहर निकालता है।

इन सब के अतिरिक्त सामान्य जीवन में भी हम कुछ कार्य करते हैं । परन्तु अगर इस भावना से कार्य किये जाएँ कि वे सब श्री भगवान की प्रसन्नता के लिए हैं एवं उनके फलस्वरूप जो भी प्राप्त होगा वो उनको ही अर्पित करें तो ही भक्ति योग पूर्णतया सम्पूर्ण है | संत ज्ञानेश्वर , संत तुकाराम , कबीर , एकनाथ , नामदेव , गोराकुंभार , मीराबाई , गुरूनानक , नरसी मेहता तथा अनेक संतोने भक्ति आंदोलन के व्दारा समाज उन्नती का कार्य किया ।

यह तुमने कभी सोचा? हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं,
भारत में ये तीन महाधर्म पैदा हुए।
तीनों के विचारों में बड़ा भेद है,
जमीन-आसमान का भेद है।
तीनों की सैद्धांतिक धारणाएं भिन्न हैं।
तीनों के ढांचे अलग हैं, मार्ग अलग हैं, पथ अलग हैं।
कोई समर्पण का मार्ग है, कोई संकल्प का।
कोई संघर्ष का मार्ग है, कोई शरणागति का -
कोई पूजा-प्रार्थना, भक्ति का, कोई ध्यान-समाधि का।
लेकिन एक बात इन तीनों धर्मों ने
स्वीकार की है - वह है ओंकार।
वह है ओम् का नाद।
उसे इनकार करने का उपाय नहीं।
क्योंकि जब भी कोई भीतर गया है,
तो उस नाद को सुना है।
जब भी कोई भीतर गया है तो ऐसा कभी हुआ
ही नहीं, कोई अपवाद नहीं कि वह नाद न सुना हो।
वह जीवन-नाद है, ब्रह्म-नाद है।

सारे शास्त्र भारत के ओंकार से शुरू होते हैं, ओंकार पर पूर्ण होते हैं। यह प्रतीक है। यह प्रतीक है कि परमात्मा ही प्रारंभ है और परमात्मा ही अंत है। वहीं से तुम आते हो, वहीं लौट जाते हो। वहां वर्तुल पूरा होता है। वही पहला कदम, वही आखिरी कदम। वही जन्म, वही मृत्यु। इसलिए ओम से शुरू होते हैं, ओम पर पूर्ण होते हैं।

और ऐसा ही तुम्हारा जीवन होना चाहिए; ओम से शुरू हुआ है, ओम पर ही पूर्ण हो। शुरू तो ओम से ही हुआ है, तुम्हें चाहे पता भी न हो। तुम्हें पता भी नहीं हो सकता, जब तक ओम पर पूर्ण न हो। जिस दिन ओम पर पूर्ण होगा, उस दिन तुम जानोगे कि ओम से ही शुरू हुआ, ओम में ही चला, ओम में ही पूरा हुआ।

जैसे मछली सागर में पैदा होती है, सागर में ही जीती, सागर में ही लीन हो जाती। ऐसे ही, शास्त्रों में प्रतीक है, कि ओम से शुरू होता, ओम पर पूर्ण होता। ऐसा ही तुम्हारा जीवन भी हो। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य ओम से शुरू हो और ओम पर पूरा हो।

- **माण्डूक्योपनिषद :** उपनिषद में कहा गया है कि विश्व में एवं भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालों में तथा इनके परे भी जो नित्य तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है वह ॐ है। यह सब ब्रह्म है और यह आत्मा भी ब्रह्म है।

मांडूक्योपनिषद अथर्ववेद के ब्राह्मण भाग से लिया गया है

शंकराचार्य जी ने इस पर भाष्य लिखा है और गौड पादाचार्य जी ने कारिकाऐं लिखी हैं

आत्मा चतुष्पाद है अर्थात् उसकी अभिव्यक्ति की चार अवस्थाएँ हैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय।

- ✓ जाग्रत अवस्था की आत्मा को वैश्वानर कहते हैं, इसलिये कि इस रूप में सब नर एक योनि से दूसरी में जाते रहते हैं। इस अवस्था का जीवात्मा बहिर्मुखी होकर "सप्तांगों" तथा इंद्रियादि 19 मुखों से स्थूल अर्थात् इंद्रियग्राह्य विषयों का रस लेता है। अत: वह बहिष्प्रज्ञ है।
- ✓ दूसरी तेजस नामक स्वप्नावस्था है जिसमें जीव अंत:प्रज्ञ होकर सप्तांगों और 19 मुखों से जाग्रत अवस्था की अनुभूतियों का मन के स्फुरण द्वारा बुद्धि पर पड़े हुए विभिन्न संस्कारों का शरीर के भीतर भोग करता है।
- ✓ तीसरी अवस्था सुषुप्ति अर्थात् प्रगाढ़ निद्रा का लय हो जाता है और जीवात्मा क स्थिति आनंदमय ज्ञान स्वरूप हो जाती है। इस कारण अवस्थिति में वह सर्वेश्वर, सर्वज्ञ और अंतर्यामी एवं समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और लय का कारण है।

- ✓ परंतु इन तीनों अवस्थाओं के परे आत्मा का चतुर्थ पाद अर्थात् तुरीय अवस्था ही उसक सच्चा और अंतिम स्वरूप है जिसमें वह ने अंत: प्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ और न इन दोनों क संघात है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ और न अप्रज्ञ, वरन अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिंत्य, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्ययसार, शांत, शिव और अद्वैत है जहाँ जगत्, जीव और ब्रह्म के भेद रूपी प्रपंच का अस्तित्व नहीं है

ओंकार रूपी आत्मा का जो स्वरूप उसके चतुष्पाद की दृष्टि से इस प्रकार निष्पन्न होता है उसे ही ऊँकार की मात्राओं के विचार से इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि ऊँ की अकार मात्रा से वाणी का आरंभ होता है और अकार वाणी में व्याप्त भी है। सुषुप्ति स्थानीय प्राज्ञ *ऊँ कार* की **म**कार मात्रा है जिसमें विश्व और तेजस के प्राज्ञ में लय होने की तरह अकार और उकार का लय होता है, एवं ऊँ का उच्चारण दुहराते समय मकार के अकार उकार निकलते से प्रतीत होते है। तात्पर्य यह कि ऊँकार जगत् की उत्पत्ति और लय का कारण है।

वैश्वानर, तेजस और प्राज्ञ अवस्थाओं के सदृश त्रैमात्रिक ओंकार प्रपंच तथा पुनर्जन्म से आबद्ध है किंतु तुरीय की तरह अ मात्र ऊँ अव्यवहार्य आत्मा है जहाँ जीव, जगत् और आत्मा (ब्रह्म) के भेद का प्रपंच नहीं है और केवल अद्वैत शिव ही शिव रह जाता है।

ओम् ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है।

जगत का प्रत्येक पदार्थ उस ईश्वर की रचना है। **ओम्** जो यह अक्षर है, यह सब उस ओम् का विस्तार है जिसे ब्रह्मांड कहते हैं।

ॐ शब्द इस दुनिया में किसी ना किसी रूप में सभी मुख्य संस्कृतियों का प्रमुख भाग है|
ॐ के उच्चारण से ही शरीर के अलग अलग भागों मे कंपन शुरू हो जाती है जैसे की
'अ':- शरीर के निचले हिस्से में (पेट के करीब) कंपन करता है|
'उ':– शरीर के मध्य भाग में कंपन होती है जो की (छाती के करीब) .
'म':- से शरीर के ऊपरी भाग में यानी (मस्तिक) कंपन होती है |
ॐ शब्द के उच्चारण से कई शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक लाभ मिलते हैं|

भूत, वर्तमान और भविष्य में सब ओंकार ही है और जो इसके अतिरिक्त तीन काल से बाहर है, वह भी ओंकार है। समय और काल में भेद है। समय सादि और सान्त होता है परन्तु काल, अनादि और अनंत होता है। समय की उत्पत्ति **सूर्य की उत्पत्ति** से आरंभ होती है।

वर्ष, महीने, दिन, भूत, वर्तमान और भविष्य आदि ये विभाग समय के हैं जबकि काल इससे भी पहले रहता है। प्रकृति का विकृत रूप तीन काल के अंदर समझा जाता है। प्रकृति तीन कालों से परे की अवस्था है, अत: उसे त्रिकालातीत कहा गया है।

वह यह आत्मा अक्षर में अधिष्ठित है और वह अक्षर है **ओंकार** है और वह ओंकार मात्राओं में अधिष्ठित है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ध्यान और मोक्ष की गहरी अवस्था में ब्रह्म, ब्रह्मांड और आत्मा के रहस्य को जानकर उसे स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया था। वेदों में ही सर्वप्रथम ब्रह्म और ब्रह्मांड के रहस्य पर से पर्दा हटाकर **'मोक्ष'** की धारणा को प्रतिपादित कर उसके महत्व को समझाया गया था। मोक्ष के बगैर आत्मा की कोई गति नहीं इसीलिए ऋषियों ने मोक्ष के मार्ग को ही सनातन मार्ग माना है।

ओम का यह चिह्न **'ॐ'** अद्भुत है। यह पुरे ब्रह्मांड को प्रदर्शित करती है। बहुत सारी आकाश गंगाएँ ऐसे ही फैली हुई है। ब्रह्म का मतलब होता है विस्तार, फैलाव और बढ़ना । ओंकार ध्वनि **'ॐ'** को दुनिया में जितने भी मंत्र है उन सबका केंद्र कहा गया है।

ॐ को ओम कहा जाता है। उसमें भी बोलते वक्त 'ओ' पर ज्यादा जोर होता है। इसे प्रणव मंत्र भी कहते हैं।

इस मंत्र का प्रारंभ है अंत नहीं। यह ब्रह्मांड की अनाहत ध्वनि है। अनाहत अर्थात किसी भी प्रकार की टकराहट या दो चीजों या हाथों के संयोग के उत्पन्न ध्वनि नहीं। इसे अनहद भी कहते हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड में यह अनवरत जारी है। तपस्वी और ध्यानियों ने जब ध्यान की गहरी अवस्था में सुना की कोई एक ऐसी ध्वनि है जो लगातार सुनाई देती रहती है |शरीर के भीतर भी और बाहर भी। हर कहीं, वही ध्वनि निरंतर जारी है और उसे सुनते रहने से मन और आत्मा शांती महसूस करती है तो उन्होंने उस ध्वनि को नाम दिया ओम।साधारण मनुष्य उस ध्वनि को सुन नहीं सकता, लेकिन जो भी ओम का उच्चारण करता रहता है उसके आसपास सकारात्मक ऊर्जा का विकास होने लगता है। फिर भी उस ध्वनि को सुनने के लिए तो पूर्णत: मौन और ध्यान में होना जरूरी है। जो भी उस ध्वनि को सुनने लगता है वह परमात्मा से सीधा जुड़ने लगता है।

परमात्मा से जुड़ने का साधारण तरीका है **ॐ** का उच्चारण करते रहना। ओम् **(ॐ)-OM** परमपिता परमात्मा का वेदोक्त एवं शास्त्रोक्त नाम है। समस्त वेद-शास्त्र ओम् की ही उपासना करते हैं।

ओम् का ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। ईश्वर के सभी स्वरूपों की उपासना के **मंत्र ओम** से ही प्रारंभ होते हैं। ईश्वर के इस नाम को ओंकार एवं प्रणव आदि नामों से ही संबोधित किया जाता है।

''ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवा: शिष्यते॥''

ओंकार स्वरूप परमात्मा पूर्ण हैं। पूर्ण से पूर्ण उत्पन्न होता है और पूर्ण में से पूर्ण निकल जाने पर पूर्ण ही शेष रह जाता है। ॐ तत् सत्-ऐसे यह तीन प्रकार के सच्चिदानंदघन ब्रह्म का नाम है। उसी से दृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण वेद तथा यज्ञादि रचे गए।

'अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोज्ध्यात्मुच्यते।'

परम अक्षर अर्थात **ॐ ब्रह्म है**, अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा अध्यात्म नाम से कहा जाता है।
श्रीमद भगवद् गीता में वर्णित है कि **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ॐ इति एकाक्षरं (एक अक्षर)ब्रह्म'** अर्थात एक अक्षर शब्द ही ब्रह्म है।तीन अक्षरों **अ+उ+म** का यह शब्द सम्पूर्ण जगत एवं सभी के हृदय में वास करता है। हृदय-आकाश में बसा यह शब्द **"अ"** से आदि कर्ता ब्रह्म, **"उ"** से विष्णु एवं **"म"** से महेश का बोध करा देता है। यह उस अविनाशी का शाश्वत स्वरूप है जिसमें सभी देवता वास करते हैं।
ओम् का नाद सम्पूर्ण जगत में उस समय दसों दिशाओं में व्याप्त हुआ था जब युगों-पूर्व इस सृष्टि का प्रारंभ हुआ था। उस समय इस सृष्टि की रचना हुई थी।

'प्रजा पति समवर्तताग्रे, भूतस्य जातस्य पतिरेकासीत'

अर्थात सृष्टि के प्रारंभ होने के समय यह एक ब्रह्मनाद था। मनुष्य शरीर पांच तत्वों से बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। यही आकाश तत्व ही जीवों में शब्द के रूप में विद्यमान है।
'ओंकारों यस्य मूलम' वेदों का मूल भी यही ओम् है।

ऋग्वेद पत्र है, सामवेद पुष्प है और यजुर्वेद इसका इच्छित फल है। तभी इसे प्रणव नाम दिया गया है जिसे बीज मंत्र माना गया है। इस ओम् के उच्चारण में केवल पंद्रह सैकंड का समय लगता है जिसका आधार **8, 4, 3** सैकेंड के अनुपात पर माना गया है। अक्षर **'अ'** का उच्चारण स्थान कंठ है और **'उ'** एवं **'म'** का उच्चारण स्थान ओष्ठ माना गया है। नाभि के समान प्राणवायु से एक ही क्रम में श्वास प्रारंभ करके ओष्ठों तक आट सैकंड का समय और फिर मस्तक तक उ एवं म् का उच्चारण करके **4, 3** के अनुपात का समय लगता है और यह प्रक्रिया केवल **15** सैकंड में समाप्त होती है।

ओइमकारं बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिन :।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नम:॥

योगी पुरुष ओंकार का नाद बिंदू सहित सदा ध्यान करते हैं और इसका स्मरण करने से सभी प्रकार की कामनाएं पूर्ण होती है। इससे **मोक्ष** की प्राप्ति होती है। उपरोक्त मंत्र से ओंकार पूजा की जाती है। प्रणव का मन में स्मरण करके भक्त भगवान के किसी भी रूप में भगवद्मय में हो जाता है।

ॐ की ध्वनि से विकृत शारीरिक-मानसिक विचार निरस्त हो जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-''प्रणव: सर्ववेदषु''

सम्पूर्ण वेदों में ओंकार मैं हूं। ओम् की इसी महिमा को दृष्टि में रखते हुए हमारे धर्म ग्रंथों में इसकी अत्याधिक उत्कृष्टता स्वीकार की गई है। जाप-पूजा पाठ करने से पूर्व ओम् का उच्चारण जीवन में अत्यंत लाभदायक है। सभी वेदों का निष्कर्ष, तपस्वियों का तप एवं ज्ञानियों का ज्ञान इस एकाक्षर स्वरूप **ओंकार** में समाहित है।

त्रिदेव और त्रैलोक्य का प्रतीक :

ॐ शब्द तीन ध्वनियों से बना हुआ है- ***अ, उ, म*** इन तीनों ध्वनियों का अर्थ उपनिषद में भी आता है। यह **ब्रह्मा, विष्णु और महेश** का प्रतीक भी है और यह **भू: लोक, भूव: लोक और स्वर्ग लोग** का प्रतीक है।

बीमारी दूर भगाएँ :

सभी **मंत्र** का उच्चारण जीभ, होंठ, तालू, दाँत, कंठ और फेफड़ों से निकलने वाली वायु के सम्मिलित प्रभाव से संभव होता है। इससे निकलने वाली ध्वनि शरीर के सभी चक्रों और हारमोन स्राव करने वाली ग्रंथियों से टकराती है। इन ग्रंथिंयों के स्राव को नियंत्रित करके बीमारियों को दूर भगाया जा सकता है।

शरीर में आवेगों का उतार-चढ़ाव : प्रिय या अप्रिय शब्दों की ध्वनि से श्रोता और वक्ता दोनों हर्ष, विषाद, क्रोध, घृणा, भय तथा कामेच्छा के आवेगों को महसूस करते हैं।अप्रिय शब्दों से निकलने वाली ध्वनि से मस्तिष्क में उत्पन्न काम, क्रोध, मोह, भय लोभ आदि की भावना से दिल की धड़कन तेज हो जाती है जिससे रक्त में 'टॉक्सिक' पदार्थ पैदा होने लगते हैं। इसी तरह प्रिय और **मंगलमय शब्दों** की ध्वनि मस्तिष्क, हृदय और रक्त पर अमृत की तरह **आल्हादकारी रसायन** की वर्षा करती है। कहते हैं बिना **ओम (ॐ)** सृष्टि की कल्पना भी नहीं हो सकती है।

माना जाता है कि सम्पूर्ण **ब्रह्माण्ड** से सदा **ॐ** की ध्वनी निकलती है। **ॐ (OM)** शब्द तीन अक्षरों से मिलकर बना है- ***अ उ म***। ***अ*** का मतलब होता है **उत्पन्न** होना, **उ** का मतलब होता है **उठना** यानी विकास और **म** का मतलब होता है **मौन** हो जाना यानी कि **ब्रह्मलीन** हो जाना।

ओम (ॐ) शब्द से इंसान से शारीरिक लाभ भी होते हैं |

ॐ और थायरॉयड: ॐ का उच्चारण करने से गले में कंपन पैदा होती है जो कि थायरायड ग्रंथि पर सकारात्मक प्रभाव डालती है।

ॐ और घबराहट: अगर आपको घबराहट महसूस होती है तो आप आंखें बंद करके 5 बार गहरी सांसे लेते हुए ॐ का उच्चारण करें।

ॐ और तनाव: यह शरीर के विषैले तत्वों को दूर करता है इसलिए तनाव को दूर करता है।

- ओंकार जगत की परम शांति में गूंजने वाले संगीत का नाम है।
- ओंकार का अर्थ है – **"दि बेसिक रियलिटी"** वह जो मूलभूत सत्य है, जो सदा रहता है।
- जब तक हम शोरगुल से भरे है, वह सूक्ष्मतम् ध्वनि नहीं सुन सकते।

गुरु नानक देव जी भी कहते हैं –

॥ इक्क ओन्कार सत नाम,करता पुरख,निरभऊ, निरवैर,अकाल मूरत,अजूनी सैभं गुर प्रसाद ॥

ईश्वर एक है जिसका नाम ओम है । अतः ओम शब्द का वास्तविक अर्थ जानने – समझने की जिज्ञासा बहुत पहले से पाल रखी थी।

"प्रणव बोध", "ओमकार निर्णय "ऐसी पुस्तकें जो ओम पर लिखी गई है

ऊं – या सही मिश्रण में इन तीन ध्वनियों का उच्चारण, आपको वहां ले जाता है। यह आपको उसके परे नहीं ले जाता, मगर भौतिक प्रकृति की कगार तक ले जाता है। जब आप शारीरिक **योग** करते हैं, तो कुछ चीजें घटित होती हैं, मगर एक अलग रूप में। मगर जब आप ऊं का उच्चारण करते हैं, तो आपका शरीर एक खास तरह से सीध में, तालमेल में आ जाता है।

ॐ ईश्वर के निर्गुण तत्त्व से संबंधित है । ईश्वर के निर्गुण तत्त्व से ही पूरे सगुण ब्रह्मांड की निर्मित हुई है । इस कारण जब कोई ॐ का जप करता है, तब अत्यधिक शक्ति निर्मित होती है । यह ॐ का रहस्य है।

यदि व्यक्ति का आध्यात्मिक स्तर कनिष्ठ हो, तो केवल ॐ का जप करने से दुष्प्रभाव हो सकता है; क्योंकि उसमें इस जप से निर्मित आध्यात्मिक शक्ति को सहन करने की क्षमता नहीं होती ।

ॐ के उच्चारण से मिलता है लाभ – यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतीक भी है और यह भू: लोक,और स्वर्ग लोग का प्रतीक भी माना जाता है।

इसके लाभ :

- ✓ इससे शरीर और मन को एकाग्र करने में मदद मिलेगी।
- ✓ दिल की धड़कन और रक्तसंचार व्यवस्थित होगा।
- ✓ इससे मानसिक बीमारियाँ दूर होती हैं।
- ✓ काम करने की शक्ति बढ़ जाती है।
- ✓ इसके उच्चारण में पवित्रता का ध्यान रखा जाता है।

उच्चारण की विधि :

प्रातः उठकर पवित्र होकर ओंकार ध्वनि का उच्चारण करें। कम से कम 40-से 60 मिनट तक

- ✓ **ॐ** का उच्चारण पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन, वज्रासन में बैठकर कर सकते हैं।
- ✓ **ॐ** शब्द को जोर से बोल सकते हैं,या फिर धीरे-धीरे भी बोल सकते हैं।
- ✓ **ॐ** जप माला से भी कर सकते हैं या बिना माला के भी ।

ईश्वर का जप करना तीन प्रकार से किया जाता है ।

१) **वांचिक जप** - दुसरों को सुनाई दे या उचे स्वर में ईश्वर नाम स्मरण में करना ।
२) **उपाशु जप** - धीमे स्वर से नाम स्मरण करना । इसमें केवल ओंठोंकी हलचल दिखाई देती है ।
३) **मानसिक जप** - ओंठ न हिलाते मन में ही ईश्वर का नाम स्मरण करना ।

- **भक्तियोग में मुख्य दो तत्व है** । मन को तृष्णा से मुक्त एवं शुध्द करना । मन को ईश्वर में लगाना ।

- **भक्ति के भेद- भक्ति के मुख्य दो भेद होते है ।**

१) **सगुणा या गौणि या साधन भक्ति -** यह प्रारंभिक अवस्था की निम्न स्थर की भक्ति कही जाती है ।
२) **निर्गुणा , रागात्मिका , परा या साध्य भक्ति -** यह उच्च स्तर की भक्ति कही जाती है और इससे सांसारिक समस्त दु:खो का नाश होकर परम सुख की प्राप्ति होती है ।

- **भक्तो के प्रकार भगवद्गीता में भक्तों के चार प्रकार बताये है ।**

१) **अर्थार्थी** - भोग ; सुख ; अर्थ की लालसा से भक्ति करने वाले।
२) **आर्त** - व्याधि निवारण हेतु भक्ति करने वाले ।
३) **जिज्ञासु** - मुक्ति की अभिलाषा से परमतत्व को समझलेने के लिये भक्ति करने वाले ।
४) **ज्ञानी -** निष्काम बुध्दि से युक्त तथा सदा भक्ति मे मग्न रहने वाले ।

भक्तियोग का संदेश एवं महत्व

- मन को तृष्णा से मुक्त एवं शुध्द करना ।
- अहंकार को नियंत्रित करके समर्पन के भाव को बढाना ।
- समस्त प्राणियों के प्रति करुणा , मित्रता , प्रेम , आदर का भाव रखना ।
- सुख - दु:ख , मानापमान , यश - अपयश के प्रति समभाव होना ।
- मन को वश में रखकर दृढ निश्चयी होना ।

॥ तत्त्वमसि ॥

क्षेत्रक्षत्रज्ञविभाग योग गीता तेरहवां अध्याय है (प्रकृति, पुरुष तथा चेतना)इसमें 34 श्लोक हैं।

सारांश : प्रकृति, भोक्ता और चेतना

माया से अलग करें और दिव्यता से जुड़े। हर तन में जीवात्मा परमात्मा का अंश है- जिसे परमात्मा का प्रकृतिरूप भरमाता है, यही तत्व ज्ञान है।

जो व्यक्ति शरीर, आत्मा, परमात्मा और ज्ञान के रहस्यों को समझ जाता है वह इस संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

आत्मा में ही परमात्मा का वास होता है। क्युँकि वह उसकी का भाग है। लेकिन अज्ञानवश मनुष्य उसे समझ नहीं पाता। इसलिए पहले ज्ञान हासिल करना चाहिए।

ज्ञान का मकसद उस परमात्मा को समझना है। लेकिन इसके लिए मनुष्य को सदाचारी बनना चाहिए। अन्यथा उसमें अहंकार हो जायेगा। फिर वह इस रहस्य को समझा नहीं पायेगा। और परमात्मा को अपने भीतर खोज भी नहीं पायेगा।

अर्जुन प्रकृति (प्रकृति), पुरुष (भोक्ता), क्षेत्र (क्षेत्र), क्षेत्र-ज्ञान (क्षेत्र का ज्ञाता), ज्ञान (ज्ञान), और ज्ञान (ज्ञान की वस्तु) के बारे में जानना चाहता है।

कृष्ण बताते हैं कि क्षेत्र वातानुकूलित आत्मा की गतिविधि का क्षेत्र शरीर है। इसके भीतर जीव और परम भगवान दोनों निवास करते हैं, जिन्हें क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, जो क्षेत्र के ज्ञाता हैं। ज्ञान, ज्ञान, का अर्थ है शरीर और उसके जानने वालों की समझ। ज्ञान में विनम्रता, अहिंसा, सहनशीलता, स्वच्छता, आत्म-संयम, मिथ्या अहंकार की अनुपस्थिति और सुखद और अप्रिय घटनाओं के बीच समचित्तता जैसे गुण शामिल हैं।

ज्ञान का विषय, ज्ञान, परमात्मा है। प्रकृति, प्रकृति, सभी भौतिक कारणों और प्रभावों का कारण है। दो पुरुष, या भोक्ता, जीव और परमात्मा हैं। एक व्यक्ति जो यह देख सकता है कि व्यक्तिगत आत्मा और परमात्मा विभिन्न प्रकार के भौतिक शरीरों में अपरिवर्तित रहते हैं, वे सफलतापूर्वक निवास करते हैं और कहा जाता है कि उनके पास अनंत काल की दृष्टि है। शरीर और शरीर के ज्ञाता के बीच के अंतर को समझकर और भौतिक बंधन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझकर, व्यक्ति परम लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

॥ तत्त्वमसि ॥

गीता का चौदहवां अध्याय गुणत्रयविभाग योग है (प्रकृति के तीन गुण)इसमें 27 श्लोक हैं।

सारांश : भौतिक प्रकृति के तीन रूप -जीवनशैली जीएं जो आपकी दृष्टि से मेल खाती है। प्रकृति प्रदत्त तीनों गुण बंधन देते है, इनसे पार पाकर ही मोक्ष संभव है।

इस अध्याय में श्री कृष्ण ने तीन गुणों के बारे में बताया है। ये तीन गुण हैं – सात्विक, तामसिक और राजस्विक।

संपूर्ण भौतिक पदार्थ भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का स्रोत है: अच्छाई, जुनून और अज्ञान। ये गुण बद्ध आत्मा पर अपना प्रभाव डालने में प्रतिस्पर्धा करते हैं। काम पर मोड देखकर, हम समझ सकते हैं कि वे सक्रिय हैं, हम नहीं, और हम अलग हैं। इस तरह, भौतिक प्रकृति का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता जाता है और हम कृष्ण की आध्यात्मिक प्रकृति को प्राप्त करते हैं।

- ✓ सतोगुण प्रकाशित होता है। यह एक व्यक्ति को सभी पापपूर्ण प्रतिक्रियाओं से मुक्त करता है लेकिन उसे खुशी और ज्ञान की भावना की स्थिति देता है। जो सतोगुण में मरता है वह उच्च ग्रहों को प्राप्त करता है। सात्विक लोग शाकाहारी भोजन करते हैं, सादे वस्त्र धारण करते हैं , बातों से मृदुल होते हैं व् ईश्वर की भक्ति करते हैं। मृत्यु के बाद ये मोक्ष प्राप्त करते हैं।

- ✓ रजोगुण से प्रभावित व्यक्ति असीमित भौतिक आनंद, विशेष रूप से यौन सुख के लिए असीमित इच्छाओं से ग्रस्त होता है। उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए, उसे हमेशा कड़ी मेहनत में संलग्न होने के लिए मजबूर किया जाता है जो उसे पापमय प्रतिक्रियाओं से बांधता है, जिसके परिणामस्वरूप दुख होता है। रजोगुणी व्यक्ति कभी भी उस पद से संतुष्ट नहीं होता जो उसने पहले ही प्राप्त कर लिया है। मृत्यु के बाद, वह फिर से पृथ्वी पर सकाम गतिविधियों में लगे व्यक्तियों के बीच जन्म लेता है।

- ✓ तामसिक प्रवृति वाले लोग मांसाहारी भोजन करते हैं, गंदे वस्त्र पहनते हैं , हिंसक होते हैं व् कभी भी ईश्वर की स्तुति नहीं करते। मृत्यु के बाद ये नरक भोगते हैं। तमोगुण का अर्थ है भ्रम। यह पागलपन, आलस्य, आलस्य और मूर्खता को बढ़ावा देता है। यदि कोई तमोगुण में मरता है, तो उसे पशु साम्राज्य या नारकीय दुनिया में जन्म लेना पड़ता है। राजस्विक लोग भोग -विलास में रूचि लेते हैं , इनमें दोनों के गुण होते हैं। मृत्यु के बाद इन्हे कर्मानुसार स्वर्ग व् नरक दोनों मिल सकते हैं।

- ✓ एक व्यक्ति जो तीन गुणों को पार करता है, वह अपने व्यवहार में स्थिर होता है, अस्थायी भौतिक शरीर से अलग होता है, और मित्रों और शत्रुओं के प्रति समान रूप से इच्छुक होता है। ऐसे दिव्य गुणों को भक्ति सेवा में पूर्ण संलग्नता से प्राप्त किया जा सकता है।

॥ तत्त्वमसि ॥

गीता का पंद्रहवां अध्याय पुरुषोत्तम योग है, इसमें 20 श्लोक हैं।

सारांश : परम पुरुष का योग -दिव्यता को प्राथमिकता दें। काया तथा जीवात्मा दोनों से उत्तम पुरुषोत्तम ही जीव का लक्ष्य है।

वेदों के सारे ज्ञान का यही निचोड़ है कि मनुष्य को मोह -माया का त्याग कर खुद को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। यही सबसे बड़ा योग है।

मोह -माया के कारण मनुष्य ईश्वर को प्राप्त नहीं कर पाता है। क्युँकि उसका मन, धन व अन्य भौतिक चीजों से प्रेम करने लगता है। इससे वह ईश्वर प्राप्ति के मार्ग से दूर हो जाता है।उत्तम पुरुष वही है जो मोह का त्याग करके खुद को ईश्वर की भक्ति में समर्पित कर दे।

इस भौतिक संसार का "वृक्ष" वास्तविक "वृक्ष", आध्यात्मिक संसार का प्रतिबिंब है। जिस प्रकार एक वृक्ष का प्रतिबिम्ब जल पर स्थित होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक संसार का भौतिक प्रतिबिम्ब इच्छा पर स्थित होता है, और कोई नहीं जानता कि यह कहाँ से शुरू या समाप्त होता है। यह प्रतिबिम्बित वृक्ष भौतिक प्रकृति के तीन गुणों द्वारा पोषित होता है। इसकी पत्तियाँ वैदिक मन्त्र हैं और इसकी टहनियाँ इन्द्रियों की वस्तुएँ हैं। जो इस वृक्ष से स्वयं को अलग करना चाहता है उसे वैराग्य के शस्त्र से इसे काट देना चाहिए और सर्वोच्च भगवान की शरण लेनी चाहिए।

इस दुनिया में हर कोई च्युत है, लेकिन आध्यात्मिक दुनिया में हर कोई अचूक है। और अन्य सभी से परे सर्वोच्च व्यक्ति, कृष्ण हैं।

विश्व अश्वत्थ रूपी संसार महान विस्तारवाला है। देश और काल में इसका कोई अंत नहीं है। किंतु इसका जो मूल या केंद्र है, जिसे ऊर्ध्व कहते हैं, वह ब्रह्म ही है एक ओर वह परम तेज, जो विश्वरूपी अश्वत्थ को जन्म देता है, सूर्य और चंद्र के रूप में प्रकट है, दूसरी ओर वही एक एक चैतन्य केंद्र में या प्राणि शरीर में आया हुआ है। जैसा गीता में स्पष्ट कहा है-अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित: (१५.१४)। वैश्वानर या प्राणमयी चेतना से बढ़कर और दूसरा रहस्य नहीं है। नर या पुरुष तीन हैं-क्षर, अक्षर और अव्यय। पंचभूतों का नाम क्षर है, प्राण का नाम अक्षर है और मनस्तत्व या चेतना की संज्ञा अव्यय है। इन्हीं तीन नरों की एकत्र स्थिति से मानवी चेतना का जन्म होता है उसे ही ऋषियों ने वैश्वानर अग्नि कहा है।

॥ तत्त्वमसि ॥

- **देवासुरसंपद्विभाग योग गीता का सोलहवां अध्याय है (दैवी तथा आसुरी स्वभाव), इसमें 24 श्लोक हैं।**

सारांश : दैवी और आसुरी प्रकृति -अच्छा होना अपने आप में एक इनाम है। काम - क्रोध-लोभ से छुटकारा पाए बिना जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा नही मिल सकता।

मनुष्यों में दो तरह की प्रवृति पायी जाती है : देव व् दानव।

- ✓ सृजित प्राणियों के दो वर्ग, दैवीय और आसुरी, विभिन्न गुणों से संपन्न हैं। अर्जुन जैसे ईश्वरीय पुरुषों में ईश्वरीय गुण होते हैं: दान, आत्म-संयम, सज्जनता, विनय, क्षमा, स्वच्छता, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यवादिता, शांति, निर्भयता, क्रोध से मुक्ति, आध्यात्मिक ज्ञान की खेती, दोष से घृणा- खोज, सभी जीवित प्राणियों के लिए करुणा, लोभ से मुक्ति, और दृढ़ संकल्प। देव वृत्ति वालों में बहुत से अच्छे गुण होते हैं। जैसे सेवा भाव, संयम, सच्चाई, ईमानदारी, स्वच्छत्ता, शांति, आदि। ये मोक्ष के पात्र होते हैं।

- ✓ इसके विपरीत दानव वृत्ति वाले लोगों में बुरे गुण होते हैं जैसे – घमंड, ईर्ष्या, क्रोध , काम -वासना, हिंसा आदि। ये नरक के पात्र होते हैं। क्रोध, ईर्ष्या, कठोरता, अहंकार, अज्ञानता, दुस्साहस, अस्वच्छता और अनुचित व्यवहार जैसे आसुरी गुण लोगों को भ्रम के जाल में बांधते हैं जो उन्हें जीवन की राक्षसी योनि में बार-बार जन्म देता है। कृष्ण के पास जाने में असमर्थ, आसुरी धीरे-धीरे नरक में डूब जाती है।

- ✓ दो प्रकार की क्रिया - विनियमित और अनियमित - अलग-अलग परिणाम देती है। जो मनुष्य शास्त्रों के आदेशों का त्याग करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को, न परम गति को। शास्त्र द्वारा विनियमित लोग समझते हैं कि कर्तव्य क्या है और क्या नहीं है। वे आत्म-साक्षात्कार के अनुकूल कर्म करके धीरे-धीरे परम गति को प्राप्त करते हैं।

श्रद्धात्रयविभाग योग गीता का सत्रहवां अध्याय है (श्रद्धा के विभाग), इसमें 28 श्लोक हैं।

सारांश : आस्था का विभाजन -सुख पर अधिकार चुनना शक्ति का संकेत है। त्रिगुणी जगत को देखकर दुखी नही होना चाहिए, बस स्वभाव को सकारात्मक बनाने का प्रयास करना चाहिए।

अर्जुन ने पूछा – जो लोग वेद -पुराणों से अलग, अपनी मर्जी से भक्ति करना चाहते हैं उन्हें क्या करना चाहिए।
श्री कृष्ण कहते हैं – उन्हें ॐ तत सत का पालन करना चाहिए।
ॐ का मतलब है ईश्वर , तत का मतलब है मोहमाया से दूर रहना, सत का मतलब है सच्चाई। अर्थात मनुष्य को मोह माया से दूर होकर, सच्चे मार्ग पर चलते रहना चाहिए। ऐसे मनुष्य को ईश्वर अपनी शरण में ले लेते हैं और मोक्ष प्रदान करते हैं।

श्रद्धात्रय विभाग योग है, इसका संबंध सत, रज और तम, इन तीन गुणों से ही है, अर्थात् जिसमें जिस गुण का प्रादुर्भाव होता है, उसकी श्रद्धा या जीवन की निष्ठा वैसी ही बन जाती है। यज्ञ, तप, दान, कर्म ये सब तीन प्रकार की श्रद्धा से संचालित होते हैं। यहाँ तक कि आहार भी तीन प्रकार का है। उनके भेद और लक्षण गीता ने यहाँ बताए हैं।

॥ तत्त्वमसि ॥

मोक्ष-संन्यास योग गीता का अठारहवाँ अध्याय है (संन्यास की सिद्धि), इसमें 78 श्लोक हैं।

सारांश : संन्यास की सिद्धि - आइए भगवान के साथ मिलकर चलें। शरणागति / समपर्ण ही जीव का धर्म है और यही है गीता का सार।

इस अध्याय में भगवान कृष्ण अर्जुन को मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि मोक्ष प्राप्ति के लिए सब चीजों का मोह त्याग कर मनुष्य को पूरी तरह से ईश्वर को समर्पित हो जाना चाहिए।

अपने जीवन के हर कर्म को कृष्ण को ही समर्पित कर देना चाहिए। उनसे अथाह प्रेम करना चाहिए। उन पर पूरी श्रद्धा रखनी चाहिए। उन्हें भजते रहना चाहिए। और सन्यासी की भांति किसी भी चीज से मोह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार जीवन बिताने के बाद मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अंत में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अगर वह अब भी युद्ध नहीं करना चाहता है तो वहाँ से जा सकता है। लेकिन विधि का विधान हमेशा होकर रहता है। कोई न कोई उसके बदले युद्ध कर ही लेगा। लेकिन अब तक अर्जुन का सारा संशय खत्म हो चुका था। वह भगवान श्री कृष्ण को प्रणाम करता है। और धर्म युद्ध के लिए तैयार हो जाता है।

अर्जुन कृष्ण से त्याग (त्याग) और संन्यास (जीवन का त्याग आदेश) के उद्देश्य के बारे में पूछते हैं। कृष्ण इन्हें और कर्म के पांच कारणों, कर्म को प्रेरित करने वाले तीन कारकों और कर्म के तीन घटकों की व्याख्या करते हैं। वह भौतिक प्रकृति के तीन गुणों में से प्रत्येक के अनुसार क्रिया, समझ, दृढ़ संकल्प, सुख और कार्य का भी वर्णन करता है।

व्यक्ति अपना कर्म करने से ही सिद्धि प्राप्त करता है, दूसरे का नहीं, क्योंकि निर्धारित कर्तव्य कभी भी पाप कर्मों से प्रभावित नहीं होते। इस प्रकार व्यक्ति को बिना किसी आसक्ति या फल की अपेक्षा के कर्तव्य के रूप में कार्य करना चाहिए। व्यक्ति को अपना कर्तव्य कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

आत्म-साक्षात्कार का सर्वोच्च मंच कृष्ण की शुद्ध भक्ति सेवा है। तदनुसार, कृष्ण अर्जुन को हमेशा उन पर निर्भर रहने, उनके संरक्षण में काम करने और उनके प्रति सचेत रहने की सलाह देते हैं। यदि अर्जुन कृष्ण के लिए लड़ने से इंकार करता है, तो भी उसे युद्ध में घसीटा जाएगा क्योंकि एक क्षत्रिय के रूप में लड़ना उसका स्वभाव है। बहरहाल, वह यह तय करने के लिए स्वतंत्र है कि वह क्या करना चाहता है।

मोक्षसंन्यास योग गीता के समस्त उपदेशों का सार एवं उपसंहार है। यहाँ पुन: बलपूर्वक मानव जीवन के लिए तीन गुणों का महत्व कहा गया है। पृथ्वी के मानवों में और स्वर्ग के देवताओं में कोई भी ऐसा नहीं जो प्रकृति के चलाए हुए इन तीन गुणों से बचा हो। मनुष्य को बहुत देख भागकर चलना आवश्यक है जिससे वह अपनी बुद्धि और वृत्ति को बुराई से बचा सके और क्या कार्य है, क्या अकार्य है, इसको पहचान सके। धर्म और अधर्म को, बंध और मोक्ष को, वृत्ति और निवृत्ति को जो बुद्धि ठीक से पहचनाती है, वही सात्विकी बुद्धि है और वही मानव की सच्ची उपलब्धि है।

इस प्रकार भगवान ने जीवन के लिए व्यावहारिक मार्ग का उपदेश देकर अंत में यह कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि संसार के सब व्यवहारों का सच्चाई से पालन करते हुए, जो अखंड चैतन्य तत्व है, जिसे ईश्वर कहते हैं, जो प्रत्येक प्राणी के हृद्देश या केंद्र में विराजमान है, उसमें विश्वास रखे, उसका अनुभव करे। वही जीव की सत्ता है, वही चेतना है और वही सर्वोपरि आनन्द का स्रोत है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (अष्टादश अध्याय, श्लोक 66)
सभी धर्मो को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ. में तुम्हे सभी पापो से मुक्त कर दूंगा, इसमें कोई संदेह नहीं हैं।

- ✓ क्यों व्यर्थ की चिंता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा ना पैदा होती है, न मरती है।
- ✓ जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है, जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल रहा है।
- ✓ तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते हो? तुम क्या लाए थे, जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था, जो नाश हो गया? न तुम कुछ लेकर आए, जो लिया यहीं से लिया। जो दिया, यहीं पर दिया। जो लिया, इसी (भगवान) से लिया। जो दिया, इसी को दिया।
- ✓ परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो जीवन है।
- ✓ न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम शरीर के हो। यह अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश से बना है और इसी में मिल जायेगा। परन्तु आत्मा स्थिर है
- ✓ तुम अपने आपको भगवान को अर्पित करो। यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इसके सहारे को जानता है वह भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त है।
- ✓ जो कुछ भी तू करता है, उसे भगवान को अर्पण करता चल। ऐसा करने से सदा जीवन-मुक्त का आनंन्द अनुभव करेगा।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
हे राजन! जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है- ऐसा मेरा मत है I

॥ तत्त्वमसि ॥

गीता पर भाष्य

संस्कृत साहित्य की परम्परा में उन ग्रन्थों को भाष्य (शाब्दिक अर्थ - व्याख्या के योग्य), कहते हैं जो दूसरे ग्रन्थों के अर्थ की वृहद व्याख्या या टीका प्रस्तुत करते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपरा में किसी भी नये दर्शन को या किसी दर्शन के नये स्वरूप को जड़ जमाने के लिए जिन तीन ग्रन्थों पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करना पड़ता था (अर्थात् भाष्य लिखकर) उनमें भगवद्गीता भी एक है (अन्य दो हैं- उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र)।

गीता पर अनेक अचार्यों एवं विद्वानों ने टीकाएँ की हैं। संप्रदायों के अनुसार उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है :

- **अद्वैत** - शांकराभाष्य, श्रीधरकृत सुबोधिनी, मधुसूदन सरस्वतीकृत गूढ़ार्थदीपिका।
- **विशिष्टाद्वैत** -
    - यामुनाचार्य कृत गीता अर्थसंग्रह, जिसपर वेदांतदेशिककृत गीतार्थ-संग्रह रक्षा टीका है।
    - रामानुजाचार्यकृत गीताभाष्य, जिसपर वेदांतदेशिककृत तात्पर्यचंद्रिका टीका है।
- **द्वैत** - मध्वाचार्य कृत गीताभाष्य, जिसपर जयतीर्थकृत प्रमेयदीपिका टीका है, मध्वाचार्यकृत गीता-तात्पर्य निर्णय।
- **शुद्धाद्वैत** - वल्लभाचार्य कृत तत्वदीपिका, जिसपर पुरुषोत्तमकृत अमृततरंगिणी टीका है।
- **कश्मीरी टीकाएँ** –

  १. अभिनवगुप्तकृत गीतार्थ संग्रह।

  २. आनंदवर्धनकृत ज्ञानकर्मसमुच्चय।

- इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र संत ज्ञानदेव या ज्ञानेश्वरकृत भावार्थदीपिका नाम की टीका (१२९०) प्रसिद्ध है जो गीता के ज्ञान को भावात्मक काव्यशैली में प्रकट करती है।
- महाराष्ट्र मे महानुभाव संप्रदाय के संस्थापक चक्रधर स्वामी इनके महानुभाव तत्वज्ञान पर आधारित मुरलीधर शास्त्री आराध्ये इन्होने रहस्यार्थ चंद्रिका नाम की गीता टीका लिखी है। इसके सीवा महानुभाव संप्रदाय मे और भी 52 गीता टीका उपलब्ध है।
- वर्तमान युग में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलककृत गीतारहस्य टीका, जो अत्यंत विस्तृत भूमिका तथा विवेचन के साथ पहली बार १९१५ ई। में पूना से प्रकाशित हुई थी, गीता साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसने गीता के मूल अर्थों को विद्वानों तक पहुँचाने में ऐसा मोड़ दिया है जो शंकराचार्य के बाद आज तक संभव नहीं हुआ था। वस्तुत: शंकराचार्य का भाष्य गीता का मुख्य अर्थ ज्ञानपरक करता है जबकि तिलक ने गीता को कर्म का प्रतिपादक शस्त्र सिद्ध किया है।

    - गीताभाष्य - आदि शंकराचार्य
    - गीताभाष्य - रामानुज
    - गूढार्थदीपिका टीका - मधुसूदन सरस्वती
    - सुबोधिनी टीका - श्रीधर स्वामी
    - ज्ञानेश्वरी - संत ज्ञानेश्वर (संस्कृत से गीता का मराठी अनु
    - गीतारहस्य - बालगंगाधर तिलक

- अनासक्ति योग - महात्मा गांधी
- Essays on Gita - अरविन्द घोष
- ईश्वरार्जुन संवाद- परमहंस योगानन्द
- गीता-प्रवचन - विनोबा भावे
- गीता तत्व विवेचनी टीका - जयदयाल गोयन्दका
- भगवदगीता का सार- स्वामी क्रियानन्द
- गीता साधक संजीवनी (टीका)- स्वामी रामसुखदास
- गीता हृदय-यति राज दण्डी स्वामी सहजानंद सरस्वती
- श्रीमद्भगवद्गीता (आध्यात्मिक गीता के नाम से प्रसिद्ध) - योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी व श्री भूपेद्रनाथ सान्याल जी की टीका और गोपीनाथ कविराज जी द्वारा भूमिका [5]

गीता नाम के अन्य ग्रन्थ

- अष्टावक्र गीता
- अवधूत गीता
- कपिल गीता
- श्रीराम गीता
- श्रुति गीता
- उद्धव गीता
- वैष्णव गीता
- कृषि गीता
- गुरु। गीता

॥ हरिः ॐ तत् सत् ॥

भारतीय दर्शन

भारत में 'दर्शन' उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। 'तत्व दर्शन' या 'दर्शन' का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए और/या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है। हृदय की गाँठ तभी खुलती है और शोक तथा संशय तभी दूर होते हैं जब एक सत्य का दर्शन होता है। मनु का कथन है कि सम्यक दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकता तथा जिनको सम्यक दृष्टि नहीं है वे ही संसार के महामोह और जाल में फंस जाते हैं। भारतीय ऋषिओं ने जगत के रहस्य को अनेक कोणों से समझने की कोशिश की है। दर्शन ग्रन्थों को **दर्शनशास्त्र** भी कहते हैं।
यह शास्त्र शब्द 'शासु अनुशिष्टौ' से निष्पन्न है।

भारतीय दर्शन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अस्तित्व में आया, कुछ भी प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि उपनिषद काल में दर्शन एक पृथक शास्त्र के रूप में विकसित होने लगा था।

तत्त्वों के अन्वेषण की प्रवृत्ति भारतवर्ष में उस सुदूर काल से है, जिसे हम 'वैदिक युग' के नाम से पुकारते हैं। ऋग्वेद के अत्यन्त प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते हैं। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रज्ञामूलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है। प्रज्ञा के बल से ही पहली प्रवृत्ति तत्त्वों के विवेचन में कृतकार्य होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क के सहारे तत्त्वों के समीक्षण में समर्थ होती है। अंग्रेजी शब्दों में पहली को हम 'इन्ट्यूशनिस्टिक' कह सकते हैं और दूसरी को रैशनलिस्टिक। लक्ष्य भी आरम्भ से ही दो प्रकार के थे - धन का उपार्जन तथा ब्रह्म का साक्षात्कार।

प्रज्ञामूलक और तर्क-मूलक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से आत्मा के औपनिषदिष्ठ तत्त्वज्ञान का स्फुट आविर्भाव हुआ। उपनिषदों के ज्ञान का पर्यवसान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करने वाले प्रतिभामूलक वेदान्त में हुआ।

भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर-दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हेंने पवित्र, नित्य-शुद्ध-बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग **दर्शन** के नाम से पुकारते हैं। अन्वेषकों का विचार है कि इस शब्द का वर्तमान अर्थ में सबसे पहला प्रयोग वैशेषिक दर्शन में हुआ।

'दर्शन' शब्द का अर्थ

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'दर्शन' शब्द, 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। अतएव दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना, 'जिसके द्वारा देखा जाय' या 'जिसमें देखा जाय' होगा। दर्शन शब्द का शब्दार्थ केवल देखना या सामान्य देखना ही नहीं है। इसीलिए पाणिनि ने धात्वर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग किया है। प्रकृष्ट ईक्षण, जिसमें अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही दर्शन का अभिधेय है। इस प्रकार के प्रकृष्ट ईक्षण के साधन और फल दोनों का नाम दर्शन है। जहाँ पर इन सिद्धान्तों का संकलन हो, उन ग्रन्थों का भी नाम दर्शन ही होगा, जैसे-न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा दर्शन आदि-आदि।

भारतीय दर्शन का प्रतिपाद्य विषय

दर्शनों का उपदेश वैयक्तिक जीवन के सम्मार्जन और परिष्करण के लिए ही अधिक उपयोगी है। बिना दर्शनों के आध्यात्मिक पवित्रता एवं उन्नयन होना दुर्लभ है। दर्शन-शास्त्र ही हमें प्रमाण और तर्क के सहारे अन्धकार में

दीपज्योति प्रदान करके हमारा मार्ग-दर्शन करने में समर्थ होता है। गीता के अनुसार **किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः** (संसार में करणीय क्या है और अकरणीय क्या है, इस विषय में विद्वान भी अच्छी तरह नहीं जान पाते।) परम लक्ष्य एवं पुरुषार्थ की प्राप्ति दार्शनिक ज्ञान से ही संभव है, अन्यथा नहीं।

दर्शन द्वारा विषयों को हम संक्षेप में दो वर्गों में रख सकते हैं- लौकिक और अलौकिक अथवा मानवी(सापेक्ष) और आध्यात्मिक(निरपेक्ष)। दर्शन या तो विस्तृत सृष्टि प्रपंच के विषय में सिद्धान्त या आत्मा के विषय में हमसे चर्चा करता है। इस प्रकार दर्शन के विषय जड़ और चेतन दोनों ही हैं। प्राचीन ऋग्वैदिक काल से ही दर्शनों के मूल तत्त्वों के विषय में कुछ न कुछ संकेत हमारे आर्ष साहित्य में मिलते हैं।

- ✓ **नीचे प्रमुख दर्शनशास्त्रों के प्रथम सूत्र दिये गये हैं जो मोटे तौर पर उस दर्शन की विषयवस्तु का परिचय देते हैं-**

- ✓ अथातो धर्मजिज्ञासा - अब धर्म (करने योग्य कर्म) के जानने की लालसा है (पूर्वमीमांसा)
- ✓ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। - आओ, अब हम परम सत्य की जिज्ञासा करें।" (वेदान्तसूत्र)
- ✓ अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। अव, यहां से, हम धर्म का व्याख्यान करेंगे (वैशेषिकसूत्र)
- ✓ अथ योगानुशासनम्।- योग एक अनुशासन है, जिससे मनुष्य अपने आत्मस्वरूप में स्थित होता है। (योगसूत्र)
- ✓ अथ त्रिविधदु:खात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ:। तीन प्रकार के दुखों की अतिशय निवृत्ति मोक्ष कहलाती है । (सांख्यसूत्र)
- ✓ प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानाम्तत्त्वज्ञानात्निःश्रेयसाधिगमः । प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान का तत्वज्ञान निःश्रेयस या परम कल्याण का विधायक है। (न्यायसूत्र)

भारतीय दर्शन की विकास यात्रा

वेदों में जो आधार तत्त्व बीज रूप में बिखरे दिखाई पड़ते थे, वे ब्राह्मणों में आकर कुछ उभरे ; परन्तु वहाँ कर्मकाण्ड की लताओं के प्रतानों में फँसकर बहुत अधिक नहीं बढ़ पाये। आरण्यकों में ये अंकुरित होकर उपनिषदों में खूब पल्लवित हुए। दर्शनों का विकास जो हमें उपनिषदों में हमें दृष्टिगोचर होता है, आलोचकों ने उसका श्रीगणेश लगभग दौ सौ वर्ष ईसा पूर्व स्थिर किया है। महात्मा बुद्ध से यह प्राचीन हैं। इतना ही नहीं विद्वानों ने सांख्य, योग और मीमांसा को भी बुद्ध से प्राचीन माना है। संभव है कि ये दर्शन वर्तमान रूप में उस समय न हों, तथापि वे किसी रूप में अवश्य विद्यमान थे। वैशेषिकदर्शन भी शायद बुद्ध से प्राचीन ही है; क्योंकि जैसा आज के युग में न्याय और वैशेषिक समान तन्त्र समझे जाते हैं, उसी प्रकार पहले पूर्व मीमांसा और वैशेषिक समझे जाते थे। बौद्धदर्शन पद्धति का आविर्भाव ईसा से पूर्व दो सौ वर्ष माना जाता है, परन्तु जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन से भी प्राचीन ठहरता है। इसकी पुष्टि में यह प्रमाण दिया जाता है कि प्राचीन जैन दर्शनों में न तो बुद्ध दर्शन और न किसी हिन्दू दर्शन का ही खण्डन उपलब्ध होता है। महावीर स्वामी, जो जैन सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं, वे भी बुद्ध से प्राचीन थे। अतएव जैन दर्शन का बुद्ध दर्शन से प्राचीन होना युक्तियुक्त अनुमान है।

भारतीय दर्शनों का ऐतिहासिक क्रम निश्चित करना कठिन है। इन सब भिन्न-भिन्न दर्शनों का लगभग साथ ही साथ समान रूप से प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ है। इधर-उधर तथा बीच में भी कई कड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। अत: जो कुछ शेष है, उसी का आधार लेकर चलना है। इस क्रम में शुद्ध ऐतिहासिकता न होने पर भी क्रमिक विकास की श्रृंखला आदि से अन्त तक चलती रही है। इसलिए प्राय: विद्वानों ने इसी क्रम का अनुसरण किया है।

भारतीय दर्शन का स्रोत

भारतीय दर्शन का आरम्भ वेदों से होता है। "वेद" भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि सभी के मूल स्रोत हैं। आज भी धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्यों के अवसर पर वेद-मंत्रों का गायन होता है। अनेक दर्शन-संप्रदाय वेदों को अपना आधार और प्रमाण मानते हैं। आधुनिक अर्थ में वेदों को हम दर्शन के ग्रंथ नहीं कह सकते। वे प्राचीन भारतवासियों के संगीतमय काव्य के संकलन है। उनमें उस समय के भारतीय जीवन के अनेक विषयों का समावेश है। वेदों के इन गीतों में अनेक प्रकार के दार्शनिक विचार भी मिलते हैं। चिन्तन के इन्हीं बीजों से उत्तरकालीन दर्शनों की वनराजियाँ विकसित हुई हैं। अधिकांश भारतीय दर्शन वेदों को अपना आदिस्त्रोत मानते हैं। ये "आस्तिक दर्शन" कहलाते हैं। प्रसिद्ध षड्दर्शन इन्हीं के अंतर्गत हैं। जो दर्शनसंप्रदाय अपने को वैदिक परंपरा से स्वतंत्र मानते हैं वे भी कुछ सीमा तक वैदिक विचारधाराओं से प्रभावित हैं।

वेदों का रचनाकाल बहुत विवादग्रस्त है। प्रायः पश्चिमी विद्वानों ने ऋग्वेद का रचनाकाल 1500 ई.पू. से लेकर 2500 ई.पू. तक माना है। इसके विपरीत भारतीय विद्वान् ज्योतिष आदि के प्रमाणों द्वारा ऋग्वेद का समय 3000 ई.पू. से लेकर 15000 वर्ष ई.पू. तक मानते हैं। इतिहास की विदित गतियों के आधार पर इन प्राचीन रचनाओं के समय का अनुमान करना कठिन है। प्राचीन काल में इतने विशाल और समृद्ध साहित्य के विकास में हजारों वर्ष लगे होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। उपलब्ध वैदिक साहित्य संपूर्ण वैदिक साहित्य का एक छोटा सा अंश है। प्राचीन युग में रचित समस्त साहित्य संकलित भी नहीं हो सका होगा और संकलित साहित्य का बहुत सा भाग आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया होगा। बहुत से ग्रन्थ प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, अकाल, महामारी आदि) में नष्ट हो गये होंगे। वास्तविक वैदिक साहित्य का विस्तार इतना अधिक था कि उसके रचनाकाल की कल्पना करना कठिन है। निस्संदेह वह बहुत प्राचीन रहा होगा। वेदों के संबंध में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कुरान और बाइबिल की भाँति "वेद" किसी एक ग्रंथ का नाम नहीं है और न वे किसी एक मनुष्य की रचनाएँ हैं। "वेद" एक संपूर्ण साहित्य है जिसकी विशाल परंपरा है और जिसमें अनेक ग्रंथ सम्मिलित हैं। धार्मिक परंपरा में वेदों को नित्य, अपौरुषेय और ईश्वरीय माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हम उन्हें ऋषियों की रचना मान सकते हैं। वेदमंत्रों के रचनेवाले ऋषि अनेक हैं।

वैदिक साहित्य का विकास चार चरणों में हुआ है। ये संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् कहलाते हैं। मंत्रों और स्तुतियों के संग्रह को "संहिता" कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मंत्रों की संहिताएँ ही हैं। इनकी भी अनेक शाखाएँ हैं। इन संहिताओं के मंत्र यज्ञ के अवसर पर देवताओं की स्तुति के लिए गाए जाते थे। आज भी धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्यों के अवसर पर इनका गायन होता है। इन वेदमंत्रों में इंद्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, सोम, उषा आदि देवताओं की संगीतमय स्तुतियाँ हैं। यज्ञ और देवोपासना ही वैदिक धर्म का मूल रूप था। वेदों की भावना उत्तरकालीन दर्शनों के समान सन्यासप्रधन नहीं है। वेदमंत्रों में जीवन के प्रति आस्था तथा जीवन का उल्लास ओतप्रोत है। जगत् की असत्यता का वेदमंत्रों में आभास नहीं है। ऋग्वेद में लौकिक मूल्यों का पर्याप्त मान है। वैदिक ऋषि देवताओं से अन्न, धन, संतान, स्वास्थ्य, दीर्घायु, विजय आदि की अभ्यर्थना करते हैं।

वेदों के मंत्र प्राचीन भारतीयों के संगीतमय लोककाव्य के उत्तम उदाहरण हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथों में गद्य की प्रधानता है, यद्यपि उनका यह गद्य भी लययुक्त है। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञों की विधि, उनके प्रयोजन, फल आदि का विवेचन है। आरण्यकग्रंथों में आध्यात्मिकता की ओर झुकाव दिखाई देता है। जैसा कि इस नाम से ही विदित होता है, ये वानप्रस्थों के उपयोग के ग्रंथ हैं। उपनिषदों में आध्यात्मिक चिंतन की प्रधानता है। चारों वेदों की मंत्रसंहिताओं के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् अलग अलग मिलते हैं। शतपथ, तांडय आदि ब्राह्मण प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण हैं। ऐतरेय, तैत्तिरीय आदि के नाम से आरण्यक और उपनिषद् दोनों मिलते हैं। इनके अतिरिक्त ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य आदि प्राचीन उपनिषद् भारतीय चिंतन के आदिस्त्रोत हैं।

उपनिषदों का दर्शन आध्यात्मिक है। ब्रह्म की साधना ही उपनिषदों का मुख्य लक्ष्य है। ब्रह्म को आत्मा भी कहते हैं। "आत्मा" विषयजगत्, शरीर, इंद्रियों, मन, बुद्धि आदि सभी अवगम्य तत्वों स परे एक अनिर्वचनीय और अतींद्रिय तत्व है, जो चित्स्वरूप, अनन्त और आनन्दमय है। सभी परिच्छेदों से परे होने के कारण वह अनन्त है। अपरिच्छन्न और एक होने के कारण आत्मा भेदमूलक जगत् में मनुष्यों के बीच आंतरिक अभेद और अद्वैत का आधार बन सकता है। आत्मा ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। उसका साक्षात्कार करके मनुष्य मन के समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है। अद्वैतभाव की पूर्णता के लिए आत्मा अथवा ब्रह्म से जड़ जगत् की उत्पत्ति कैसे होती है, इसकी व्याख्या के लिए माया की अनिर्वचनीय शक्ति की कल्पना की गई है। किंतु सृष्टिवाद की अपेक्षा आत्मिक अद्वैतभाव उपनिषदों के वेदांत का अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। यही अद्वैतभाव भारतीय संस्कृति में ओतप्रोत है। दर्शन के क्षेत्र में उपनिषदों का यह
ब्रह्मवाद आदिशंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि के उत्तरकालीन वेदान्त मतों का आधार बना। वेदों का अंतिम भाग होने के कारण उपनिषदों को "वेदान्त" भी कहते हैं। उपनिषदों का अभिमत ही आगे चलकर वेदांत का सिद्धांत और संप्रदायों का आधार बन गया। उपनिषदों की शैली सरल और गंभीर है। अनुभव के गंभीर तत्व अत्यंत सरल भाषा में उपनिषदों में व्यक्त हुए हैं। उनको समझने के लिए अनुभव का प्रकाश अपेक्षित है। ब्रह्म का अनुभव ही उपनिषदों का लक्ष्य है। वह अपनी साधना से ही प्राप्त होता है। गुरु का संपर्क उसमें अधिक सहायक होता है। तप, आचार आदि साधना की भूमिका बनाते हैं। कर्म आत्मिक अनुभव का साधक नहीं है। कर्म प्रधान वैदिक धर्म से उपनिषदों का यह मतभेद है। सन्यास, वैराग्य, योग, तप, त्याग आदि को उपनिषदों में बहुत महत्व दिया गया है। इनमें श्रमण परंपरा के कठोर सन्यासवाद की प्रेरणा का स्रोत दिखाई देता है। तपोवादी जैन और बौद्ध मत तथा गीता का कर्मयोग उपनिषदों की आध्यात्मिक भूमि में ही अंकुरित हुए हैं।

हिन्दू दर्शन-परम्परा

हिन्दू धर्म में दर्शन अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है। वैदिक दर्शनों में **षड्दर्शन** (छः दर्शन) अधिक प्रसिद्ध और प्राचीन हैं। ये छः दर्शन ये हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। गीता का कर्मवाद भी इनके समकालीन है। षडदर्शनों को 'आस्तिक दर्शन' कहा जाता है। वे वेद की सत्ता को मानते हैं। हिन्दू दार्शनिक परम्परा में विभिन्न प्रकार के आस्तिक दर्शनों के अलावा अनीश्वरवादी और भौतिकवादी दार्शनिक परम्पराएँ भी विद्यमान रहीं हैं।

न्याय दर्शन

महर्षि गौतम रचित इस दर्शन में पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है। पदार्थों के तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होती है। फिर अशुभ कर्मो में प्रवृत्त न होना, मोह से मुक्ति एवं दुखों से निवृत्ति होती है। इसमें परमात्मा को सृष्टिकर्ता, निराकार, सर्वव्यापक और जीवात्मा को शरीर से अलग एवं प्रकृति को अचेतन तथा सृष्टि का उपादान कारण माना गया है और स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। इसके अलावा इसमें न्याय की परिभाषा के अनुसार न्याय करने की पद्धति तथा उसमें जय-पराजय के कारणों का स्पष्ट निर्देश दिया गया है।

वैशेषिक दर्शन

महर्षि कणाद रचित इस दर्शन में धर्म के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसमें सांसारिक उन्नति तथा निश्श्रेय सिद्धि के साधन को धर्म माना गया है। अत: मानव के कल्याण हेतु धर्म का अनुष्ठान करना परमावश्यक होता है। इस दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ: पदाथों के साधर्म्य तथा वैधर्म्य के तत्वाधान से मोक्ष प्राप्ति मानी जाती है। साधर्म्य तथा वैधर्म्य ज्ञान की एक विशेष पद्धति है, जिसको जाने बिना भ्रांतियों का निराकरण करना संभव नहीं है। इसके अनुसार चार पैर होने से गाय-भैंस एक

नहीं हो सकते। उसी प्रकार जीव और ब्रह्म दोनों ही चेतन हैं। किंतु इस साधर्म्य से दोनों एक नहीं हो सकते। साथ ही यह दर्शन वेदों को, ईश्वरोक्त होने को परम प्रमाण मानता है।

सांख्य दर्शन

इस दर्शन के रचयिता महर्षि कपिल हैं। इसमें सत्कार्यवाद के आधार पर इस सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति को माना गया है। इसका प्रमुख सिद्धांत है कि अभाव से भाव या असत से सत की उत्पत्ति कदापि संभव नहीं है। सत कारणों से ही सत कार्यो की उत्पत्ति हो सकती है। सांख्य दर्शन प्रकृति से सृष्टि रचना और संहार के क्रम को विशेष रूप से मानता है। साथ ही इसमें प्रकृति के परम सूक्ष्म कारण तथा उसके सहित २४ कार्य पदार्थों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। पुरुष २५ वां तत्व माना गया है, जो प्रकृति का विकार नहीं है। इस प्रकार प्रकृति समस्त कार्य पदाथो का कारण तो है, परंतु प्रकृति का कारण कोई नहीं है, क्योंकि उसकी शाश्वत सत्ता है। पुरुष चेतन तत्व है, तो प्रकृति अचेतन। पुरुष प्रकृति का भोक्ता है, जबकि प्रकृति स्वयं भोक्ती नहीं है।

योग दर्शन

इस दर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि हैं। इसमें ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। इसके अलावा योग क्या है, जीव के बंधन का कारण क्या है? चित्त की वृत्तियां कौन सी हैं? इसके नियंत्रण के क्या उपाय हैं इत्यादि यौगिक क्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार परमात्मा का ध्यान आंतरिक होता है। जब तक हमारी इंद्रियां बहिर्गामी हैं, तब तक ध्यान कदापि संभव नहीं है। इसके अनुसार परमात्मा के मुख्य नाम ओ३म् का जाप न करके अन्य नामों से परमात्मा की स्तुति और उपासना अपूर्ण ही है।

मीमांसा दर्शन

मीमांसासूत्र इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है जिसके रचयिता महर्षि जैमिनि हैं। इस दर्शन में वैदिक यज्ञों में मंत्रों का विनियोग तथा यज्ञों की प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। यदि योग दर्शन अंतःकरण शुद्धि का उपाय बताता है, तो मीमांसा दर्शन मानव के पारिवारिक जीवन से राष्ट्रीय जीवन तक के कर्तव्यों और अकर्तव्यों का वर्णन करता है, जिससे समस्त राष्ट्र की उन्नति हो सके। जिस प्रकार संपूर्ण कर्मकांड मंत्रों के विनियोग पर आधारित हैं, उसी प्रकार मीमांसा दर्शन भी मंत्रों के विनियोग और उसके विधान का समर्थन करता है। धर्म के लिए महर्षि जैमिनि ने वेद को भी परम प्रमाण माना है। उनके अनुसार यज्ञों में मंत्रों के विनियोग, श्रुति, वाक्य, प्रकरण, स्थान एवं समाख्या को मौलिक आधार माना जाता है।

वेदान्त दर्शन

वेदान्त का अर्थ है वेदों का अन्तिम सिद्धान्त। महर्षि व्यास द्वारा रचित **ब्रह्मसूत्र** इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है। इस दर्शन को **उत्तर मीमांसा** भी कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म जगत का कर्ता-धर्ता व संहारकर्ता होने से जगत का निमित्त कारण है। उपादान अथवा अभिन्न कारण नहीं। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनंदमय, नित्य, अनादि, अनंतादि गुण विशिष्ट शाश्वत सत्ता है। साथ ही जन्म मरण आदि क्लेशों से रहित और निराकार भी है। इस दर्शन के प्रथम सूत्र `अथातो ब्रह्म जिज्ञासा´ से ही स्पष्ट होता है कि जिसे जानने की इच्छा है, वह ब्रह्म से भिन्न है, अन्यथा स्वयं को ही जानने की इच्छा कैसे हो सकती है। और यह सर्वविदित है कि जीवात्मा हमेशा से ही अपने दुखों से मुक्ति का उपाय करती रही है। परंतु ब्रह्म का गुण इससे भिन्न है।

आगे चलकर वेदान्त के अनेकानेक सम्प्रदाय (अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि) बने।

अन्य हिन्दू दर्शन

षड दर्शनों के अलावा लोकायत तथा शैव एवं शाक्त दर्शन भी हिन्दू दर्शन के अभिन्न अंग हैं।

चार्वाक दर्शन

वेदविरोधी होने के कारण नास्तिक संप्रदायों में चार्वाक मत का भी नाम लिया जाता है। भौतिकवादी होने के कारण यह आदर न पा सका। इसका इतिहास और साहित्य भी उपलब्ध नहीं है। "बृहस्पति सूत्र" के नाम से एक चार्वाक ग्रंथ के उद्धरण अन्य दर्शन ग्रंथों में मिलते हैं। चार्वाक मत एक प्रकार का यथार्थवाद और भौतिकवाद है। इसके अनुसार केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। अनुमान और आगम संदिग्ध होते हैं। प्रत्यक्ष पर आश्रित भौतिक जगत् ही सत्य है। आत्मा, ईश्वर, स्वर्ग आदि सब कल्पित हैं। भूतों के संयोग से देह में चेतना उत्पन्न होती है। देह के साथ मरण में उसका अंत हो जाता है। आत्मा नित्य नहीं है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जीवनकाल में यथासंभव सुख की साधना करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

अवैदिक दर्शनों का विकास

उपनिषदों के अध्यात्मवाद तथा तपोवाद में ही वैदिक कर्मकांड के विरुद्ध एक प्रकट क्रांति का रूप ग्रहण कर लिया। उपनिषद काल में एक ओर बौद्ध और जैन धर्मों की अवैदिक परंपराओं का आविर्भाव हुआ तथा दूसरी ओर वैदिक दर्शनों का उदय हुआ। ईसा के जन्म के पूर्व और बाद की एक दो शताब्दियों में अनेक दर्शनों की समानांतर धाराएँ भारतीय विचारभूमि पर प्रवाहित होने लगीं। बौद्ध और जैन दर्शनों की धाराएँ भी इनमें सम्मिलित हैं।

जैन धर्म का बौद्ध धर्म का आरम्भ एक साथ हुआ। महावीर स्वामी के पूर्व 23 जैन तीर्थंकर हो चुके थे। महावीर स्वामी ने जैन धर्म का प्रचार किया। भगवान गौतम बुद्ध उनके समकालीन थे। दोनों का समय ई.पू. छठी शताब्दी माना जाता है। इन्होंने वेदों से स्वतंत्र एक नवीन धार्मिक परम्परा का प्रवर्तन किया। वेदों को न मानने के कारण जैन और बौद्ध दर्शनों को "नास्तिक दर्शन" भी कहते हैं। इनका मौलिक साहित्य क्रमश: महावीर और बुद्ध के उपदेशों के रूप में है जो क्रमशः प्राकृत और पालि की लोकभाषाओं में मिलता है तथा जिसका संग्रह इन महापुरुषों के निर्वाण के बाद कई संगीतियों में उनके अनुयायियों के परामर्श के द्वारा हुआ। बुद्ध और महावीर दोनों हिमालय प्रदेश के राजकुमार थे। युवावय में ही सन्यास लेकर उन्होने अपने धर्मो का उपदेश और प्रचार किया। उनका यह सन्यास उपनिषदों की परम्परा से प्रेरित है। जैन और बौद्ध धर्मों में तप और त्याग की महिमा भी उपनिषदों के दशर्न के अनुकूल है। अहिंसा और आचार की महत्ता तथा जातिभेद का खण्डन इन धर्मों की विशेषता है। अहिंसा के बीज भी उपनिषदों में विद्यमान हैं। फिर भी अहिंसा की ध्वजा को धर्म के आकाश में फहराने का श्रेय जैन और बौद्ध सम्प्रदायों को देना होगा।

जैन दर्शन

महावीर स्वामी के उपदेशों से लेकर जैन धर्म की परंपरा आज तक चल रही है। महावीर स्वामी के उपदेश 41 सूत्रों में संकलित हैं, जो जैनागमों में मिलते हैं। उमास्वामी का "तत्वार्थ सूत्र" (300 ई.) जैन दर्शन का प्राचीन और प्रामाणिक शास्त्र है। सिद्धसेन दिवाकर (500 ई.), हरिभद्र (900 ई.), मेरुतुंग (14वीं शताब्दी), आदि जैन दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। सिद्धांत की दृष्टि से जैन दर्शन एक ओर अध्यात्मवादी तथा दूसरी ओर भौतिकवादी है। वह आत्मा और पुद्गल (भौतिक तत्व) दोनों को मानता है। जैन मत में आत्मा प्रकाश के समान व्यापक और विस्तारशील है। पुनर्जन्म में नवीन शरीर के अनुसार आत्मा का संकोच और विस्तार होता है। स्वरूप से वह चैतन्य स्वरूप और आनंदमय है। वह मन और इंद्रियों के माध्यम के बिना परोक्ष विषयों के ज्ञान में समर्थ है। इस अलौकिक ज्ञान के तीन रूप हैं - अवधिज्ञान, मन:पर्याय और केवलज्ञान। पूर्ण ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। यह निर्वाण की अवस्था में प्राप्त हाता है। यह सब प्रकार से वस्तुओं के समस्त धर्मों का ज्ञान है। यही ज्ञान "प्रमाण" है। किसी अपेक्षा से वस्तु के एक धर्म का ज्ञान "नय" कहलाता है। "नय" कई प्रकार के होते हैं। ज्ञान की सापेक्षता जैन दर्शन का सिद्धांत है। यह सापेक्षता मानवीय विचारों में उदारता और सहिष्णुता को संभव बनाती है। सभी विचार और विश्वास आंशिक सत्य के अधिकारी बन जाते हैं। पूर्ण सत्य

का आग्रह अनुचित है। वह निर्वाण में ही प्राप्त हो सकता है। निर्वाण आत्मा का कैवल्य है। कर्म के प्रभाव से पुद्गल की गति आत्मा के प्रकाश को आच्छादित करती है। यह "आस्रव" कहलाता है। यही आत्मा का बंधन है। तप, त्याग और सदाचार से इस गति का अवरोध "संवर" तथा संचित कर्मपुद्गल का क्षय "निर्जरा" कहलाता है। इसका अंत "निर्वाण" में होता है। निर्वाण में आत्मा का अनंत ज्ञान और अनंत आनंद प्रकाशित होता है। निश्चय नय की अपेक्षा स्वभाव से प्रत्येक जीव परमात्मा,कर्म मल रहित है।जिस प्रकार जल को कितना ही तपा दो वह एक ना एक दिन शीतल अवश्य होगा क्योंकि शीतलता उसका स्वभाव है ठीक उसी प्रकार कर्म मल से तपा जीवात्मा का स्वभाव निरंजन है,निर्द्वंद है वह कभी न कभी उसे प्राप्त करेगा ही। जैन दर्शन परमात्मा को कर्ता धर्ता नहीं मानता वह मानता है जैसे शुभाशुभ कर्म किए हैं उसका फल अवश्य ही मिलेगा।परमात्मा शुभ व अशुभ दोनों से सर्वथा भिन्न सर्वशुद्ध है।

बौद्ध दर्शन

बुद्ध के उपदेश तीन पिटकों में संकलित हैं। ये सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक कहलाते हैं। ये पिटक बौद्ध धर्म के आगम हैं। क्रियाशील सत्य की धारणा बौद्ध मत की मौलिक विशेषता
है। उपनिषदों का ब्रह्म अचल और अपरिवर्तनशील है। बुद्ध के अनुसार परिवर्तन ही सत्य है। पश्चिमी दर्शन में हैराक्लाइटस और बर्गसाँ ने भी परिवर्तन को सत्य माना। इस परिवर्तन का कोई अपरिवर्तनीय आधार भी नहीं है। बाह्य और आंतरिक जगत् में कोई ध्रुव सत्य नहीं है। बाह्य पदार्थ "स्वलक्षणों" के संघात हैं। आत्मा भी मनोभावों और विज्ञानों की धारा है। इस प्रकार बौद्धमत में उपनिषदों के आत्मवाद का खण्डन करके "अनात्मवाद" की स्थापना की गई है। फिर भी बौद्धमत में कर्म और पुनर्जन्म मान्य हैं। आत्मा का न मानने पर भी बौद्धधर्म करुणा से ओतप्रोत हैं। दु:ख से द्रवित होकर ही बुद्ध ने संन्यास लिया और दु:ख के निरोध का उपाय खोजा। अविद्या, तृष्णा आदि में दु:ख का कारण खोजकर उन्होंने इनके उच्छेद को निर्वाण का मार्ग बताया।

अनात्मवादी होने के कारण बौद्ध धर्म का वेदान्त दर्शन से विरोध हुआ। इस विरोध का फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारत से निर्वासित होना पड़ा। किन्तु एशिया के पूर्वी देशों में उसका प्रचार हुआ। बुद्ध के अनुयायियों में मतभेद के कारण कई संप्रदाय बन गए।

सिद्धांतभेद के अनुसार बौद्ध परंपरा में चार दर्शन प्रसिद्ध हैं। इनमें वैभाषिक और सौत्रांतिक मत हीनयान परम्परा में हैं। यह दक्षिणी बौद्धमत हैं। इसका प्रचार भी लंका में है। योगाचार और माध्यमिक मत महायान परम्परा में हैं। यह उत्तरी बौद्धमत है। इन चारों दर्शनों का उदय ईसा की आरंभिक शब्ताब्दियों में हुआ। इसी समय वैदिक परम्परा में षड्दर्शनों का उदय हुआ। इस प्रकार भारतीय परम्परा में दर्शन संप्रदायों का आविर्भाव लगभग एक ही साथ हुआ है तथा उनका विकास परस्पर विरोध के द्वारा हुआ है। पश्चिमी दर्शनों की भाँति ये दर्शन पूर्वापर क्रम में उदित नहीं हुए हैं।

वसुबंधु (400 ई.), कुमारलात (200 ई.) मैत्रेय (300 ई.) और नागार्जुन (200 ई.) इन दर्शनों के प्रमुख आचार्य थे। **वैभाषिक मत** बाह्य वस्तुओं की सत्ता तथा स्वलक्षणों के रूप में उनका प्रत्यक्ष मानता है। अत: उसे बाह्य प्रत्यक्षवाद अथवा "सर्वास्तित्ववाद" कहते हैं। **सैत्रांतिक मत** के अनुसार पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं, अनुमान होता है। अतः उसे बाह्यानुमेयवाद कहते हैं। **योगाचार मत** के अनुसार बाह्य पदार्थों की सत्ता नहीं। हमे जो कुछ दिखाई देता है वह विज्ञान मात्र है। योगाचार मत विज्ञानवाद कहलाता है। **माध्यमिक मत** के अनुसार विज्ञान भी सत्य नहीं है। सब कुछ शून्य है। शून्य का अर्थ निरस्वभाव, नि:स्वरूप अथवा अनिर्वचनीय है। शून्यवाद का यह शून्य वेदान्त के ब्रह्म के बहुत निकट आ जाता है।

✓ भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन में भेद :

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं-
(१) भारतीय दर्शन की उत्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'देखना' है। इसका भारतीय परम्परा में बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। भारतीय दर्शन के प्रणेताओं ने संकुचित जीवन-दर्शन का सदैव निषेध किया है तथा अतिविस्तृत मानवीय दर्शन के सृजन पर बल दिया है। पाश्चात्य दर्शन में फिलॉसफी (Philosophy) ग्रीक भाषा का शब्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान के प्रति अनुराग' है। पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार 'दर्शन' शुद्ध बौद्धिक विषय है और यह ज्ञान की खोज मात्र है। जीवन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं । इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन बौद्धिक अधिक है, जीवन को स्पर्श करने वाले तत्त्व उसमें कम हैं जबकि भारतीय (पूर्वी) दर्शन जीवन व जगत् को स्पर्श करता है।

(२) पाश्चात्य दर्शन ऊर्ध्वाधर विकास का अनुसरण करता है।इसे प्लेटो, सुकरात व अरस्तू की शिक्षाओं से लेकर इमानुएल काण्ट की शिक्षाओं तक समझा जा सकता है।

भारतीय दर्शन समानान्तर क्षैतिजीय विकास का अनुसरण करता है। इस दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों का एक-दूसरे से स्वतन्त्र विकास हुआ है और वे स्वयं में पूर्ण हैं। बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, सांख्य दर्शन व योग दर्शन अपने-अपने विचारों के आधार पर विकसित हुए हैं और एक-दूसरे से अलग भी हैं।

(३) भारतीय दर्शन में हमें आत्मा का दर्शन प्राप्त हुआ जबकि पाश्चात्य दर्शन में सामान्यतः मानववाद पाया जाता है। पाश्चात्य दर्शन तर्क पर आधारित है तथा भारतीय दर्शन भी तत्त्व मीमांसा को तर्क के आधार पर ही देखता है।

(४) पाश्चात्य दर्शन में मूल्यमीमांसा या तत्त्वमीमांसा के पहलुओं के प्रति बौद्धिक उत्सुकता दिखायी देती है। इसके विपरीत पूर्वी दर्शन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर ध्यान देना व उसके कष्टों की मुक्ति हेतु निर्वाण प्रदान करना है। चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय स्वतन्त्रता पर विशेष बल देते हैं और पूर्वी दर्शन के समर्थक स्वतन्त्रता को अपने तरीके से प्राप्त करना चाहते हैं, फिर चाहे वे बुद्ध हों, महावीर हों या शंकराचार्य हों, परन्तु इसके विपरीत किसी भी पाश्चात्य दार्शनिक ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का दावा नहीं किया है।

(५) पाश्चात्य दर्शन का उद्भव 'स्वयं' को जानो' (Know thy self) से हुआ है। इस तथ्य का उल्लेख हमें अपोलो के मन्दिर में लिखे गये लेख में प्राप्त होता है। सुकरात ने भी प्राचीन यूनान के प्रमुखतः इसका आभास किया तथा उसके दर्शन में भी स्वयं की देखभाल के रूप में स्वयं व संसार के अस्तित्व के परीक्षण के रूप में मिलता है। १८वीं शताब्दी में इस दर्शन के स्वरूप में भी परिवर्तन आया और यह प्रयोगात्मक, व्यक्तिगत व हस्तान्तरण के प्रयोग से मुक्त हुआ। अब पाश्चात्य दर्शन का उद्देश्य केवल वैज्ञानिक सत्यता के प्रमाण खोजना एवं मनुष्य के द्वारा इसे जानने की योग्यता की सीमाओं को तलाशता है।

(६) भारतीय व पाश्चात्य दर्शनों के दृष्टिकोण में भी अन्तर है। भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी है। यह जीवन व विश्व की विसमता को समझ लेने के बाद निराशावादी हो जाता है, परन्तु जीवन की वास्तविकता को समझने वाले महात्मा, ऋषि, मनीषी, दार्शनिक आदि इनमें विरक्त हो जायें तो इसमें कोई निराशावाद नहीं है। भारतीय दृष्टिकोण अधिकांशतः भौतिकवादी भी है लेकिन भौतिकता जीवन को समृद्ध तथा सम्पन्न बना सकती है पर वास्तविक सुख, शान्ति तथा सन्तोष का दर्शन नहीं करा सकते। इसके विपरीत
पश्चिम क्रान्ति तथा संघर्षों की जड़ है अतः उनका दृष्टिकोण घोर भौतिकवादी रहा है।

दुनिया के प्रमुख नास्तिक दर्शन या धर्म में चर्वाक, जैन और बौद्ध का प्रमुख स्थान और महत्व है। सभी तरह की नास्तिक विचारधारा का उद्गम यही तीन धर्म हैं। नास्तिक कहने से यह आभासीत होता है कि ये धर्म ईश्वर

को नहीं मानते हैं, जबकि चर्वाक को छोड़ दें तो बाकी दोनों धर्म का दृष्टिकोण इस संबंध में बिलकुल अलग है।

बौद्ध धर्म ईश्वर के होने या नहीं होने पर चर्चा नहीं करता, क्योंकि यह बुद्धिजाल से ज्यादा कुछ नहीं है। उनका मानना है कि इस प्रश्न को आप तर्क या अन्य किसी भी तरह से हल नहीं कर सकते। ईश्वर के होने या नहीं होने की बहस का कोई अंत नहीं। ठीक उसी तरह कि स्वर्ग-नरक है या नहीं। मूल प्रश्न यह है कि व्यक्ति है और वह दु:ख तथा बंधन में है। उसके दु:ख व बंधन का मूल कारण खोजो और मुक्त हो जाओ। आष्टांगिक मार्ग पर चलकर दु:ख व बंधन से मुक्त हुआ जा सकता है। यही आर्य सत्य है।

जैन दर्शन अनुसार अस्तित्व या सत्ता के दो तत्व हैं- जीव और अजीव। जीव है चेतना या जिसमें चेतना है और अजीव है जड़ अर्थात जिसमें चेतना या गति का अभाव है। जीव दो तरह के होते हैं एक वे जो मुक्त हो गए और दूसरे वे जो बंधन में हैं। इस बंधन से मुक्ति का मार्ग ही कैवल्य का मार्ग है। स्वयं की इंद्रियों को जीतने वाले को जिनेंद्र या जितेंद्रिय कहते हैं। संस्कृत के 'जिन' धातु से बने 'जैन' शब्द का अर्थ ही यही होता है, स्वयं को जीतना। यही अरिहंतो का मार्ग है। जितेंद्रिय बनकर जीओ और जीने दो यही जिन सत्य है।

चर्वाक या लोकायत दर्शन स्पष्ट तौर पर 'ईश्वर' के अस्तित्व को नकारते हुए कहता है कि यह काल्पनिक ज्ञान है। तत्व भी पाँच नहीं चार ही हैं। आकाश के होने का सिर्फ अनुमान है और अनुमान ज्ञान नहीं होता। जो प्रत्यक्ष हो रहा है वही ज्ञान है अर्थात दिखाई देने वाले जगत से परे कोई और दूसरा जगत नहीं है। आत्मा अजर-अमर नहीं है। वेदों का ज्ञान प्रामाणिक नहीं है। यथार्थ और वर्तमान में जीयो। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग-नरक, नैतिकता-अनैतिकता और तमाम तरह की तार्किक और दार्शनिक बातें व्यक्ति को जीवन से दूर करती हैं। इसीलिए खाओ, पियो और मौज करो। इस जीवन का भरपूर मजा लो यही चर्वाक सत्य है।
अंतत: जैन और बौद्ध दर्शन की शिक्षा 'मुक्ति' की शिक्षा है। स्वयं को जानने की शिक्षा है। सत्य और अहिंसा की शिक्षा है किंतु चर्वाक दर्शन पूरी तरह से भौतिकवादी दर्शन होने के कारण इसका भारतीय दर्शन, धर्म और समाज में कोई महत्व नहीं रहा, क्योंकि यह दर्शन आत्मा के अस्तित्व को भी नकारता है। उसकी नजर में देह ही आत्मा है और मृत्यु ही मोक्ष है। शायद यही कारण रहा कि छठी शताब्दी आते-आते इस दर्शन के मूलग्रंथ और मान्यताएँ अपना अस्तित्व खो बैठीं। इस दर्शन को भी वैदिक दर्शन जितना पुराना ही माना जाता है।
कुछ लोग यह कहते और लिखते भी हैं कि बौद्ध धर्म भी आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, जबकि यह गलत है। निर्वाण आत्मा को ही प्राप्त होता है किसी और को नहीं। इंद्रियविहीन 'शुद्ध चैतन्य' इस तरह से होता है जैसे कि है ही नहीं। भगवान बुद्ध ने कहा था कि 'अपने दिए खुद बनो।' दूसरों के दीपक से तुम्हारा दीपक कभी नहीं जल पाएगा।

अनमोल रत्न

- ✓ दूसरों की गलतियों से सीखना चाहिए। क्युँकि आपकी उम्र इतनी लम्बी नहीं है कि आप सारी गलतियां खुद करें और फिर सीखें।
- ✓ एक शक्तिशाली दिमाग को कोई नहीं जीत सकता।
- ✓ अपना भेद किसी को न बतायें।
- ✓ एक आदमी को बहुत ज्यादा सीधा नहीं होना चाहिए। क्युँकि जंगल में सबसे पहले सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं।
- ✓ मनुष्य कर्म से महान होता है न कि जन्म से। कभी भी बदनामी वाले कर्म न करें। इसके बाद कोई आप पर विश्वास नहीं करेगा।
- ✓ कोई भी काम करने से पहले तीन प्रश्न पूछें – मैं यह क्यों कर रहा हूँ ? इसका क्या नतीजा होगा ? क्या मुझे इसमें सफलता मिलेगी?
- ✓ शिक्षा आपकी सच्ची दोस्त है। शिक्षित व्यक्ति हर कहीं सम्मान पाता है।
- ✓ ईश्वर मंदिर -मस्जिद या मूर्तियों में नहीं रहते हैं। बल्कि वे हमारी भावनाओं और विश्वास में रहते हैं।
- ✓ अपने से नीचे के स्तर के व्यक्ति से कभी दोस्ती न करें। इससे आपको कभी ख़ुशी नहीं मिलेगी।
- ✓ पहले 5 साल तक अपने बच्चे को लाड -प्यार करें, अगले पांच साल तक उसे टोंकें और गलत बातों के लिए डांटें, लेकिन जब वह 16 से ऊपर हो जाये तो उसे अपना दोस्त बना लें।
- ✓ मोह और प्यार दोनों एक नहीं होते। मोह प्यार को भी खत्म कर सकता है।
- ✓ जब तक कोई काम खत्म न हो जाये उसके बारे में सबको नहीं बताना चाहिए।
- ✓ अपमानित होकर जीने से बेहतर मरना होता है। क्युँकि मौत तो एक बार आती है लेकिन अपमानित रोज मरता है।
- ✓ अगर आपमें एक भी कला (Skill) नहीं है तो आप कभी सफल नहीं हो सकते। इसलिए किसी चीज में जरूर expert बनिए।
- ✓ काँटों और दुष्ट आदमी से निपटने के दो ही तरीके हैं। या तो उन्हें अपने जूतों तले कुचल दो या हमेशा उनसे दूर रहो।
- ✓ अत्यधिक सुंदरता की वजह से सीता को रावण चुरा कर ले गया ,अत्यधिक Ego (घमंड) की वजह से रावण मारा गया, अत्यधिक दान से राजा बलि को परेशानी हुई, इसलिए किसी भी चीज की अति बुरी होती है।
- ✓ आलसी आदमी का न तो वर्तमान अच्छा होता है न भविष्य।
- ✓ आप एक लालची आदमी को पैसे देकर जीत सकते हो, अहंकारी को सम्मान देकर जीत सकते हो, मूर्ख को सहमति से जीत सकते हो लेकिन एक विद्वान को केवल सच्चे तर्क से ही जीत सकते हो।
- ✓ मनुष्य अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही यहाँ से चला जाता है। केवल उसके कर्म ही उसके साथ जाते हैं। और उनके अनुसार ही उसे स्वर्ग और नरक मिलते हैं।
- ✓ हमारी मानसिकता पर ही निर्भर होता है कि हम गुलाम बनेंगे या स्वतंत्र।
- ✓ जब तक आप स्वस्थ हैं, अपनी आत्मा को पवित्र कर लीजिये। क्युँकि मौत के नजदीक आप ऐसा नहीं कर पाएंगे।
- ✓ जो गुरु हमें सफल होने का रास्ता दिखाते हैं उनका ऋण हम कभी चुका नहीं सकते। केवल उनका सम्मान कर सकते हैं।

- ✓ जिसके दिल में सब प्राणियों के लिए दया और प्रेम है वही वास्तव में धार्मिक है। धार्मिक होने के लिए आपको पूजा – पाठ, और कर्म – काण्ड करने की जरुरत नहीं होती।
- ✓ जो भी आपकी बीमारी में, दुर्भाग्य में, बुरे वक़्त में और विपत्ति में सहायता करता है, वह दोस्त आपका असली भाई होता है।
- ✓ अपनी दौलत केवल उसे दीजिये जो योग्य हो। समुद्र का पानी जब बादल को मिलता है तो वह मीठा हो जाता है।
- ✓ किसी के भविष्य को उसके वर्तमान से judge मत करिये । क्युँकि कोयला आगे चलकर हीरा भी बन सकता है।
- ✓ वासना से बड़ी कोई बीमारी नहीं है। यह दीमक की तरह आपके शरीर को खा जाती है।
- ✓ अगर किसी से कोई favor चाहिए तो उसकी तारीफ ही कीजिये
- ✓ जो हमारे दिल में रहता है वह दूर रहकर भी दूर नहीं होता।
- ✓ मूर्ख को सलाह देना, बुरे चरित्र वाली औरत की प्रशंशा करना, और निराशावादी आदमी की संगत में रहना बेवकूफी है।
- ✓ आप आदमी के बर्ताव से बता सकते हैं कि उसकी परवरिश कैसे माहौल में हुई होगी। और उसके पेट से बता सकते हो कि वह कितना खाता होगा।
- ✓ कभी भी अतिथि बनकर ज्यादा दिन तक किसी के घर पर न रहें। आपका सम्मान जाता रहेगा।
- ✓ आपके आस -पास कीचड़ होने पर भी आप कमल की तरह निर्मल रह सकते हैं। इसके लिए सिर्फ दूसरों की मदद करने की सोचें न कि प्रतिशोध के बारे में।
- ✓ न्यायोचित बात से हम अपने शत्रु की सोच भी बदल सकते हैं।
- ✓ कभी भी ऋण न लें। यह एक दुश्मन की तरह है और यह आपके दोस्तों को भी दूर कर देता है।
- ✓ अपने आस -पास के लोगों को बदलने की कोशिश न करें। बल्कि एक example स्थापित करके उन्हें प्रेरित करें।
- ✓ हमेसा expert का सम्मान करें और उनसे कुछ नया सीखें।
- ✓ उपलब्धि पाने और जीत हासिल करने पर भी उन्मादित न हों बल्कि धरती की तरह शाँत रहें।
- ✓ अगर पर्वत को रास्ते से हटाना है तो उसके पत्थरों को हटाना शुरू कर दें। रोज बेशक एक पत्थर ही हटाएँ। ऐसे एक दिन आप पर्वत को भी हटा देंगे।
- ✓ एक बात बोलू -जिंदगी में ऐसा इंसान का होना बहुत ज़रूरी है, जिसका दिल का हाल बताने के लिए लफ़्ज़ों की ज़रूरत ना पड़े।
- ✓ कभी पीठ पीछे आपकी बात चले तो घबराना मत, क्योंकि बात तो उन्हीं की होती है,
  जिनमें कोई बात होती है।
- ✓ अगर आप उस वक्त मुस्कुरा सकते हो,जब तुम पूरी तरह टूट चुके हो,
  तो यकीन कर लो कि दुनिया में तुम्हें कभी कोई तोड़ नहीं सकता।
- ✓ तूफान का भी आना जरूरी है जिंदगी में, तब जा कर पता चलता है,
  "कौन" हाथ छुड़ा कर भागता है,और "कौन" हाथ पकड़ कर।
- ✓ जीवन ना तो भविष्य में है और ना ही अतीत में है ,जीवन तो केवल वर्तमान में है।
- ✓ जिंदगी में कभी भी मुश्किलें आई तो शिकायत मत करना,,क्योंकि भगवान मुश्किलें उसी को देता है, जो मुश्किलों से कभी हार नहीं मानता और वह इंसान भगवान का प्रिय इंसान होता है।
- ✓ दुनिया की सबसे अच्छी किताब, हम स्वयं हैं खुद को समझ लीजिए,
  सब समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

- ✓ कुछ मिनट में जिंदगी नहीं बदलती, पर कुछ मिनट में सोच कर लिया हुआ फैसला, पूरी जिंदगी बदल देता है, इसलिए फैसलों को अहमियत दीजिये।
- ✓ ज़िंदगी में इंसान किसी चीज की सच्ची कीमत, केवल दो ही हालातों में समझ पाता है, उसको पाने से पहले और उसको खोने के बाद।
- ✓ हम कभी भी यह फैसला नहीं ले सकते कि कब हमें जन्म लेना है और कब हमें मरना है, पर हम यह जरूर फैसला ले सकते हैं, कि हमें जिंदगी को किस तरह से जीना है l
- ✓ जीवन में आपसे कौन मिलेगा,ये समय तय करेगा,जीवन में आप किस से मिलेंगे, ये आपका दिल तय करेगा,परंतु जीवन में आप किस-किस के दिल में बने रहेंगे, यह आपका व्यवहार तय करेगा।
- ✓ एक खूबसूरत सोच : अगर कोई पूछे जिंदगी में क्या खोया और क्या पाया, तो कहना जो कुछ खोया वो मेरी नादानी थी और जो भी पाया वो प्रभू की मेहेरबानी थी .
- ✓ खुबसूरत रिश्ता है मेरा और भगवान के बीच में, ज्यादा मैं मांगता नहीं और कम वो देता नहीं?
- ✓ जिंदगी में किसी इंसान को अस्वीकार मत करना, क्योंकि अगर अच्छा होगा तो आपको खुश रखेगा, या बुरा हुआ तो आपको अनुभव देगा, दोनों ही आपके लिए अच्छा है l
- ✓ गलती कबूल करने और गुनाह छोड़ने में कभी देर ना करें, क्योंकि सफर जितना लम्बा होगा, वापसी उतनी ही मुश्किल हो जायेगी।
- ✓ जिंदगी में जो कार्य मुश्किल लगे, उसे बार-बार रिपीट करने से, कार्य आसान हो जाता है
- ✓ गीता में स्पष्ट शब्दों में लिखा है, निराश न होना कमजोर तेरा वक्त है, तू नहीं।
- ✓ जब आप अपने दोस्त को बोलो मै ठीक हूँ और वह दोस्त आपकी तरफ देख कर बोले हो गया, चल अब बता प्रॉब्लम क्या है।
- ✓ यह सोच कर दुखी ना हो कि लोग आपको नहीं समझते, क्योंकि तराजू से वजन को मापा जा सकता है, गुणवत्ता को नहीं।
- ✓ जो होने वाला है वह होकर ही रहता है और जो नहीं होने वाला वह कभी नहीं होता, ऐसा निश्चय जिनकी बुद्धि में होता है, उन्हें चिंता कभी नहीं सताती।
- ✓ भगवान सिर्फ वहीं नहीं है जहाँ हम प्रार्थना करते हैं,भगवान वहाँ भी है जहाँ हम पाप करते हैं।
- ✓ कुछ बोलने और तोड़ने में केवल एक पल ही लगता है, जबकि बनाने और मनाने में पूरा जीवन लग जाता है,
- ✓ प्रेम सदा माफ़ी माँगना पसंद करता है, और अहंकार सदा माफ़ी सुनना पसंद करता है।
- ✓ दुनिया में रहने की सबसे अच्छी दो जगह है,एक किसी के दिल में और दूसरे किसी की दुआओं में।
- ✓ उस शिक्षा का कोई मतलब नहीं है, जो इंसानियत न सिखाती हो।
- ✓ जरूरत के मुताबिक जिंदगी जिओ, ख्वाहिशों के मुताबिक नहीं, क्योंकि जरुरत तो फकीरों की भी पूरी हो जाती है और ख्वाहिशें बादशाहों की भी अधूरी रह जाती है।
- ✓ बुरी आदतें अगर वक़्त पे ना बदलीं जायें, तो वो आदतें आपका वक़्त बदल देती हैं।
- ✓ ज़िन्दगी एक अध्यापक से ज़्यादा सख्त होती है, अध्यापक सबक़ देकर इम्तिहान लेता है और ज़िन्दगी इम्तिहान लेकर सबक़ देती है।
- ✓ अपने अंदर का बचपना हमेशा जिंदा रखो क्योंकि ज्यादा समझदारी Life को Boring बना देती है।
- ✓ ज़िंदगी में मुश्किलों का आना Part of life है, और उनमें से हंसकर बाहर आना Art of life है.
- ✓ अंधेरे को हटाने में वक्त बर्बाद मत करिए बल्कि दिये को जलाने में वक्त लगाइए, दूसरों को नीचा दिखाने में नही, खुद को ऊंचा उठाने में वक्त लगाइए..

- ✓ आप इतने छोटे बनिए कि हर व्यक्ति आपके साथ बैठ सके और इतने बड़े बनिए की आप जब उठे तो कोई बैठा ना रहे।
- ✓ “लफ्जों” का इस्तेमाल हिफाज़त से करिए, ये “परवरिश” का बेहतरीन सबूत होते हैं..!
- ✓ दुनिया आपको गिरा सकती है, लेकिन जब तक आप ना चाहो तब तक हरा नही सकती।
- ✓ Life में कौन आता है ये Important नही, आखिर तक कौन रहता है ये Important है।
- ✓ जीवन में हमेशा एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करिए, परखने का नही।
- ✓ अगर कोई आपसे उम्मीद करता है तो ये उसकी मजबूरी नही, आपसे लगाव और विश्वास है।
- ✓ गलती करना बुरा नही है गलती से सीख ना लेना बुरा है...
- ✓ हम ज़िन्दगी में बहुत सी चीजें खो देते हैं। “नही” जल्दी बोलकर और “हां” देर से बोलकर!!
- ✓ तकलीफें आधी हो जाती हैं, जब कोई अपना आकर बोलता है, चिंता मत कर मै हूं ना...,बातें उन्हीं से करो जिन्हे आपकी बातें सुनना पसंद हो। ज़िन्दगी में उस इंसान को मत खोना जो, गुस्सा करके फिर भी तुम्हारे पास आए। जो आपके साथ दिल से बात करता हो, उसको कभी दिमाग से जवाब मत देना। जिंदगी में बेशक हर मौके का फायदा उठाओ, मगर किसी के प्रेम और विश्वास का नही!!
- ✓ प्रेम वो नही जो एक गलती पर साथ छोड़ दे...प्रेम तो वो है जो सौ गलतियों को सुधार कर साथ दे...
- ✓ जो चीज वक़्त पर ना मिले वो बाद में मिले ना मिले, कोई फर्क नही पड़ता।
- ✓ अच्छा दिखने के लिए नही अच्छा बनने के लिए जिओ।
- ✓ किसी का सरल स्वभाव उसकी कमजोरी नही होती, उसके संस्कार होते हैं।
- ✓ गुस्से में कभी गलत मत बोलो, मूड तो ठीक हो ही जाता है, पर बोली हुई बातें वापस नही आतीं..
- ✓ हमारी ज़िन्दगी में हर फैसला हमारा नही होता....कुछ फैसले वक़्त और हालात भी करते हैं।
- ✓ किसी को force मत करो कि वो आपको टाइम दे, अगर वो सच में आपकी Care करते हैं तो खुद टाइम निकाल लेंगे।
- ✓ जिंदगी जीने के लिए कोई perfect इंसान नही चाहिए होता है बल्कि एक ऐसा इंसान चाहिए होता है जो आपकी Respect और Care करे..
- ✓ जितना हो सके खामोश रहना ही अच्छा है, क्योंकि सबसे ज्यादा गुनाह इंसान की ‘जुबान’ ही करवाती है।
- ✓ बात करने का तरीका ही बता देता है कि रिश्तों में कितनी गहराई और कितना अपनापन है।
- ✓ कौन, कब, किसका और कितना अपना है...यह सिर्फ़ वक्त बताता है।
- ✓ इंसान हंसता तो सबके सामने है, लेकिन रोता उसी के सामने है, जिस पर उसे खुद से ज्यादा भरोसा होता है।
- ✓ जरूरी नही की इंसान हर बात लफ़्ज़ों से ही बयां करे, कभी कभार उसकी खामोशी भी बहुत कुछ बयां कर देती है।
- ✓ किसी की बेज्जती हमेशा नाप तौल कर करना क्योंकि, ये वो उधार है जो हर कोई ब्याज के साथ चुकाने की सोचता है।
- ✓ जितना बड़ा सपना होगा, उतनी ही बड़ी तकलीफें होंगी,और जितनी बड़ी तकलीफें होंगी उतनी बड़ी कामयाबी होगी।
- ✓ ख़ुद का माइनस point जान लेना, ज़िंदगी का सबसे बड़ा प्लस point है।
- ✓ हारे हुए की सलाह, जीते हुए का अनुभव और खुद का दिमाग इंसान को कभी हारने नही देता है।
- ✓ Life एक खेल है अब ये आप पर depend करता है की आपको खिलाड़ी बनना है या खिलौना।
- ✓ ईश्वर के हर फैसले पर खुश रहो,
  “क्योंकि ईश्वर वो नही देता, जो आपको अच्छा लगता है”
  बल्कि, “ईश्वर वो देता है, जो आपके लिए अच्छा होता है।”

- ✓ मेहनत ही ऐसी करो की किस्मत भी, तुम्हारा साथ देने पर मजबूर हो जाए।
- ✓ जो अपना ना हुआ उस पर कभी हक ना जताना और जो समझ ना सके उसे कभी दुःख ना बताना।।
- ✓ कामयाब होने के लिए अकेले ही आगे बढ़ना पड़ता है ,लोग तो पीछे तब आते हैं जब आप कामयाब होने लगते हैं!
- ✓ दुनिया को छोड़ो, पहले उसे खुश रखो! जिसको तुम रोजाना आइने में देखते हो!!
- ✓ कभी सुनी सुनाई बात पर यकीन मत कीजिए क्योंकि एक बात के तीन पहलू होते हैं आपका, उनका और सच का...
- ✓ कभी कुछ नया पाने के लिए वो मत खो देना जो पहले से ही आपका है।
- ✓ कभी कभी जवाब न देना ही...सबसे बड़ा जवाब होता है..!
- ✓ रिश्ते तोड़ने तो नही चाहिए, लेकिन जहां कदर न हो वहां निभाने भी नही चाहिए।
- ✓ जब कोई आपकी क़दर न करें ! तब आपका उसकी ज़िन्दगी से दूर चले जाना बेहतर है !
- ✓ बात तो सिर्फ जज़्बातो की होती है वरना ! मोहब्बत तो सात फेरों के बाद भी नहीं होती
- ✓ अपनी ज़िन्दगी ऐसे जियो कि अगर कोई आपकी बुराई करें ! तो लोग उस पर विश्वास न करें !
- ✓ "यहाँ लोग अपनी गलती नहीं मानते ! किसी को अपना कैसे मानेंगे !!"
- ✓ "ज़िन्दगी लम्बी होने की बजाय ! महान होनी ज़रूरी है !!"
- ✓ "इंसान को बोलना सिखने में दो साल लग जाते हैं ! लेकिन क्या बोलना है ये सिखने में पूरी ज़िन्दगी निकल जाती !!"
- ✓ "मोर नाचते हुए भी रोता है और हंस मरते हुए भी गाता है !
  ये ज़िन्दगी को फलसफा है दुःख वाली रात नींद नहीं आती और ख़ुशी वाली रात कौन सोता है !!"
- ✓ "जब तक यह जान पाते है कि ज़िन्दगी क्या है ! तब तक यह आधी ख़त्म हो चुकी होती है !!"
- ✓ "अपना ज़िन्दगी पर कभी घमंड हो तो एक चक्कर क़ब्रिस्तान का लगाकर आ जाना !न जाने तुम जैसे कितनो को खुदा ने मिट्टी से बनाकर मिट्टी में मिला दिया !!"
- ✓ "ज़रूरत से ज़्यादा अच्छे बनोंगे तो ! लोग नींबू समझकर निचोड़ देंगे !!"
- ✓ "अगर आप सही हो तो कुछ भी साबित करने की कोशिश मत करो !
  बस सही बने रहो गवाही वक़्त खुद देगा !!"
- ✓ "हमेशा समझौता करना सीखो, क्योंकि थोड़ा सा झुक जाना ! किसी रिश्ते का हमेशा के लिए खो देने से बेहतर है !!"
- ✓ "एक बात ज़िन्दगी भर याद रखिये ! आपका ख़ुश रहना ही आपका बुरा चाहने वालो के लिए सबसे बड़ी सज़ा है !!"
- ✓ जल्दी सोना और जल्दी उठना इंसान को स्वस्थ ,समृद्ध और बुद्धिमान बनाता है.
- ✓ कभी भी जो काम आप आज कर सकते हैं उसे कल पर मत टालिए.
- ✓ ज्ञान शक्ति है.
- ✓ भगवान उसकी मदद करता है जो खुद अपनी मदद करता है.
- ✓ आपकी इज़ाज़त के बिना कोई आपको नीचा नहीं दिखा सकता है.
- ✓ यदि आप सच बोलते हैं तो आपको कुछ याद रखने की ज़रुरत नहीं रहती.
- ✓ उस काम का चयन कीजिये जिसे आप पसंद करते हों, फिर आप पूरी ज़िन्दगी एक दिन भी काम नहीं करंगे.
- ✓ तीन चीजें अधिक समय तक नहीं छुप सकती, सूरज, चंद्रमा और सत्य.
- ✓ जीवन की लम्बाई नहीं , गहराई मायने रखती है.
- ✓ जीतने वाले अलग चीजें नहीं करते, वो चीजों को अलग तरह से करते हैं.

- ✓ एक जलते हुए दीपक से हजारों दीपक रौशन किए जा सकते है, फिर भी उस दीपक की रौशनी कम नहीं होती हैं। उसी तरह खुशियाँ भी बाँटने से बढ़ती है, कम नहीं होती
- ✓ इंसान के भीतर ही शांति का वास होता है, इसे बाहर ना खोजे।
- ✓ शरीर को स्वस्थ रखना हमारा कर्त्तव्य है, नहीं तो हम अपने दिमाग को स्वस्थ और मजबूत नहीं रख पाएंगे I "स्वास्थ्य के बिना जीवन जीवन नहीं होता, बस थकान और पीड़ा होती है- जो मृत्यु के समान है।"
- ✓ इस पूरी दुनिया में इतना अन्धकार नहीं है कि वो एक छोटे से दीपक के प्रकाश को मिटा सके।
- ✓ नफरत से नफरत कभी खत्म नहीं हो सकती। नफरत को केवल प्यार द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। यह एक प्राकृतिक सत्य है। अगर आप वाकई में अपने आप से प्यार करते है, तो आप कभी भी दूसरों को दु:ख नहीं पहुंचा सकते।
- ✓ क्रोधित रहना, जलते कोयले को किसी दूसरे पर फेंकने की इच्छा से पकड़े रहने के समान है। यह सबसे पहले खुद को ही जलाता है।
- ✓ मंजिल तक पहुँचने से ज्यादा महत्वपूर्ण, मंजिल तक की यात्रा अच्छे से करना होता है।
- ✓ आप चाहें जितनी किताबें पढ़ लें, कितने भी अच्छे प्रवचन सुन लें उनका कोई फायदा नहीं होगा, जब तक कि आप उनको अपने जीवन में नहीं अपनाते। हजारों शब्दों से अच्छा वो एक शब्द होता हैं जो शांति लाता है।
- ✓ न अतीत की स्मृतियों में अटके रहें, न भविष्य की कल्पना में। मन को तो बस वर्तमान पर एकाग्र रखना चाहिए I
- ✓ हजारों लड़ाइयाँ जीतने से अच्छा होगा कि तुम स्वयं पर विजय हासिल कर लो। फिर जीत हमेशा तुम्हारी होगी। इसे तुमसे कोई नहीं छीन सकता, न देवता और न दानव।
- ✓ सत्यवाणी ही अमतवाणी है, सत्यवाणी ही सनातन धर्म है।
- ✓ संतोष सबसे बड़ा धन है, वफादारी सबसे बड़ा संबंध है और स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है।
- ✓ इच्छाओं का कभी अंत नहीं होता। आपकी एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि दूसरी इच्छा जन्म ले लेती है।
- ✓ किसी बात पर इसलिए विश्वास मत कर लेना कि उसे तुमने किताब में पढ़ी है। न इसलिए विश्वास करना कि ऐसा किसीने या मैंने कहा है। केवल तब विश्वास करना जब यह तुम्हारे तर्क और सहज बुद्धि से प्रमाणित हो जाए।
- ✓ ज्ञान की प्राप्ति खुद से प्रयास से ही संभव है, दूसरों पर निर्भरता व्यर्थ है।
- ✓ मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। मनुष्य जैसा महसूस करता है वैसी ही चीजों को वह अपनी तरफ आकर्षित करता है, और वह जैसी कल्पना करता है वैसी ही चीजों को निर्मित करता है।
- ✓ सत्य के मार्ग पर मनुष्य दो ही गलतियां करता है- पहली यह, कि वह मार्ग पर आखिर तक चला नहीं; दूसरी यह, कि उसने चलने की शुरुआत नहीं की।
- ✓ ध्यान से ज्ञान प्रकट होता है। ध्यान का अभाव ही अज्ञान का कारण है।
- ✓ प्रत्येक कार्य को इन चरणों से गुजरना पड़ता है – उपहास, विरोध और फिर स्वीकृति। जो लोग अपने समय से पहले सोचते हैं, उन्हें गलत समझा जाता है।
- ✓ ब्रह्मांड में सभी शक्तियां पहले से ही हमारी हैं। यह हम हैं जिन्होंने हमारी आंखों के सामने हाथ रखा है और रोते हुए कहा कि यह अंधेरा है। भगवान ने मुझे वह सब कुछ नहीं दिया जो मैं चाहता था। लेकिन, उसने मुझे वह सब कुछ दिया जिसकी मुझे जरूरत थी!
- ✓ एकमात्र धर्म जिसे सिखाया जाना चाहिए वह निर्भयता का धर्म है। या तो इस दुनिया में या धर्म की दुनिया में, यह सच है कि डर पतन और पाप का निश्चित कारण है। यह भय है जो दुख लाता है, भय जो

मृत्यु लाता है, भय जो बुराई को जन्म देता है। और क्या डर का कारण बनता है? हमारे अपने स्वभाव की अनदेखी।

- ✓ अपने जीवन में जोखिम लो। यदि आप जीतते हैं, तो आप नेतृत्व कर सकते हैं! यदि आप हारते हैं, तो आप मार्गदर्शन कर सकते हैं!
- ✓ मानव मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है। जितना अधिक ध्यान केंद्रित किया जाता है उतना ही अधिक शक्ति को एक बिंदु पर सहन करने के लिए लाया जाता है Iदुनिया ने जो भी ज्ञान प्राप्त किया है वह सभी ज्ञान मन से आता है। ब्रह्मांड का अनंत पुस्तकालय हमारे अपने दिमाग में है। कस्तूरी मृग उस गंध के स्रोत को खोजता रहता है, जबकि वो गंध स्वयं उसमें से आती हैं।
- ✓ एक विचार लो। उस एक विचार को अपना जीवन बना लो, उसका सपना देखो, उसके बारे में सोचो, उस विचार पर जियो। मस्तिष्क, शरीर, मांसपेशियों, नसों, आपके शरीर के प्रत्येक भाग को उस विचार से भर जाने दें. और बस हर अन्य विचार को अकेला छोड़ दें। यह सफलता का मार्ग है, और इस तरह महान दिग्गज बनते हैं। सारी शक्ति तुम्हारे भीतर है। आप कुछ भी और सब कुछ कर सकते हैं। उस पर विश्वास करो, यह मत मानो कि तुम कमजोर हो। विश्वास न करें कि आप आधे पागल हैं I हम वही हैं जो हमारे विचारों ने हमें बनाया है। इसलिए आप जो सोचते हैं उसका ख्याल रखें। शब्द गौण हैं। विचार रहते हैं, वे दूर तक यात्रा करते हैं।
- ✓ आपको अंदर से बाहर की तरफ बढ़ना होगा। आपको कोई नहीं सिखा सकता,
कोई भी आपको आध्यात्मिक नहीं बना सकता है। कोई दूसरा शिक्षक नहीं है, बल्कि आपकी अपनी आत्मा है। उठो, जागो, तब तक नहीं रुकें जब तक लक्ष्य पूरा न हो जाए। एक समय में एक काम करो। और इसे करते समय, अपनी पूरी आत्मा को इसमें शामिल करने के लिए सभी को छोड़ दें।
- ✓ दिल और दिमाग के बीच संघर्ष में, अपने दिल का पालन करें।
- ✓ आप ईश्वर में तब तक विश्वास नहीं कर सकते जब तक आप खुद पर विश्वास नहीं करते।
- ✓ वह नास्तिक है जो खुद पर विश्वास नहीं करता है। पुराने धर्मों ने कहा कि वह एक नास्तिक था जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता था। नया धर्म कहता है कि वह एक नास्तिक है जो खुद पर विश्वास नहीं करता है।
- ✓ मन की शक्तियाँ सूर्य की किरणों के समान हैं। जब वे केंद्रित होते हैं, तो वे रोशनी करते हैं।
- ✓ मंदिर वही पहुंचता है जो धन्यवाद देने जाता हैं, मांगने नहीं।
- ✓ तीर्थ करने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। सबसे अच्छा और बड़ा तीर्थ आपका अपना मन है, जिसे विशेष रूप से शुद्ध किया गया हो।
- ✓ एक सच यह भी है की लोग आपको उसी वक़्त तक याद करते है जब तक सांसें चलती हैं। सांसों के रुकते ही सबसे क़रीबी रिश्तेदार, दोस्त, यहां तक की पत्नी भी दूर चली जाती है।
- ✓ सभी धर्म समान है। महत्वपूर्ण बात यह है कि छत पर पहुंचने के लिए आप पत्थर की सीढ़ियों से, लकड़ी की सीढ़ियों से, बांस की सीढ़ियों से या रस्सी से पहुंचा सकते हैं। आप बांस के खंभे से भी चढ़ सकते हैं। ईश्वर को सभी रास्तों से महसूस किया जा सकता है।
- ✓ हम महानता के करीब तभी आ सकते हैं जब हम विनम्रता में महान हों।
- ✓ अकेले फूल को कई काँटों से ईर्ष्या करने की जरूरत नहीं होती
- ✓ चंद्रमा अपना प्रकाश संपूर्ण आकाश में फैलाता है परंतु अपना कलंक अपने पास ही रखता है।
- ✓ मैं यह कभी नहीं देखता कि क्या किया गया है; मैं केवल देखता हूं कि क्या किया जाना बाकी है।
- ✓ शास्त्र अनुसार निंदा सुनाने वाला भी उतना ही दोषी है, जितना की निंदा करने वाला।

- ✓ आप जो भी करें लेकिन होता वही है जो ईश्वर चाहते हैं। इसलिए आप वो करें जो ईश्वर चाहते हैं, फिर वही मिलेगा जो आप चाहते हैं।
- ✓ आप जो करना चाहते हैं वो जरूर करिये, यह मत सोचिये की लोग क्या कहेंगे, क्योंकि लोग तो तब भी कहेंगे जब आप कुछ नहीं करेगें।
- ✓ माफी मांगने का यह अर्थ नहीं की आप गलत है और सामने वाला सही ! इसका अर्थ है की आप रिश्तों की कीमत जानते हैं और निभाने की काबीलियत रखते हैं।
- ✓ कहा जाता है कि धर्म के बिना इंसान लगाम के बिना घोड़े की तरह है।
- ✓ वृक्षों को देखो, पक्षियों को देखो, बादलों में देखो, सितारों को देखो ...और अगर आपके पास आँखें है तो आप यह देखने में सक्षम होगे कि पूरा अस्तित्व आनंदमय है। सब कुछ बस खुश है। पेड़ बिना किसी कारण के खुश हैं ; वे प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बनने नहीं जा रहे हैं और वे अमीर भी नहीं बनने जा रहे हैं और ना ही कभी उनके पास बैंक बैलेंस होगा...फूलों को देखिये – बिना किसी कारण के कितने खुश और अविश्वसनीय है।
- ✓ अगर आप बिना प्यार के काम करते हैं, तो आप गुलाम की तरह काम कर रहे हैं। जब आप प्यार से काम करते हैं, तो आप एक सम्राट की तरह काम करते हैं। तुम्हारा काम ही तुम्हारी ख़ुशी हैं, तुम्हारा काम ही तुम्हारा नृत्य है। अपने छोटे-छोटे कामों में भी दिल, दिमाग और आत्मा सब कुछ लगा दो। यही सफलता का राज है।
- ✓ उस रास्ते पर मत चलो, जिस पर डर तुम्हे ले जाये, बल्कि उस रास्ते पर चलो, जिस पर प्रेम ले जाये, उस रास्ते पर चलो, जिस पर ख़ुशी तुम्हे ले जाये

॥ श्री कृष्णा शरणम ममः ॥

भारत के महान संत / योगी जिन्होनें श्री कृष्ण की भक्ति की

संत कबीर के प्रसिद्द दोहे और उनके अर्थ

गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो मिलाय॥
भावार्थ: कबीर दास जी इस दोहे में कहते हैं कि अगर हमारे सामने गुरु और भगवान दोनों एक साथ खड़े हों तो आप किसके चरण स्पर्श करेंगे? गुरु ने अपने ज्ञान से ही हमें भगवान से मिलने का रास्ता बताया है इसलिए गुरु की महिमा भगवान से भी ऊपर है और हमें गुरु के चरण स्पर्श करने चाहिए।

ऐसी वाणी बोलिए मन का आप खोये ।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि इंसान को ऐसी भाषा बोलनी चाहिए जो सुनने वाले के मन को बहुत अच्छी लगे। ऐसी भाषा दूसरे लोगों को तो सुख पहुँचाती ही है, इसके साथ खुद को भी बड़े आनंद का अनुभव होता है।

बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि खजूर का पेड़ बेशक बहुत बड़ा होता है लेकिन ना तो वो किसी को छाया देता है और फल भी बहुत दूरऊँचाई पे लगता है। इसी तरह अगर आप किसी का भला नहीं कर पा रहे तो ऐसे बड़े होने से भी कोई फायदा नहीं है।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो मन देखा आपना, मुझ से बुरा न कोय ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि मैं सारा जीवन दूसरों की बुराइयां देखने में लगा रहा लेकिन जब मैंने खुद अपने मन में झाँक कर देखा तो पाया कि मुझसे बुरा कोई इंसान नहीं है। मैं ही सबसे स्वार्थी और बुरा हूँ

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दु:ख काहे को होय ।
भावार्थ: दु:ख में हर इंसान ईश्वर को याद करता है लेकिन सुख में सब ईश्वर को भूल जाते हैं। अगर सुख में भी ईश्वर को याद करो तो दु:ख कभी आएगा ही नहीं।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि हमारे पास समय बहुत कम है, जो काम कल करना है वो आज करो, और जो आज करना है वो अभी करो, क्यूंकि पलभर में प्रलय जो जाएगी फिर आप अपने काम कब करेंगे।

ज्यों तिल माहि तेल है, ज्यों चकमक में आग ।
तेरा साईं तुझ ही में है, जाग सके तो जाग ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं जैसे तिल के अंदर तेल होता है, और आग के अंदर रौशनी होती है ठीक वैसे ही हमारा ईश्वर हमारे अंदर ही विद्धमान है, अगर ढूंढ सको तो ढूढ लो।

जहाँ दया तहा धर्म है, जहाँ लोभ वहां पाप ।
जहाँ क्रोध तहा काल है, जहाँ क्षमा वहां आप ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि जहाँ दया है वहीँ धर्म है और जहाँ लोभ है वहां पाप है, और जहाँ क्रोध है वहां सर्वनाश है और जहाँ क्षमा है वहाँ ईश्वर का वास होता है।

जिन घर साधू न पुजिये, घर की सेवा नाही ।
ते घर मरघट जानिए, भुत बसे तिन माही ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि जिस घर में साधु और सत्य की पूजा नहीं होती, उस घर में पाप बसता है। ऐसा घर तो मरघट के समान है जहाँ दिन में ही भूत प्रेत बसते हैं।

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उडाय।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि एक सज्जन पुरुष में सूप जैसा गुण होना चाहिए। जैसे सूप में अनाज के दानों को अलग कर दिया जाता है वैसे ही सज्जन पुरुष को अनावश्यक चीज़ों को छोड़कर केवल अच्छी बातें ही ग्रहण करनी चाहिए।

पाछे दिन पाछे गए हरी से किया न हेत ।
अब पछताए होत क्या, चिडिया चुग गई खेत ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि बीता समय निकल गया, आपने ना ही कोई परोपकार किया और नाही ईश्वर का ध्यान किया। अब पछताने से क्या होता है, जब चिड़िया चुग गयी खेत।

जब मैं था तब हरी नहीं, अब हरी है मैं नाही ।
सब अँधियारा मिट गया, दीपक देखा माही ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि जब मेरे अंदर अहंकारमैं था, तब मेरे ह्रदय में हरीईश्वर का वास नहीं था। और अब मेरे ह्रदय में हरीईश्वर का वास है तो मैंअहंकार नहीं है। जब से मैंने गुरु रूपी दीपक को पाया है तब से मेरे अंदर का अंधकार खत्म हो गया है।

नहाये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाए ।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाए ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि आप कितना भी नहा धो लीजिए, लेकिन अगर मन साफ़ नहीं हुआ तो उसे नहाने का क्या फायदा, जैसे मछली हमेशा पानी में रहती है लेकिन फिर भी वो साफ़ नहीं होती, मछली में तेज बदबू आती है।

कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर ।
जो पर पीर न जानही, सो का पीर में पीर ।

भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि जो इंसान दूसरे की पीड़ा और दु:ख को समझता है वही सज्जन पुरुष है और जो दूसरे की पीड़ा ही ना समझ सके ऐसे इंसान होने से क्या फायदा।

कबीर सुता क्या करे, जागी न जपे मुरारी ।
एक दिन तू भी सोवेगा, लम्बे पाँव पसारी ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि तू क्यों हमेशा सोया रहता है, जाग कर ईश्वर की भक्ति कर, नहीं तो एक दिन तू लम्बे पैर पसार कर हमेशा के लिए सो जायेगा।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि लोग बड़ी से बड़ी पढाई करते हैं लेकिन कोई पढ़कर पंडित या विद्वान नहीं बन पाता। जो इंसान प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ लेता है वही सबसे विद्वान् है।

शीलवंत सबसे बड़ा सब रतनन की खान ।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ।
भावार्थ: शांत और शीलता सबसे बड़ा गुण है और ये दुनिया के सभी रत्नों से महंगा रत्न है। जिसके पास शीलता है उसके पास मानों तीनों लोकों की संपत्ति है।

साईं इतना दीजिये, जामे कुटुंब समाये ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि हे प्रभु मुझे ज्यादा धन और संपत्ति नहीं चाहिए, मुझे केवल इतना चाहिए जिसमें मेरा परिवार अच्छे से खा सके। मैं भी भूखा ना रहूं और मेरे घर से कोई भूखा ना जाये।

माखी गुड में गडी रहे, पंख रहे लिपटाए ।
हाथ मेल और सर धुनें, लालच बुरी बलाय ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि मक्खी पहले तो गुड़ से लिपटी रहती है। अपने सारे पंख और मुंह गुड़ से चिपका लेती है लेकिन जब उड़ने प्रयास करती है तो उड़ नहीं पाती तब उसे अफ़सोस होता है। ठीक वैसे ही इंसान भी सांसारिक सुखों में लिपटा रहता है और अंत समय में अफ़सोस होता है।

ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँची न होय ।
सुवर्ण कलश सुरा भरा, साधू निंदा होय ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि ऊँचे कुल में जन्म तो ले लिया लेकिन अगर कर्म ऊँचे नहीं है तो ये तो वही बात हुई जैसे सोने के लोटे में जहर भरा हो, इसकी चारों ओर निंदा ही होती है।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा, ॠतु आए फल होय ।
भावार्थ: कबीर दास जी मन को समझाते हुए कहते हैं कि हे मन! दुनिया का हर काम धीरे धीरे ही होता है। इसलिए सब्र करो। जैसे माली चाहे कितने भी पानी से बगीचे को सींच ले लेकिन वसंत ॠतू आने पर ही फूल खिलते हैं।

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर ।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर ।
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि मायाधन और इंसान का मन कभी नहीं मरा, इंसान मरता है शरीर बदलता है लेकिन इंसान की इच्छा और ईर्ष्या कभी नहीं मरती।

मांगन मरण समान है, मत मांगो कोई भीख,
मांगन से मरना भला, ये सतगुरु की सीख
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि मांगना तो मृत्यु के समान है, कभी किसी से भीख मत मांगो। मांगने से भला तो मरना है।

कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हँसे हम रोये,
ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये
भावार्थ: कबीर दास जी कहते हैं कि जब हम पैदा हुए थे उस समय सारी दुनिया खुश थी और हम रो रहे थे। जीवन में कुछ ऐसा काम करके जाओ कि जब हम मरें तो दुनियां रोये और हम हँसे।

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ,
मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ
भावार्थ: जो लोग लगातार प्रयत्न करते हैं, मेहनत करते हैं वह कुछ ना कुछ पाने में जरूर सफल हो जाते हैं। जैसे कोई गोताखोर जब गहरे पानी में डुबकी लगाता है तो कुछ ना कुछ लेकर जरूर आता है लेकिन जो लोग डूबने के भय से किनारे पर ही बैठे रहे हैं उनको जीवन पर्यन्त कुछ नहीं मिलता।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप,
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप
भावार्थ: कबीरदास जी कहते हैं कि ज्यादा बोलना अच्छा नहीं है और ना ही ज्यादा चुप रहना भी अच्छा है जैसे ज्यादा बारिश अच्छी नहीं होती लेकिन बहुत ज्यादा धूप भी अच्छी नहीं है।

संत ना छाडै संतई, जो कोटिक मिले असंत ।
चन्दन भुवंगा बैठिया, तऊ सीतलता न तजंत ।
भावार्थ: सज्जन पुरुष किसी भी परिस्थिति में अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते चाहे कितने भी दुष्ट पुरुषों से क्यों ना घिरे हों। ठीक वैसे ही जैसे चन्दन के वृक्ष से हजारों सर्प लिपटे रहते हैं लेकिन वह कभी अपनी शीतलता नहीं छोड़ता।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर,
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।
भावार्थ: कोई व्यक्ति लम्बे समय तक हाथ में लेकर मोती की माला तो घुमाता है, पर उसके मन का भाव नहीं बदलता, उसके मन की हलचल शांत नहीं होती। कबीर की ऐसे व्यक्ति को सलाह है कि हाथ की इस माला को फेरना छोड़ कर मन के मोतियों को बदलो या फेरो।

कबीरा खड़ा बाज़ार में, मांगे सबकी खैर,
ना काहू से दोस्ती,न काहू से बैर।

भावार्थ: इस संसार में आकर कबीर अपने जीवन में बस यही चाहते हैं कि सबका भला हो और संसार में यदि किसी से दोस्ती नहीं तो दुश्मनी भी न हो !

जो उग्या सो अन्तबै, फूल्या सो कुमलाहीं।
जो चिनिया सो ढही पड़े, जो आया सो जाहीं।

भावार्थ: इस संसार का नियम यही है कि जो उदय हुआ है,वह अस्त होगा। जो विकसित हुआ है वह मुरझा जाएगा। जो चिना गया है वह गिर पड़ेगा और जो आया है वह जाएगा।

जिहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहीं नाम।
ते नर या संसार में , उपजी भए बेकाम ।

भावार्थ: जिनके ह्रदय में न तो प्रीति है और न प्रेम का स्वाद, जिनकी जिह्वा पर राम का नाम नहीं रहता – वे मनुष्य इस संसार में उत्पन्न हो कर भी व्यर्थ हैं। प्रेम जीवन की सार्थकता है। प्रेम रस में डूबे रहना जीवन का सार है।

सातों सबद जू बाजते घरि घरि होते राग ।
ते मंदिर खाली परे बैसन लागे काग ।

भावार्थ: कबीर कहते हैं कि जिन घरों में सप्त स्वर गूंजते थे, पल पल उत्सव मनाए जाते थे, वे घर भी अब खाली पड़े हैं – उनपर कौए बैठने लगे हैं। हमेशा एक सा समय तो नहीं रहता ! जहां खुशियाँ थी वहां गम छा जाता है जहां हर्ष था वहां विषाद डेरा डाल सकता है – यह इस संसार में होता है !।

तेरा संगी कोई नहीं सब स्वारथ बंधी लोइ ।
मन परतीति न उपजै, जीव बेसास न होइ ।

भावार्थ: तेरा साथी कोई भी नहीं है। सब मनुष्य स्वार्थ में बंधे हुए हैं, जब तक इस बात की प्रतीति – भरोसा – मन में उत्पन्न नहीं होता तब तक आत्मा के प्रति विशवास जाग्रत नहीं होता। भावार्थात वास्तविकता का ज्ञान न होने से मनुष्य संसार में रमा रहता है जब संसार के सच को जान लेता है – इस स्वार्थमय सृष्टि को समझ लेता है – तब ही अंतरात्मा की ओर उन्मुख होता है – भीतर झांकता है !

करता था तो क्यूं रहया, जब करि क्यूं पछिताय ।
बोये पेड़ बबूल का, अम्ब कहाँ ते खाय ।

भावार्थ: यदि तू अपने को कर्ता समझता था तो चुप क्यों बैठा रहा? और अब कर्म करके पश्चात्ताप क्यों करता है? पेड़ तो बबूल का लगाया है – फिर आम खाने को कहाँ से मिलें ?

मूरख संग न कीजिए ,लोहा जल न तिराई।
कदली सीप भावनग मुख, एक बूँद तिहूँ भाई ।

भावार्थ: मूर्ख का साथ मत करो।मूर्ख लोहे के सामान है जो जल में तैर नहीं पाता डूब जाता है । संगति का प्रभाव इतना पड़ता है कि आकाश से एक बूँद केले के पत्ते पर गिर कर कपूर, सीप के अन्दर गिर कर मोती और सांप के मुख में पड़कर विष बन जाती है।

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तथ कह्यौ गयानी ।

भावार्थ: जब पानी भरने जाएं तो घडा जल में रहता है और भरने पर जल घड़े के अन्दर आ जाता है इस तरह देखें तो – बाहर और भीतर पानी ही रहता है – पानी की ही सत्ता है। जब घडा फूट जाए तो उसका जल जल में ही मिल जाता है – अलगाव नहीं रहता – ज्ञानी जन इस तथ्य को कह गए हैं ! आत्मा-परमात्मा दो नहीं एक हैं – आत्मा परमात्मा में और परमात्मा आत्मा में विराजमान है। अंतत: परमात्मा की ही सत्ता है – जब देह विलीन होती है – वह परमात्मा का ही अंश हो जाती है – उसी में समा जाती है। एकाकार हो जाती है।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।
कहे कबीर हरि पाइए मन ही की परतीत ।
भावार्थ: जीवन में जय पराजय केवल मन की भावनाएं हैं।यदि मनुष्य मन में हार गया – निराश हो गया तो पराजय है और यदि उसने मन को जीत लिया तो वह विजेता है। ईश्वर को भी मन के विश्वास से ही पा सकते हैं – यदि प्राप्ति का भरोसा ही नहीं तो कैसे पाएंगे?

कबीर हमारा कोई नहीं हम काहू के नाहिं ।
पारै पहुंचे नाव ज्यौं मिलिके बिछुरी जाहिं ।
भावार्थ: इस जगत में न कोई हमारा अपना है और न ही हम किसी के ! जैसे नांव के नदी पार पहुँचने पर उसमें मिलकर बैठे हुए सब यात्री बिछुड़ जाते हैं वैसे ही हम सब मिलकर बिछुड़ने वाले हैं। सब सांसारिक सम्बन्ध यहीं छूट जाने वाले हैं

देह धरे का दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से अज्ञानी भुगते रोय।
भावार्थ: देह धारण करने का दंड – भोग या प्रारब्ध निश्चित है जो सब को भुगतना होता है। अंतर इतना ही है कि ज्ञानी या समझदार व्यक्ति इस भोग को या दुःख को समझदारी से भोगता है निभाता है संतुष्ट रहता है जबकि अज्ञानी रोते हुए – दुखी मन से सब कुछ झेलता है !

जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय।
भावार्थ: 'आहारशुध्दी:' जैसे खाय अन्न, वैसे बने मन्न लोक प्रचलित कहावत है और मनुष्य जैसी संगत करके जैसे उपदेश पायेगा, वैसे ही स्वयं बात करेगा। अतएव आहाविहार एवं संगत ठीक रखो।

तुलसीदासजी का ये कहना हैं कि ………………….

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार |
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ||
अर्थ: तुलसीदासजी का ये कहना हैं कि हे मनुष्य ,यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहते हो तो मुखरूपी द्वार की जीभरुपी देहलीज़ पर राम-नामरूपी मणिदीप को रखो

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर |
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ||
अर्थ: गोस्वामीजी कहते हैं कि सुंदर वेष देखकर न केवल मूर्ख अपितु चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं |सुंदर मोर को ही देख लो उसका वचन तो अमृत के समान है लेकिन आहार साँप का है

तुलसी नर का क्या बड़ा, समय बड़ा बलवान|
भीलां लूटी गोपियाँ, वही अर्जुन वही बाण||
अर्थ: तुलसीदास जी का कहना हैं, समय बड़ा बलवान होता है, वो समय ही है जो व्यक्ति को छोटा या बड़ा बनाता है| जैसे एक बार जब महान धनुर्धर अर्जुन का समय ख़राब हुआ तो वह भीलों के हमले से गोपियों की रक्षा नहीं कर पाए|

तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुँ ओर |
बसीकरन इक मंत्र है परिहरू बचन कठोर ||
अर्थ: तुलसीदासजी कहते हैं कि मीठे वचन सब ओर सुख फैलाते हैं |किसी को भी   वश में करने का ये एक मन्त्र होते हैं इसलिए मानव को चाहिए कि कठोर वचन छोडकर मीठा बोलने का प्रयास करे |

काम क्रोध मद लोभ की, जौ लौं मन में खान|
तौ लौं पण्डित मूरखौं, तुलसी एक समान||
अर्थ: तुलसीदास जी का कहना यह है की , जब तक व्यक्ति के मन में काम, गुस्सा, अहंकार, और लालच भरे हुए होते हैं तब तक एक ज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति में कोई भेद नहीं रहता, दोनों एक जैसे ही हो जाते हैं|

लसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन|
अब तो दादुर बोलिहं, हमें पूछिह कौन||
अर्थ: गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि, बारिश के मौसम में मेंढकों के टर्राने की आवाज इतनी अधिक हो जाती है कि कोयल की मीठी बोली उस कोलाहल में दब जाती है| इसलिए कोयल मौन धारण कर लेती है| यानि जब मेंढक रुपी धूर्त व कपटपूर्ण लोगों का बोलबाला हो जाता है तब समझदार व्यक्ति चुप ही रहता है और व्यर्थ ही अपनी उर्जा नष्ट नहीं करता|

तुलसी इस संसार में, भांति भांति के लोग|
सबसे हस मिल बोलिए, नदी नाव संजोग||

अर्थ: तुलसीदास जी कहते हैं, इस दुनिय में तरह-तरह के लोग रहते हैं, यानी हर तरह के स्वभाव और व्यवहार वाले लोग रहते हैं, आप हर किसी से अच्छे से मिलिए और बात करिए| जिस प्रकार नाव नदी से मित्रता कर आसानी से उसे पार कर लेती है वैसे ही अपने अच्छे व्यवहार से आप भी इस भव सागर को पार कर लेंगे|

तुलसी भरोसे राम के, निर्भय हो के सोए|
अनहोनी होनी नही, होनी हो सो होए||
अर्थ: ईश्वर पर भरोसा करिए और बिना किसी भय के चैन की नींद सोइए| कोई अनहोनी नहीं होने वाली और यदि कुछ अनिष्ट होना ही है तो वो हो के रहेगा इसलिए व्यर्थ की चिंता छोड़ अपना काम करिए|

आवत ही हरषै नहीं नैनन नहीं सनेह|
तुलसी तहां न जाइये कंचन बरसे मेह||
अर्थ: गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस जगह आपके जाने से लोग प्रसन्न नहीं होते हों, जहाँ लोगों की आँखों में आपके लिए प्रेम या स्नेह ना हो, वहाँ हमें कभी नहीं जाना चाहिए, चाहे वहाँ धन की बारिश ही क्यों न हो रही हो|

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान |
तुलसी दया न छांड़िए ,जब लग घट में प्राण ||
अर्थ: मनुष्य को दया कभी नहीं छोड़नी चाहिए क्योंकि दया ही धर्म का मूल है और इसके विपरीत अहंकार समस्त पापों की जड़ होता है|

तुलसी साथी विपत्ति के, विद्या विनय विवेक|
साहस सुकृति सुसत्यव्रत, राम भरोसे एक||
अर्थ: किसी विपत्ति यानि किसी बड़ी परेशानी के समय आपको ये सात गुण बचायेंगे: आपका ज्ञान या शिक्षा, आपकी विनम्रता, आपकी बुद्धि, आपके भीतर का साहस, आपके अच्छे कर्म, सच बोलने की आदत और ईश्वर में विश्वास|

करम प्रधान विस्व करि राखा,
जो जस करई सो तस फलु चाखा
अर्थ :- तुलसीदासजी का कहने का यह अर्थ है की ईश्वर ने इस संसार में कर्म को महत्ता दी है अर्थात जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भी भोगना पड़ेगा

बिना तेज के पुरुष की अवशि अवज्ञा होय,
आगि बुझे ज्यों राख की आप छुवै सब कोय |
अर्थ :- तेजहीन व्यक्ति की बात को कोई भी व्यक्ति महत्व नहीं देता है, उसकी आज्ञा का पालन कोई नहीं करता है. ठीक वैसे ही जैसे, जब राख की आग बुझ जाती हैं, तो उसे हर कोई छुने लगता है |

महान कवि सूरदास जी के दोहे भक्ति काल से ही समाज में बेहद प्रचलित रहे हैं। अपने जीवन काल में सूरदास जी ने अधिकतर भगवान श्री कृष्ण के जीवन के विषय में साहित्य की रचना की है जिनमें से कुछ प्रमुख दोहें निम्नलिखित दिए गए हैं –

- **मो सम कौन कुटिल खल कामी।**
  जेहिं तनु दियौ ताहिं बिसरायौ, ऐसौ नोनहरामी॥
  भरि भरि उदर विषय कों धावौं, जैसे सूकर ग्रामी।
  हरिजन छांड़ि हरी-विमुखन की निसदिन करत गुलामी॥
  पापी कौन बड़ो है मोतें, सब पतितन में नामी।
  सूर, पतित कों ठौर कहां है, सुनिए श्रीपति स्वामी॥

अर्थ- प्रस्तुत सूरदास के दोहे में सुरदासजी अपने मन के बुराइयों को उजागर करते हुए, भगवान श्री कृष्ण से कृपा करने की याचना करते हैं। कवि कहते हैं कि संसार में मेरे जैसा कोई भी दूसरा कुटिल, दुष्ट और पापी नहीं है। मोह माया के बंधन में जकड़ा हुआ मैं इस शरीर को ही सुख समझ बैठा हूं। मैं नमक हराम हूं, जो अपने आराध्य अपने रचयिता को ही भूल गया। मैं गांव के कचड़ों में रह रहे सूअरों की भांति अपने जीवन में वासनाओं और बुरी आदतों में जकड़ा हुआ हूं। मैं पापी हूं क्योंकि सज्जनों और संतों की संगति छोड़कर धूर्तों की गुलामी करता हूं। भला मुझसे अधिक पापी और कौन हो सकता है? सूरदास जी भगवान श्री कृष्ण के समक्ष अपने बुराइयों को उजागर करके उनसे आश्रय की विनती करते हैं।

- **जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै**
  जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
  यह ब्योपार तिहारो ऊधौ, ऐसोई फिरि जैहै॥
  यह जापे लाये हौ मधुकर, ताके उर न समैहै।
  दाख छांडि कैं कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै॥
  मूरी के पातन के कैना को मुकताहल दैहै।
  सूरदास, प्रभु गुनहिं छांड़िकै को निरगुन निरबैहै॥

अर्थ- ज्ञान का संदेश लेकर आए उधो को गोपियां कहती हैं कि हे उधो ज्ञान का प्रचार करने के उद्देश्य से जो तुम यहां आए हो तुम्हारा यह व्यापार यहां नहीं चलेगा तुम्हे वापस लौटना होगा। एक बात यह जान लो कि जिनका सौदा आप लेके आए हैं उन्हें यह बिल्कुल भी रास नहीं आएगा। आखिर तुम्ही बताओ कि कौन मूर्ख मीठे अंगूरों की जगह कड़वे नीम की निम्बौरी खाना पसंद करेगा। कौन है जो अनमोल मोती को मूली के पत्तों की जगह देगा। उपरोक्त से सूरदास जी का आशय है कि कौन साकार ईश्वर (भगवान श्री कृष्ण) को छोड़कर निराकार ब्रह्म की आराधना करेगा।

- **अबिगत गति कछु कहति न आवै।**
  ज्यों गुंगो मीठे फल की रस अन्तर्गत ही भावै।।
  परम स्वादु सबहीं जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
  मन बानी कों अगम अगोचर सो जाने जो पावै।।

रूप रैख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातों सूर सगुन लीला पदगावै।।

अर्थ – श्री कृष्ण के परम भक्त सूरदास जी इस रचना के माध्यम से यह कहते हैं कि इस संसार में कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें चाह कर भी दूसरों को नहीं समझाया जा सकता है। कुछ ऐसी चीजें जिन्हें केवल महसूस किया जा सकता है, इस प्रकार के आनंद को केवल हमारा मन ही समझ सकता है। अक्सर जिन चीजों से हमें परम आनंद की अनुभूति होती है, दूसरों के सामने वह कोई महत्व नहीं रखता। यदि किसी गूंगे को स्वादिष्ट मिठाई खिला दी जाए तो, मिष्ठान का स्वाद गूंगा चाह कर भी दूसरों को नहीं समझा सकता। उपरोक्त दोहे में सूरदास जी का आशय यह है कि सूरदास जी ने अपने पूरे जीवन में केवल श्री कृष्ण की ही गाथा गाई है। भगवान श्री कृष्ण के बाल लीला का वर्णन करते समय उन्हें जिस प्रकार के परम आनंद की अनुभूति होती है, उसे दूसरा कोई नहीं समझ सकता।

- **गुरू बिनु ऐसी कौन करै।**
  माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।
  भवसागर तै बूडत राखै, दीपक हाथ धरै।
  सूर स्याम गुरू ऐसौ समरथ, छिन मैं ले उधरे।।

अर्थ – कविवर भगवान श्री कृष्ण को अपना गुरु मानते हैं और गुरु की महिमा का महत्व बताते हुए सूरदास जी कहते हैं कि गुरु के बिना इस अंधकार में डूबे संसार से बाहर निकालने वाला दूसरा और कोई भी नहीं होता। अपने शिष्यों पर गुरु के अलावा ऐसी कृपा कौन कर सकता है इससे वे अपने कंठ में हार तथा मस्तक पर तिलक धारण कर सकें। संसार के मोह माया रूपी विशाल समुद्र से एक सच्चा गुरु अपने शिष्य को बचाता है। ज्ञान स्वरूप संपत्ति को गुरु अपने शिष्य को सौंपता हैं जिससे कि मानव कल्याण हो सके। ऐसे गुरु को सूरदास जी बार-बार नमन करते हैं। कवि कहते हैं कि उनके गुरु श्री कृष्ण ही उन्हें हर क्षण इस संसार सागर में उनकी नैया पार लगाते हैं।

- **हमारे निर्धन के धन राम।**
  चोर न लेत, घटत नहि कबहूॅं, आवत गढ़ैं काम।
  जल नहिं बूडत, अगिनि न दाहत है ऐसौ हरि नाम।
  बैकुंठनाम सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-धाम।।

अर्थ – सूरदास जी इस दोहे में कहते हैं कि इस सृष्टि में जिनका कोई नहीं होता उनके **श्रीराम हैं**। राम नाम एक ऐसा अनोखा खजाना है जिसे हर कोई प्राप्त कर सकता है। धन अथवा संपत्ति को एक बार खर्च करने पर वह कम हो जाता है, लेकिन राम नाम एक ऐसा अनमोल रत्न है जिसे कितने भी बार पुकारा जाए उसका महत्व कभी भी नहीं घटता। ऐसा अनमोल रत्न ना तो चोरों द्वारा चुराया जा सकता है, ना ही इसके मूल्य को घटाया जा सकता है। राम रूपी अनमोल रत्न ना तो गहरे पानी में डूबता है और ना ही आग में जलता है। अर्थात इस संसार में एक चीज सत्य है जिसे कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता वह है, राम नाम। सूरदास जी कहते हैं की समस्त संसार को सुख प्रदान करने वाले सुखों के भंडार अथवा राम नाम से उन्हें सुख पहुंचाता है।

- **हमारैं हरि हारिल की लकरी।**
  मन क्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
  जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह कान्ह जकरी।

सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ 'सूर' तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी।।

अर्थ – उधो जब गोपियों को योग विद्या का ज्ञान देते हैं तब गोपियां कृष्ण भक्ति के सामने योग विद्या को कड़वी ककड़ी के समान बताकर उसे अपने लिए अनावश्यक बताती हैं। जिस प्रकार हारिल पक्षी अपने पंजों में लकड़ी के लोभ के कारण हमेशा लकड़ी का टुकड़ा पकड़े रहता है, उसी प्रकार गोपियों की स्थिति भी हारिल पक्षी की भांति हो गई है जो कृष्ण नाम को अपने हृदय में संजोए बैठी हैं। दिन-रात, सोते-जागते, सभी स्थानों पर केवल कृष्ण ही नजर आते हैं। ऐसे में उन्हें योग के ज्ञान की आवश्यकता नहीं बल्कि वे केवल कृष्ण भक्ति में मगन रहना चाहती हैं।

- **मुखहिं बजावत बेनु**
  धनि यह बृंदावन की रेनु।
  नंदकिसोर चरावत गैयां मुखहिं बजावत बेनु।।
  मनमोहन को ध्यान धरै जिय अति सुख पावत चैन।
  चलत कहां मन बस पुरातन जहां कछु लेन न देनु।।
  इहां रहहु जहं जूठन पावहु ब्रज बासिनि के ऐनु।
  सूरदास ह्यां की सरवरि नहिं कल्पबृच्छ सुरधेनु।।

अर्थ: जिस पवित्र भूमि पर भगवान श्री कृष्ण ने जन्म लिया, उसकी गाथा गाते हुए सूरदास जी अपने इस दोहे में में व्रजभूमि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस धरती पर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गायों को चराते हैं, जहां वे बांसुरी बजाते हैं ऐसे स्वर्ग समान ब्रजभूमि की जितनी प्रशंसा की जाए उतना कम होगा। ब्रजभूमि में मन समस्त प्रकार के दुखों को भूलकर शांत हो जाता है। यहां भगवान श्री कृष्ण के स्मरण मात्र से मन में एक नई ऊर्जा का आगमन होता है। अपने ही मन को समझाते हुए सूरदास जी यह भी कहते हैं कि हे मन! तू इस माया रुपी संसार में यहां वहां क्यों भटकता है, तू केवल वृंदावन में रहकर अपने आराध्य श्री कृष्ण की स्तुति कर। केवल ब्रजभूमि में रहकर ब्रज वासियों के जूठे बर्तनों से जो कुछ भी अन्न प्राप्त हो उसे ग्रहण करके संतोष कर तथा श्री कृष्ण की आराधना करके अपना जीवन सार्थक कर। जहां स्वयं परमात्मा ने जन्म लिया हो ऐसी पवित्र भूमि की बराबरी स्वयं कामधेनु भी नहीं कर सकती हैं।

- **गाइ चरावन जैहौं**
  आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
  बृन्दावन के भांति भांति फल अपने कर मैं खेहौं।।
  ऐसी बात कहौ जनि बारे देखौ अपनी भांति।
  तनक तनक पग चलिहौ कैसें आवत ह्वै है राति।।
  प्रात जात गैया लै चारन घर आवत हैं सांझ।
  तुम्हारे कमल बदन कुम्हिलैहे रेंगत घामहि मांझ।।
  तेरी सौं मोहि घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक।
  सूरदास प्रभु कह्यो न मानत पर्यो अपनी टेक।।

अर्थ: उपरोक्त सूरदास के दोहे में भगवान श्री कृष्ण के बाल हठ का चित्रण किया गया है। अन्य ग्वालो को गायों को चराता देख एक दिन श्री कृष्ण अपनी मैया के समक्ष इस बात पर अड़ गए, कि उन्हें भी गायों को

चराने वन में जाना है। गायों को चराने के साथ ही उन्हें वृंदावन के वनों से स्वादिष्ट फलों का सेवन भी स्वयं अपने हाथों से करना है। नन्हे कृष्णा के हठ के समक्ष मैया यशोदा उनसे कहती है, कि हे कन्हैया अभी तू तो बहुत छोटा है और अपने नन्हे नन्हे पैरों से तू इतना दूर कैसे चल पाएगा और वैसे भी पुनः लौटते समय संध्या हो जाती है। तुझसे अधिक आयु वाले अपनी गायों को चरवाकर सीधे संध्या को घर लौटते हैं, जब चारों तरफ अंधेरा हो जाता है। गायों को चराने के लिए कड़ी धूप में पूरे वन में घूमना पड़ता है। तेरा शरीर तो पुष्प के समान कोमल है, तू भला ऐसे कड़े धूप को कैसे सहन कर पाएगा? यशोदा मैया के समझाने के बाद भी कृष्ण अपनी हठ पर अड़े रहे और मैया की सौगंध खाते हुए कहने लगे की तेरी कसम मैया मुझे धूप तथा भूख नहीं सताती है। मुझे गायों को चराने के लिए कृपया जाने दे।

- **चोरि माखन खात**
  चली ब्रज घर घरनि यह बात।
  नंद सुत संग सखा लीन्हें चोरि माखन खात।।
  कोउ कहति मेरे भवन भीतर अबहिं पैठे धाइ।
  .कोउ कहति मोहिं देखि द्वारें उतहिं गए पराइ।।
  कोउ कहति किहि भांति हरि कों देखौं अपने धाम।
  हेरि माखन देउं आछो खाइ जितनो स्याम।।
  कोउ कहति मैं देखि पाऊं भरि धरौं अंकवारि।
  कोउ कहति मैं बांधि राखों को सकैं निरवारि।।
  सूर प्रभु के मिलन कारन करति बुद्धि विचार।
  जोरि कर बिधि को मनावतिं पुरुष नंदकुमार।।

अर्थ: पूरे ब्रज में यह बात फैल गई है, कि कृष्ण अपने मित्रों के साथ मिलकर माखन चोरी करके खाते हैं। पूरे गांव में इसी बात की चर्चा हो रही है कि नंद पुत्र श्री कृष्ण वह दूसरों के घर से माखन चुराते हैं। सभी गोपियां एक साथ मिलकर यह चर्चा कर रहे हैं। तभी एक सखी कहती है, कि मैंने अभी-अभी कान्हा को अपने घर में देखा। दूसरी करती है की कृष्ण मेरे घर में प्रवेश कर रहे थे लेकिन मुझे द्वार पर खड़े देख भाग गए। एक गोपी कहती है कि यदि श्री कृष्ण मुझे मिल जाए, तो मैं जीवन भर उन्हें स्वादिष्ट माखन खिलाऊं जितना वे सेवन कर सकें। सभी ग्वालिन कहती है कि यदि कृष्ण उन्हें मिल जाए तो वह उसे कहीं जाने नहीं देगी सदैव अपने घर में रखेगी। अन्य सखियां यह भी कहती है, कि यदि कृष्ण मेरे हाथ लग जाए तो मैं उन्हें बांधकर अपने पास रख लूंगी। उनकी झलक पाने के लिए भी गोपियां व्याकुल रहती हैं। ब्रज की गोपियां नंद पुत्र नन्हे श्रीकृष्ण को हाथ जोड़कर अपने पति रूप में स्वीकार करने के लिए भी तैयार है।

- **कबहुं बोलत तात**
  खीझत जात माखन खात।
  अरुन लोचन भौंह टेढ़ी बार बार जंभात।।
  कबहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि धूरि धूसर गात।
  .कबहुं झुकि कै अलक खैंच नैन जल भरि जात।।
  कबहुं तोतर बोल बोलत कबहुं बोलत तात।
  सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात।।

अर्थ- राग रामकली में रचित इस सूरदास के दोहे में भगवान श्री कृष्णा के बाल कृणाओं का वर्णन किया है। एक बार कान्हा माखन खाते खाते हैं इस प्रकार रूठ गए कि रोने लगे, जिसके कारण उनकी आंखें भी लाल हो गई। माखन खाते हुए कभी श्री कृष्ण घुटनों के बल मिट्टी में चलते तो कभी अपने छोटे-छोटे पैरों पर खड़े होकर धीरे-धीरे चलने का प्रयास करते, जिससे उनके पैरों की पैजनिया झनझन बजने लगती। लीला करते हुए कान्हा स्वयं अपने बालों को खींचते और आंखों से आंसू निकालते तो कभी अपनी तोतली मधुर बोली से कुछ बोलने लगते। कृष्ण की इन शरारतों को देखकर यशोदा मैया उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने से दूर करने के लिए तैयार नहीं। अर्थात भगवान कृष्ण के प्रत्येक लीलाओं का आनंद यशीदा उठाती हैं, जिसे सूरदास जी ने इस दोहे के द्वारा प्रस्तुत किया है।

- **अरु हलधर सों भैया**
  कहन लागे मोहन मैया मैया।
  नंद महर सों बाबा बाबा अरु हलधर सों भैया।।
  ऊंच चढ़ि चढ़ि कहति जशोदा लै लै नाम कन्हैया।
  दूरि खेलन जनि जाहु लाला रे! मारैगी काहू की गैया।।
  गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर बजति बधैया।
  सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कों चरननि की बलि जैया।।

अर्थ: देवगंधार में रचित उपरोक्त पंक्ति जिसमें सूरदास जी ने बालकृष्ण से संबंधित मधुर प्रवृत्तियों का चित्रण किया है। जब नन्हे कृष्ण अपनी माता को मैया मैया तथा नंद बाबा को बाबा बाबा कहकर पुकारने लगे हैं और अपने बड़े भाई बलराम को भैया कहकर बुलाने लगे हैं। इतनी छोटी उम्र में ही श्री कृष्ण अपनी तोतली बोली से शब्दों का उच्चारण करने लगे हैं और साथ ही थोड़े शरारती भी हो गए हैं। जब नटखट कृष्ण खेलते खेलते दूर चले जाते हैं, तब यशोदा मैया उन्हें ऊंची आवाज में नाम से पुकार कर कहती हैं, कि लल्ला दूर मत जा नहीं तो गाय तुझे मारेगी। नन्हे कृष्ण के ऐसी लीलाओं को देखकर सभी ग्वाले – गोपियां आश्चर्यचकित रह गए हैं। बृजवासी नंद बाबा और यशोदा मैया को बधाइयां दे रहे हैं।

- **भई सहज मत भोरी**
  जो तुम सुनहु जसोदा गोरी।
  नंदनंदन मेरे मंदिर में आजु करन गए चोरी।।
  हौं भइ जाइ अचानक ठाढ़ी कह्यो भवन में कोरी।
  रहे छपाइ सकुचि रंचक ह्वै भई सहज मति भोरी।।
  मोहि भयो माखन पछितावो रीती देखि कमोरी।
  जब गहि बांह कुलाहल कीनी तब गहि चरन निहोरी।।
  लागे लेन नैन जल भरि भरि तब मैं कानि न तोरी।
  सूरदास प्रभु देत दिनहिं दिन ऐसियै लरिक सलोरी।।

अर्थ: भगवान श्री कृष्ण बाल रूप में बड़े ही सुशोभित लगते हैं लेकिन साथ ही बड़े शरारती भी, जिससे बृजवासी की गोपियां उनकी शिकायत यसोदा से कर देती हैं। एक बार श्री कृष्ण ने एक गोपी के घर से माखन चोरी करके खा लिया तो, ग्वालिन यशोदा मैया से शिकायत करने उनके घर पहुंच गई। गोपी कहने लगी की एरि यशोदा तेरा लल्ला मेरे घर आया था और मटकी से माखन चोरी करके खा रहा था। मैंने उसे देखा तो मैं केवल शांत भाव से उसके कृणा का आनंद उठा रही थी लेकिन जब मैंने जाकर मटकी को देखा तो उसमें से

सारा मक्खन खत्म हो चुका था। इसके पश्चात मुझे बहुत ही पछतावा हुआ। कान्हा को जाकर मैने पकड़ लिया जिसके पश्चात वह मेरे पैरों में गिर कर शिकायत न करने की याचना करने लगा और उसकी आंखों में आंसू भर आए, जिसके पश्चात मेरा भी हृदय पिघल गया और मैंने उसे जाने दिया।

- **हरष आनंद बढ़ावत**
  हरि अपनैं आंगन कछु गावत।
  तनक तनक चरनन सों नाच मन हीं मनहिं रिझावत।।
  बांह उठाइ कारी धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
  कबहुंक बाबा नंद पुकारत कबहुंक घर में आवत।।
  माखन तनक आपनैं कर लै तनक बदन में नावत।
  कबहुं चितै प्रतिबिंब खंभ मैं लोनी लिए खवावत।।
  दुरि देखति जसुमति यह लीला हरष आनंद बढ़ावत।
  सूर स्याम के बाल चरित नित नितही देखत भावत।।

अर्थ: सूरदास के इस दोहे में बालकृष्ण अपने ही घर के आंगन में प्रसन्न चित्त होकर जो मन में आए वह गुनगुना रहे हैं। अपने छोटे-छोटे पैरों पर थिरकते तथा स्वयं ही मन ही मन प्रसन्न हो रहे हैं। कभी वे अपने हाथों को उठाकर दूर खड़ी गायों को अपने पास बुलाते, तो कभी अपने नंद बाबा को पुकारते। कभी बाहर निकल कर वापस घर में आ जाते हैं, तो कभी अपने नन्हे हाथों में थोड़ा मक्खन लेकर अपने शरीर पर लगाने लगते। स्तंभ के नजदीक जाकर उसमे नजर आने वाले अपने ही प्रतिबिंब को अपने हाथों से मक्खन खिलाने लगते है। श्री कृष्ण के इन सभी शरारतों को यशोदा दूर खड़ी होकर छुप कर देख मन ही मन हर्षित हो रही हैं।।

- **कबहुं बढ़ैगी चोटी**
  मैया कबहुं बढ़ैगी चोटी।
  किती बेर मोहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी।।
  तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
  काढ़त गुहत न्हवावत जैहै नागिन-सी भुई लोटी।।
  काचो दूध पियावति पचि पचि देति न माखन रोटी।
  सूरदास त्रिभुवन मनमोहन हरि हलधर की जोटी।।

अर्थ: बाल श्री कृष्ण दूध पीने में आनाकानी करते तथा मैया के बार-बार कहने पर भी दूध नहीं पीते थे। लेकिन एक दिन यशोदा ने लालच देकर उनसे कहा की कान्हा तू प्रतिदिन कच्चा दूध पिया कर जिससे तेरी चोटी बलराम के भांति लंबी और मोटी हो जाएगी। प्रलोभित होकर श्री कृष्ण प्रतिदिन बिना कोई नाटक किए कच्चा दूध का सेवन करने लगे। कुछ समय बाद श्री कृष्ण यशोदा मैया से पूछते हैं कि मैया तूने तो बोला था कि कच्चा दूध का सेवन करने से मेरी छोटी सी चुटिया दाऊ भैया से भी मोटी और लंबी हो जाएगी लेकिन मेरे बाल अभी भी उसी प्रकार है जैसे पहले थे। शायद इसीलिए मुझे प्रतिदिन स्नान करवाकर बालों को संवारती थी और चोटी भी गूंथती थी, जिससे मेरी चोटी बढ़कर नागिन जैसी लंबी हो जाए। इसीलिए कच्चा दूध भी पिलाती थी और माखन रोटी भी नहीं देती थी। मैया से इतना कहकर श्री कृष्ण रूठ जाते हैं। उपरोक्त रचना में सूरदास जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण और बलराम की जोड़ी तीनों लोकों में अद्भुत है, जो मन को आनंदित करती है

- **ऊधौ, कर्मन की गति न्यारी।**
  सब नदियाँ जल भरि-भरि रहियाँ सागर केहि बिध खारी॥
  उज्ज्वल पंख दिये बगुला को कोयल केहि गुन कारी॥
  सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे बन-बन फिरत उजारी॥
  मूरख-मूरख राजे कीन्हे पंडित फिरत भिखारी॥
  सूर श्याम मिलने की आसा छिन-छिन बीतत भारी॥

अर्थ- श्री कृष्ण के कहने पर जब ऊधौ मथुरा जाकर निराकार ब्रह्म के विषय में बताने के लिए गोपियों से वार्ता करते हैं, तो भक्ति भाव में डूबी हुई गोपियां उल्टा उन्हें ही सच्चे ज्ञान की अनुभूति कराती हैं, जिसका वर्णन सूरदास जी ने उपरोक्त पंक्ति में किया है। ऊधौ यह भाग्य और कर्म का खेल बड़ा ही अनोखा है। जिस प्रकार सागर नदियों के मधुर जल से भरता है, लेकिन फिर भी समुद्र का जल खारा ही रहता है। बिना किसी गुण वाले बगुले को प्रकृति ने श्वेत रंग प्रदान किया हैं लेकिन गुणों से परिपूर्ण मधुर आवाज वाली कोयल को काले रंग का बना दिया है। निर्जन वनों में भटकने वाले मृग को प्रकृति ने सुंदर नेत्र प्रदान किया है, जिनका उसके लिए कोई महत्व ही नहीं है। इस सृष्टि में कई मूर्ख लोगों को प्रकृति ने राज सिंहासन प्रदान किया है, तो वही बुद्धिशाली लोगों को गरीब बना दिया। गोपियां श्री कृष्ण से मिलने की आश में प्रत्येक क्षण बहुत ही मुश्किल से काट रही हैं।

- **निसिदिन बरसत नैन हमारे।**
  सदा रहत पावस ऋतु हम पर, जबते स्याम सिधारे।।
  अंजन थिर न रहत अँखियन में, कर कपोल भये कारे।
  कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहुँ, उर बिच बहत पनारे॥
  आँसू सलिल भये पग थाके, बहे जात सित तारे।
  'सूरदास' अब डूबत है ब्रज, काहे न लेत उबारे॥

अर्थ- भगवान श्री कृष्ण का संदेश देने के लिए बृज गए उनके मित्र ऊधौ तथा गोपियों के बीच वार्ता का वर्णन करते हुए सूरदास जी कहते हैं, कि जब उद्धव ब्रज भूमि में प्रवेश करते हैं तो उन्होंने जल की एक धारा देखी, वह जल नहीं बल्कि अश्रु है, जो गोपियों के श्री कृष्ण से बिछड़ने के दुख में निरंतर बहते हैं। पूछने पर गोपियां कहती हैं कि जब से श्री कृष्ण ने ब्रजभूमि छोड़ी है तब से हमारी आंखों से निरंतर आंसू बह रहे हैं। बृज वासियों के लिए वर्षा ऋतु के अलावा दूसरा और कोई भी मौसम नहीं होता। हमारी नेत्रों से अश्रु बहने के कारण काजल स्थिर नहीं रह पाता, आंसुओं को पोछते हुए गालों और नेत्रों के नीचे काले धब्बे पड़ गए हैं। अश्रु बहने के कारण हमेशा हमारे वस्त्र गीले ही रहते हैं। चारों तरफ केवल असुरों की धाराएं बह रही हैं। हे कृष्ण हमारे उदासी के कारण पूरा व्रजभूमि डूबता जा रहा है तुम आकर इसकी सुरक्षा क्यों नहीं करते।

- **जसुमति दौरि लिये हरि कनियां।**
  "आजु गयौ मेरौ गाय चरावन, हौं बलि जाउं निछनियां॥
  मो कारन कचू आन्यौ नाहीं बन फल तोरि नन्हैया।
  तुमहिं मिलैं मैं अति सुख पायौ,मेरे कुंवर कन्हैया॥
  कछुक खाहु जो भावै मोहन.' दैरी माखन रोटी।
  सूरदास, प्रभु जीवहु जुग-जुग हरि-हलधर की जोटी॥

अर्थ- सूरदास जी के इस दोहे में भगवान श्री कृष्ण के प्रथम बार गाय चराने जाने का वर्णन करते हैं। जब श्री कृष्ण पहली बार वन में गायों को चराकर वापस घर लौटे तो यशोदा मैया ने बड़े ही प्रेम से उनसे पूछा कि आज गायों को चराने के लिए पहली बार वन में गए थे, इसलिए तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। वन से क्या तुम मेरे लिए कोई फल- फूल साथ नहीं लाए हो? इतने देर के पश्चात तुमसे पुनः मिलकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। हे कृष्ण तुम्हें जो कुछ खाने का मन हो मुझे बताओ। यशोदा मैया के पूछने पर कृष्णा माखन रोटी खाने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

- **संदेसो दैवकी सों कहियौ।**
  `हौं तौ धाय तिहारे सुत की, मया करति नित रहियौ॥
  जदपि टेव जानति तुम उनकी, तऊ मोहिं कहि आवे।
  प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्हहिं माखन-रोटी भावै॥
  तेल उबटनों अरु तातो जल देखत हीं भजि जाते।
  जोइ-जोइ मांगत सोइ-सोइ देती, क्रम-क्रम करिकैं न्हाते॥
  सूर, पथिक सुनि, मोहिं रैनि-दिन बढ्यौ रहत उर सोच।
  मेरो अलक लडैतो मोहन ह्वै है करत संकोच॥

अर्थ- सूरदास के इस दोहे में भगवान श्री कृष्ण मथुरा वापस लौट गए तब यशोदा मैया ने देवकी के लिए एक संदेश भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा की मैं तो आपके पुत्र की दाई हूं! अपनी कृपा दृष्टि सदैव मुझ पर बनाए रखना। भले ही आप मेरी सभी बातों को भलीभांति जानती हैं, लेकिन फिर भी मैं स्वयं अपनी तरफ से कह रही हूं की आपके कृष्णा को सवेरे उठकर माखन रोटी खाना बहुत अच्छा लगता है। लेकिन उबटन, तेल और ठंडे पानी को देखते ही वह दूर भाग जाता है और प्रलोभन देने के बाद भी नहाता नहीं। इतना ही नहीं मेरे घर को कृष्णा पराया समझकर संकोच करता है जिसका दुख मुझे सदैव ही रहता है।

- **उधो, मन न भए दस बीस**
  उधो, मन न भए दस बीस।
  एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस॥
  सिथिल भईं सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
  स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस॥
  तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
  सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस॥

अर्थ- श्री कृष्णा जब अपने सखा उधो को गोपियों के पास अपना संदेश देने भेजते हैं, तो व्रजभूमि में ब्रह्म ज्ञान देने गए उद्धव को गोपियों ने ही सत्य का बोध करवा दिया। गोपियां उधो से कहती हैं कि हम सभी के पास दस या बीस नहीं बल्कि एक ही मन है, जो बहुत पहले ही कृष्ण के साथ जा चुका है। कृष्ण के चले जाने के बाद हम सभी का मन सिथिल हो गया है और शरीर ने काम करना बंद कर दिया है। हम केवल इसी आस में अपनी सांसे गिन रहे हैं की श्री कृष्ण करोड़ों वर्षों तक जीवित रहें तथा फिर से हमें अपने दर्शन करवाएं। गोपियां उधो से यह भी कहती हैं कि तुम तो श्री कृष्ण के सखा हो और नाना प्रकार के विद्या के ज्ञाता भी हो। सूरदास जी अपनी रचना में भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं की वे इन गोपियों की इच्छाओं को जरूर पूरा करें।

- **निरगुन कौन देश कौ बासी**
  निरगुन कौन देश कौ बासी।
  मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति सांच न हांसी॥
  को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
  कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी॥
  पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी।
  सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो-सौ सूर सबै मति नासी॥

अर्थ- कृष्ण की याद में डूबी हुई गोपियां ज्ञान का संदेश देने आए उधो से यह प्रश्न करती हैं कि हे उधो तुम तो बहुत ज्ञानी तो, जिस ब्रम्हा का ज्ञान देने तुम यहां आए हो क्या तुम हमे बता सकते हो कि यह ब्रम्हा कहा निवास करते हैं? हम तुमसे ठिठोली नही कर रहे हैं बल्कि हम यह वास्तव में जानना चाहते हैं कि आखिर उन निर्गुण निराकार ब्रह्म के माता पिता कौन हैं? उनका पहनावा कैसा है? और उन्हें क्या अच्छा लगता है? हमारे इस जिज्ञासा को तुम व्यंग कतई मत समझना। गोपियों की इन बातो को सुनकर उधो खुद को ठगा सा महसूस करने लगे और गोपियों के एक भी प्रश्न का उत्तर नही दे सके।

- **कहां लौं कहिए ब्रज की बात**
  कहां लौं कहिए ब्रज की बात।
  सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसें दिवस बिहात॥
  गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृसगात।
  परमदीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गन बिनु पात॥
  जो कहुं आवत देखि दूरि तें पूंछत सब कुसलात।
  चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात॥
  पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
  सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं मग जात॥

अर्थ- ब्रज में जब श्री कृष्ण के सखा उधो गोपियों की स्थिति को देखकर पुनः भगवान श्री कृष्ण के पास लौटे तो वहां की स्थिति का वर्णन करते हुए उद्धव श्री कृष्ण से कहते हैं, कि हे कृष्णा! तुम्हरे बिना ब्रजवासी कितने दुखी हैं, जिसका मैं ठीक प्रकार से वर्णन भी नहीं कर सकता हूं। वे सभी तुमसे बिछड़कर बिन प्राण के केवल एक शरीर मात्र रह गए हैं। गाय, बछड़े, ग्वाले – गोपियां सभी तुम्हारे चले जाने के शोक में दिन रात अश्रु बहाते हैं। उन सभी का जीवन बेहद कष्टदाई हो गया है। वे दुखियारे शिशिर ऋतु के हिमपात के कारण केवल बिन पत्तियों के कमल मात्र बन गए हैं। यदि किसी यात्री को व्रज में आता देखते हैं, तो शीघ्र ही तुम्हारी हालचाल पूछते है। केवल तुम्हारे नाम का संदेश पाकर ही उत्साह से भर जाते हैं और यात्री को प्रसन्नतावस जाने ही नहीं देते और उनके पैरों से लिपट कर तुम्हारे विषय में और बातें पूछने लगते है। आपके जाने के दुख से केवल मनुष्य मात्र नहीं बल्कि पशु-पक्षी भी दुख की अंधेरी छाया में डूबे रहते हैं। चातक, कोयल और अन्य पक्षी अब वनों में निवास नहीं करते तथा तुम्हारे जाने के दुःख में अब कौवे बाली का अन्न भी नहीं खाते हैं। हे केशव! आपके लिए मथुरा संदेश ले जाने के भय से अब उस मार्ग से गुजरने वाले पथिक भी वहा नहीं जाते हैं।

- **मैया मोहि मैं नहि माखन खायौ,**
  भोर भयो गैयन के पाछे, मधुबन मोहि पठायो,
  चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।।

मैं बालक बहियन को छोटो, छीको किही बिधि पायो,
ग्वाल बाल सब बैर पड़े है, बरबस मुख लपटायो।।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहें पतिआयो,
जिय तेरे कछु भेद उपजि है, जानि परायो जायो।।
यह लै अपनी लकुटी कमरिया, बहुतहिं नाच नचायों,
सूरदास तब बिहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो।।

अर्थ – भगवान कृष्ण के मनमोहक बाल लीलाओं का अद्भुत वर्णन करते हुए सूरदास जी उपरोक्त दोहे में कहते हैं, कि जब गोपियों के मटकी को श्री कृष्ण अन्य ग्वालों के साथ मिलकर तोड़ देते हैं, तो गोपियां यशोदा मैया से उनके घर पर आकर कान्हा की शिकायत करती हैं, जिससे यशोदा मैया कान्हा को बहुत डांटती हैं। अपने बचाव में बाल कृष्णा अपनी मैया से कहते हैं कि हे मैया! मैंने माखन नहीं खाया है। आप सुबह होते ही मुझे गायों को चरवाने के लिए भेज देती हैं और दोपहर तक मैं यूं ही यहां-वहां भटकता रहता है और सांझ को वापस घर लौटता हूं। मैया मैं तो एक नन्हा सा बालक हूं और मेरी बाहें भी छोटी-छोटी हैं, तो मैं भला किस प्रकार इतने ऊंचे माखन के मटकों तक पहुंच पाऊंगा। मेरे मित्र भी मुझसे जलते हैं, इसलिए उन सभी ने मेरे मुंह पर जबरदस्ती मक्खन लिपटा दिया है। मैया तू बहुत भोली है जो इन लोगों की बातों में आ जाती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे दिल में मेरे लिए कोई प्रेम नहीं है, जो तू मुझे अपना समझती नहीं हमेशा पराया समझती है। तभी तो हर क्षण मुझ पर शंका करती रहती है। वापिस ले तेरी लाठी और कंबल तूने मुझे बहुत ही उदास किया है। कान्हा के मुख से इतना सुनते ही यशोदा मैया का हृदय पसीज जाता है और वह मुस्कुरा कर कृष्ण को गले लगा लेती हैं।

- **अब कै माधन मोहिं उधारि।**
  मगन हौं भाव अम्बुनिधि में कृपासिन्धु मुरारि।।
  नीर अति गंभीर माया लोभ लहरि तरंग।
  लियें जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग।।
  मीन इन्द्रिय अतिहि काटति मोत अघ सिर भार।
  पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिबार।।
  काम क्रोध समेत तृष्ना पवन अति जकझोर।
  नाहिं चितवत देह तियसुत नाम-मौका ओर।।
  थक्यौ बीच बेहाल बिह्वल सुनहु करुनामूल।
  श्याम भुज गहि काढि डारहु सूर ब्रज के कूल।।

अर्थ – सूरदास के इस दोहे में सूरदास जी इस समस्त दुनिया को एक मायाजाल बताते हुए अपनी पीड़ा को भगवान श्री कृष्ण के समक्ष व्यक्त करते हैं। कवि कहते हैं कि हे परमपिता यह समस्त सृष्टि माया रूपी जल से भरी हुई है। इस जल में लालच के रूप में ऊंची ऊंची लहरे उछाल मार रही हैं। दोष और कामवासना के रूप में मगरमच्छ अपना कब्जा जमाए हुए हैं और जल में तैरती हुई मछलियां इंद्रियां है जिन पर अब कोई भी काबू नहीं रहा है। हे श्री कृष्ण इस पाप से भरे दुनिया से मुझे मुक्त कीजिए, मेरे सिर पर पाप की ढेरों गठरियां पड़ी है जो मुझे मोह माया से बाहर नहीं निकलने दे रही हैं। हे प्रभु मेरे मन को क्रोध और काम रूपी हवाएं बहुत सताती हैं, कृपया मुझ पर दया करिए मेरा उद्धार करिए। समुद्र जैसे विशाल इस बड़ी सी दुनिया में मुझे केवल श्रीकृष्ण के नाम की नैया ही डूबने से बचा सकती है। हे प्रभु मायाजाल के चंगुल में मैं इस प्रकार फस गया हूं

कि मुझे अपने पुत्र और पत्नी के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं दिखाई देता। हे भगवान श्री कृष्ण मेरा बेड़ा पार करिए मुझ पर कृपा करिए।

- **जसोदा हरि पालनैं झुलावै।**
  हलरावै दुलरावै मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै॥
  मेरे लाल को आउ निंदरिया काहें न आनि सुवावै।
  तू काहै नहिं बेगहिं आवै तोकौं कान्ह बुलावै॥
  कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावैं।
  सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि करि करि सैन बतावै॥
  इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरैं गावै।
  जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नंद भामिनि पावै॥

अर्थ: सूरदास के इस दोहे में श्री कृष्ण के बाल अवस्था का अद्भुत चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि मैया यशोदा कान्हा को सुलाने के लिए पालने में रखकर झूला झूला रही हैं। यशोदा मैया कभी कान्हा को पालने में झूला झुलाती तो कभी उसे अपनी बाहों में उठा कर प्यार करने लगती और कभी कान्हा का मुख चूमती। लेकिन फिर भी श्री कृष्णा को नींद नहीं आई तो उन्हें सुलाने के लिए मैया मधुर गीत गुनगुनाने लगती, लेकिन कान्हा को फिर भी नींद नहीं आई। बार-बार प्रयास करने के पश्चात भी जब कान्हा नहीं सोए तब यशोदा नींद पर खीझते हुए कहती कि एरी निंदिया तू मेरे लल्ला को सुला क्यों नहीं रही है? तू मेरे लल्ला के पास क्यों नहीं आती देख तुझे मेरा कान्हा पुकार रहा है। जब यशोदा नींद को पुकारती तब धीरे से कान्हा की पलकें भी मूंद जाती तो कभी कान्हा के होंठ कच्ची नींद में फड़फड़ाने लगते। मैया के मीठे लोरी से जब कान्हा ने अपनी आंखे मूंदी तो यशोदा को ऐसा लगा कि अब कृष्ण सो गए हैं। लेकिन तभी कुछ गोपियां वहां आती हैं। शोरगुल सुनते ही नन्हे कन्हैया की जी नींद टूट जाती है, जिसके पश्चात यशोदा पुनः अपने लल्ला को मीठी मीठी लोरियां गाकर सुलाने का प्रयास करती हैं। इस रचना में सूरदास जी कहते हैं कि नंद पत्नी यशोदा वास्तव में सबसे भाग्यशाली हैं जिन्हें स्वयं भगवान के बाल रूप का सुख प्राप्त हुआ है। ऐसे सुख तो देवताओं और ऋषि-मुनियों को सदियों तक प्रतीक्षा करने के पश्चात भी नहीं प्राप्त होते हैं।

- **मुख दधि लेप किए**
  सोभित कर नवनीत लिए।
  घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।।
  चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
  लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।।
  कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
  धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिए।।

अर्थ: सूरदास जी को भक्त शिरोमणि भी कहा जाता है, उपरोक्त दोहे में उन्होंने श्री कृष्ण के बाल रूप का अति सुंदर रूप से वर्णन किया है जो किसी का भी मन मोहित कर ले। भगवान श्री कृष्ण के बाल लीला को प्रस्तुत करते हुए सूरदास जी कहते हैं की कान्हा अभी बहुत छोटे हैं और वह आंगन में केवल घुटनों के सहारे ही चल सकते हैं। एक दिन यशोदा द्वारा निकाला गया ताजा माखन अपने नन्हे हाथों में लेकर श्री कृष्णा आंगन में धीरे धीरे घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके पैरों में मिट्टी लगी है और मुख पर मक्खन लिपटा हुआ है। कान्हा के घुंघराले बाल मुख पर आ रहे हैं उनके गाल बहुत ही कोमल और सुंदर हैं तथा नेत्र मनमोहित कर लेने वाले हैं। कान्हा के नन्हे से मस्तक पर गोरोचन का तिलक लगा हुआ है। नन्हे श्री कृष्ण अपने हाथों में मक्खन लिए हुए

इतने सुंदर लग रहे हैं जिसका वर्णन करना बेहद कठिन है। बाल लीला करते हुए कान्हा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो फूलों के मधुर रस को पाकर भ्रमण करते हुए भौरे मतवाले हो गए हैं। कृष्णा के गले में लटक रही सुंदर माला और सिंहनख उनकी शोभा को और भी बढ़ाते जा रहे हैं। श्री कृष्ण के इस रूप को देखकर कोई भी मोहित हो जाए।

- **मिटि गई अंतरबाधा**
  खेलौ जाइ स्याम संग राधा।
  यह सुनि कुंवरि हरष मन कीन्हों मिटि गई अंतरबाधा।।
  जननी निरखि चकित रहि ठाढ़ी दंपति रूप अगाधा।।
  देखति भाव दुहुंनि को सोई जो चित करि अवराधा।।
  संग खेलत दोउ झगरन लागे सोभा बढ़ी अगाधा।।
  मनहुं तड़ित घन इंदु तरनि ह्वै बाल करत रस साधा।।
  निरखत बिधि भ्रमि भूलि पर्यौ तब मन मन करत समाधा।।
  सूरदास प्रभु और रच्यो बिधि सोच भयो तन दाधा।।

अर्थ: इस सूरदास के दोहे में राधा-कृष्ण के बाल लीलाओं का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि बृज की भूमि राधा कृष्ण के इस पवित्र रासलीला को देखकर धन्य हो उठी है। जब राधा रानी के माता-पिता वृषभानु तथा कीर्ति राधिका को श्री कृष्ण के संग खेलने की अनुमति प्रदान करते हैं, तो इसे सुनकर राधारानी बहुत प्रसन्न होती हैं क्योंकि अब उन्हें कान्हा के साथ खेलने के लिए कोई भी रोक टोक करने वाला नहीं था। सारी बाधाएं दूर हो गई तो राधा श्याम संग खेलने चली जाती हैं। जब राधिका और श्याम खेल रहे होते हैं तो राधा की माता कीर्ति दूर खड़ी होकर राधा कृष्ण को खेलते हुए देखती है। राधा कृष्ण की जोड़ी को देखकर वे बहुत प्रसन्न होती हैं। सौंदर्य के पराकाष्ठा को देखकर वे मंत्रमुग्ध रह जाती हैं। लेकिन तभी राधा कृष्ण खेलते खेलते झगड़ने लगते हैं। राधा कृष्ण के झगड़े में भी इतना सौंदर्य था जिसकी तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। राधा और कृष्ण की जोड़ी को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे सूर्य, चंद्र, मेघ और दामिनी बाल रूप में लीलाए रच रहे हो। ऐसा मनमोहक दृश्य देखकर तो एक समय के लिए परम ब्रह्मा भी भ्रम में पड़ गए कि कहीं जगतपति श्री कृष्ण ने कोई नई सृष्टि की रचना तो नहीं कर दी है। ऐसा विचार करके एक समय के लिए ब्रह्मा जी भी भगवान श्रीकृष्ण से बैर कर बैठे।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय, टूटे पे फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परी जाय||" **इसी तरह के Rahim Ke Dohe इन हिंदी आपको पढ़ने के लिए मिलेगें। अब्दुल रहीम खानखाना का जन्म 17 दिसंबर 1556 ईवी लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरम खां और माता का नाम जमाल खान था और माता का नाम सईदा बेगम था। उनकी पत्नी का नाम महाबानू बेगम था। वह इस्लाम धर्म के थे। वर्ष 1576 में उनको गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया था। 28 वर्ष की उम्र में अकबर ने खानखाना की उपाधि से नवाज़ा था। उन्होंने बाबर की आत्मकथा का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया था। नौ रत्नों में वह अकेले ऐसे रत्न थे जिनका कलम और तलवार दोनों विधाओं पर समान अधिकार था। उनकी मृत्यु 1 अक्टूबर 1627 ई में हुई।**

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय.
टूटे पे फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परी जाय||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि प्रेम का नाता नाज़ुक होता है. इसे झटका देकर तोड़ना उचित नहीं होता। यदि यह प्रेम का धागा एक बार टूट जाता है तो फिर इसे मिलाना कठिन होता है और यदि मिल भी जाए तो टूटे हुए धागों के बीच में गाँठ पड़ जाती है।

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय |
जो सुख में सुमिरन करे, तो दु:ख काहे होय ||

अर्थ : दु:ख में सभी लोग भगवान को याद करते हैं. सुख में कोई नहीं करता, अगर सुख में भी याद करते तो दु:ख होता ही नही |

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि.
जहां काम आवे सुई, कहा करे तरवारि||

अर्थ: बड़ों को देखकर छोटों को भगा नहीं देना चाहिए। क्योंकि जहां छोटे का काम होता है वहां बड़ा कुछ नहीं कर सकता। जैसे कि सुई के काम को तलवार नहीं कर सकती।

रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दु:ख प्रगट करेइ,
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ||

अर्थ: रहीम कहते हैं की आंसू नयनों से बहकर मन का दु:ख प्रकट कर देते हैं। सत्य ही है कि जिसे घर से निकाला जाएगा वह घर का भेद दूसरों से कह ही देगा.

जैसी परे सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह,
धरती ही पर परत है, सीत घाम औ मेह||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि जैसी इस देह पर पड़ती है – सहन करनी चाहिए, क्योंकि इस धरती पर ही सर्दी, गर्मी और वर्षा पड़ती है. अर्थात जैसे धरती शीत, धूप और वर्षा सहन करती है, उसी प्रकार शरीर को सुख-दु:ख सहन करना चाहिए|

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर |

अर्थ : बड़े होने का यह मतलब नहीं हैं की उससे किसी का भला हो। जैसे खजूर का पेड़ तो बहुत बड़ा होता हैं लेकिन उसका फल इतना दूर होता है की तोड़ना मुश्किल का कम है |

दोनों रहिमन एक से, जों लों बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, रितु बसंत के माहिं||

अर्थ: कौआ और कोयल रंग में एक समान होते हैं। जब तक ये बोलते नहीं तब तक इनकी पहचान नहीं हो पाती। लेकिन जब वसंत ऋतु आती है तो कोयल की मधुर आवाज़ से दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है|

समय पाय फल होत है, समय पाय झरी जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि उपयुक्त समय आने पर वृक्ष में फल लगता है। झड़ने का समय आने पर वह झड़ जाता है। सदा किसी की अवस्था एक जैसी नहीं रहती, इसलिए दुःख के समय पछताना व्यर्थ है।

रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार,
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ता हार||

अर्थ: यदि आपका प्रिय सौ बार भी रूठे, तो भी रूठे हुए प्रिय को मनाना चाहिए,क्योंकि यदि मोतियों की माला टूट जाए तो उन मोतियों को बार बार धागे में पिरो लेना चाहिए।

निज कर क्रिया रहीम कहि सीधी भावी के हाथ
पांसे अपने हाथ में दांव न अपने हाथ||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि अपने हाथ में तो केवल कर्म करना ही होता है सिद्धि तो भाग्य से ही मिलती है जैसे चौपड़ खेलते समय पांसे तो अपने हाथ में रहते हैं पर दांव क्या आएगा यह अपने हाथ में नहीं होता।

बानी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय |
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ||

अर्थ : अपने अंदर के अहंकार को निकालकर ऐसी बात करनी चाहिए जिसे सुनकर दुसरों को और खुद को ख़ुशी हो।

संपत्ति भरम गंवाई के हाथ रहत कछु नाहिं
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकासहि माहिं||

अर्थ: जिस प्रकार दिन में चन्द्रमा आभाहीन हो जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति किसी व्यसन में फंस कर अपना धन गँवा देता है वह निष्प्रभ हो जाता है।

माह मास लहि टेसुआ मीन परे थल और
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपुने ठौर||

अर्थ: माघ मास आने पर टेसू का वृक्ष और पानी से बाहर पृथ्वी पर आ पड़ी मछली की दशा बदल जाती है। इसी प्रकार संसार में अपने स्थान से छूट जाने पर संसार की अन्य वस्तुओं की दशा भी बदल जाती है. मछली जल से बाहर आकर मर जाती है वैसे ही संसार की अन्य वस्तुओं की भी हालत होती है।

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनी इठलैहैं लोग सब, बांटी न लेंहैं कोय||

अर्थ: रहीम कहते हैं की अपने मन के दु:ख को मन के भीतर छिपा कर ही रखना चाहिए। दूसरे का दु:ख सुनकर लोग इठला भले ही लें, उसे बाँट कर कम करने वाला कोई नहीं होता।

वरू रहीम कानन भल्यो वास करिय फल भोग
बंधू मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि निर्धन होकर बंधु-बांधवों के बीच रहना उचित नहीं है इससे अच्छा तो यह है कि वन मैं जाकर रहें और फलों का भोजन करें।

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछे कौन||

अर्थ : बारिश के मौसम को देखकर कोयल और रहीम के मन ने मौन साध लिया हैं। अब तो मेंढक ही बोलने वाले हैं तो इनकी सुरीली आवाज को कोई नहीं पूछता, इसका अर्थ यह हैं की कुछ अवसर ऐसे आते हैं जब गुणवान को चुप रहना पड़ता हैं। कोई उनका आदर नहीं करता और गुणहीन वाचाल व्यक्तियों का ही बोलबाला हो जाता हैं |

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जान परत सब कोय||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि यदि विपत्ति कुछ समय की हो तो वह भी ठीक ही है, क्योंकि विपत्ति में ही सबके विषय में जाना जा सकता है कि संसार में कौन हमारा हितैषी है और कौन नहीं।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बांटन वारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका शरीर सदा सबका उपकार करता है। जिस प्रकार मेंहदी बांटने वाले के अंग पर भी मेंहदी का रंग लग जाता है, उसी प्रकार परोपकारी का शरीर भी सुशोभित रहता है.

ओछे को सतसंग रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारै अंग सीरै पै कारौ लगै||

अर्थ: ओछे मनुष्य का साथ छोड़ देना चाहिए। हर अवस्था में उससे हानि होती है – जैसे अंगार जब तक गर्म रहता है तब तक शरीर को जलाता है और जब ठंडा कोयला हो जाता है तब भी शरीर को काला ही करता है|

वृक्ष कबहूँ नहीं फल भखैं, नदी न संचै नीर
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर।

अर्थ: वृक्ष कभी अपने फल नहीं खाते, नदी जल को कभी अपने लिए संचित नहीं करती, उसी प्रकार सज्जन परोपकार के लिए देह धारण करते हैं।

लोहे की न लोहार की, रहिमन कही विचार जा
हनि मारे सीस पै, ताही की तलवार||

अर्थ: रहीम विचार करके कहते हैं कि तलवार न तो लोहे की कही जाएगी न लोहार की, तलवार उस वीर की कही जाएगी जो वीरता से शत्रु के सर पर मार कर उसके प्राणों का अंत कर देता है।

तासों ही कछु पाइए, कीजे जाकी आस
रीते सरवर पर गए, कैसे बुझे पियास||

अर्थ: जिससे कुछ पा सकें, उससे ही किसी वस्तु की आशा करना उचित है, क्योंकि पानी से रिक्त तालाब से प्यास बुझाने की आशा करना व्यर्थ है।

रहिमन नीर पखान, बूड़े पै सीझै नहीं
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं

अर्थ: जिस प्रकार जल में पड़ा होने पर भी पत्थर नरम नहीं होता उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति की अवस्था होती है ज्ञान दिए जाने पर भी उसकी समझ में कुछ नहीं आता।

साधु सराहै साधुता, जाती जोखिता जान
रहिमन सांचे सूर को बैरी कराइ बखान||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि इस बात को जान लो कि साधु सज्जन की प्रशंसा करता है यति योगी और योग की प्रशंसा करता है पर सच्चे वीर के शौर्य की प्रशंसा उसके शत्रु भी करते हैं।

राम न जाते हरिन संग से न रावण साथ
जो रहीम भावी कतहूँ होत आपने हाथ

अर्थ: रहीम कहते हैं कि यदि होनहार अपने ही हाथ में होती, यदि जो होना है उस पर हमारा बस होता तो ऐसा क्यों होता कि राम हिरन के पीछे गए और सीता का हरण हुआ। क्योंकि होनी को होना था – उस पर हमारा बस न था न होगा, इसलिए तो राम स्वर्ण मृग के पीछे गए और सीता को रावण हर कर लंका ले गया।

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान |

अर्थ: रहीम कहते हैं कि वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते हैं और सरोवर भी अपना पानी स्वयं नहीं पीता है। इसी तरह अच्छे और सज्जन व्यक्ति वो हैं जो दूसरों के कार्य के लिए संपत्ति को संचित करते हैं।

रहिमन ओछे नरन सो, बैर भली न प्रीत |
काटे चाटे स्वान के, दोउ भाँती विपरीत ||

अर्थ : गिरे हुए लोगों से न तो दोस्ती अच्छी होती हैं, और न तो दुश्मनी। जैसे कुत्ता चाहे काटे या चाटे दोनों ही अच्छा नहीं होता |

एकहि साधै सब सधैए, सब साधे सब जाय |
रहिमन मूलहि सींचबोए, फूलहि फलहि अघाय ||

अर्थ: एक को साधने से सब सधते हैं। सब को साधने से सभी के जाने की आशंका रहती है – वैसे ही जैसे किसी पौधे के जड़ मात्र को सींचने से फूल और फल सभी को पानी प्राप्त हो जाता है और उन्हें अलग अलग सींचने की जरूरत नहीं होती है।

मथत-मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय |
'रहिमन' सोई मीत है, भीर परे ठहराय ||

अर्थ : सच्चा मित्र वही है, जो विपदा में साथ देता है। वह किस काम का मित्र, जो विपत्ति के समय अलग हो जाता है? मक्खन मथते-मथते रह जाता है, किन्तु मट्ठा दही का साथ छोड़ देता है।

रहिमन' वहां न जाइये, जहां कपट को हेत |
हम तो ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ||

अर्थ : ऐसी जगह कभी नहीं जाना चाहिए, जहां छल-कपट से कोई अपना मतलब निकालना चाहे। हम तो बड़ी मेहनत से पानी खींचते हैं कुएं से ढेंकुली द्वारा, और कपटी आदमी बिना मेहनत के ही अपना खेत सींच लेते हैं।

बिगरी बात बने नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय||

अर्थ: मनुष्य को सोचसमझ कर व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि किसी कारणवश यदि बात बिगड़ जाती है तो फिर उसे बनाना कठिन होता है, जैसे यदि एकबार दूध फट गया तो लाख कोशिश करने पर भी उसे मथ कर मक्खन नहीं निकाला जा सकेगा।

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान.
रहिमन दाबे न दबै, जानत सकल जहान ||

अर्थ : सारा संसार जानता हैं की खैरियत, खून, खाँसी, ख़ुशी, दुश्मनी, प्रेम और शराब का नशा छुपाने से नहीं छुपता हैं।

जो रहीम ओछो बढै, तौ अति ही इतराय |
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ों टेढ़ों जाय ||

अर्थ : लोग जब प्रगति करते हैं तो बहुत इतराते हैं। वैसे ही जैसे शतरंज के खेल में ज्यादा फ़र्जी बन जाता हैं तो वह टेढ़ी चाल चलने लता हैं।

चाह गई चिंता मिटीमनुआ बेपरवाह |
जिनको कुछ नहीं चाहिए, वे साहन के साह ||

अर्थ : जिन लोगों को कुछ नहीं चाहिए वों लोग राजाओं के राजा हैं, क्योकी उन्हें ना तो किसी चीज की चाह हैं, ना ही चिन्ता और मन तो पूरा बेपरवाह हैं।

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सुन |
पानी गये न ऊबरे, मोटी मानुष चुन ||

अर्थ : इस दोहे में रहीम ने पानी को तीन अर्थों में प्रयोग किया है, पानी का पहला अर्थ मनुष्य के संदर्भ में है जब इसका मतलब विनम्रता से है। रहीम कह रहे हैं की मनुष्य में हमेशा विनम्रता होनी चाहिये | पानी का दूसरा अर्थ आभा, तेज या चमक से है जिसके बिना मोटी का कोई मूल्य नहीं | पानी का तीसरा अर्थ जल से है जिसे आटे से जोड़कर दर्शाया गया हैं। रहीमदास का ये कहना है की जिस तरह आटे का अस्तित्व पानी के बिना नम्र नहीं हो सकता और मोटी का मूल्य उसकी आभा के बिना नहीं हो सकता है, उसी तरह मनुष्य को भी अपने व्यवहार में हमेशा पानी यानी विनम्रता रखनी चाहिये जिसके बिना उसका मूल्यह्रास होता है।

जो बड़ेन को लघु कहें, नहीं रहीम घटी जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहें, कछु दु:ख मानत नाहिं||

अर्थ: रहीम अपने दोहें में कहते हैं कि बड़े को छोटा कहने से बड़े का बड़प्पन नहीं घटता, क्योंकि गिरिधर (कृष्ण) को मुरलीधर कहने से उनकी महिमा में कमी नहीं होती।

रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर |
जब नाइके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर ||

अर्थ : इस दोहे में रहीम का अर्थ है की किसी भी मनुष्य को ख़राब समय आने पर चिंता नहीं करनी चाहिये क्योंकि अच्छा समय आने में देर नहीं लगती और जब अच्छा समय आता हैं तो सबी काम अपने आप होने लगते हैं।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करी सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग||

अर्थ: रहीम कहते हैं कि जो अच्छे स्वभाव के मनुष्य होते हैं,उनको बुरी संगति भी बिगाड़ नहीं पाती. जहरीले सांप चन्दन के वृक्ष से लिपटे रहने पर भी उस पर कोई जहरीला प्रभाव नहीं डाल पाते।

रहिमन वे नर मर गये, जे कछु मांगन जाहि |
उतने पाहिले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहि ||

अर्थ : जो इन्सान किसी से कुछ मांगने के लिये जाता हैं वो तो मरे हैं ही परन्तु उससे पहले ही वे लोग मर जाते हैं जिनके मुह से कुछ भी नहीं निकलता हैं।

रहिमन विपदा ही भली, जो थोरे दिन होय |
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ||

अर्थ : संकट आना जरुरी होता हैं क्योकी इसी दौरान ये पता चलता है की संसार में कौन हमारा हित और बुरा सोचता हैं।

जे गरिब पर हित करैं, हे रहीम बड |
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ||

अर्थ : जो लोग गरिब का हित करते हैं वो बड़े लोग होते हैं। जैसे सुदामा कहते हैं कृष्ण की दोस्ती भी एक साधना हैं।

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय,
बारे उजियारो लगे, बढे अँधेरो होय ||

अर्थ : दिये के चरित्र जैसा ही कुपुत्र का भी चरित्र होता हैं. दोनों ही पहले तो उजाला करते हैं पर बढ़ने के साथ अंधेरा होता जाता हैं |

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय
जियत कंज तजि अनत वसि कहा भौरे को भाय ||

अर्थ :- इस Rahim Ke Dohe बताया गया है की मछली का प्रेम धन्य है जो जल से बिछड़ते हीं मर जाती है। भौरा का प्रेम छलावा है जो एक फूल का रस ले कर तुरंत दूसरे फूल पर जा बसता है। जो केवल अपने स्वार्थ के लिये प्रेम करता है वह स्वार्थी है।

गुरु नानक देव जी सिख धर्म के गुरु है, इनका जन्म अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार साल 1469 में हुआ था। गुरु नानक देव ने हमेशा अपने प्रवचनों में जातिवाद को मिटाने, सत्य के मार्ग पर चलने के उपदेश दिए हैं।

गुरु नानक के दोहे...

- **थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपे आपि निरंजनु सोइ।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि भगवान अजन्मा निराकार मायातीत अटल सिद्धस्वरूप अनादि एवं अनन्त हैं।

- **गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ। दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ।**
  जिसने प्रभु की सेवा की उसे सर्वोत्तम प्रतिश्ठा मिली। इसीलिये उसके गुणों का गायन करना चाहिये- ऐसा गुरू नानक का मत है।

- **गुरा इक देहि बुझाई। सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई।**
  नानक देव जी कहते है, कि उसके गुणों का गीत गाने सुनने एवं मन में भाव रखने से समस्त दुखों का नाश एवं अनन्य सुखों का भण्डार प्राप्त होता है।

- **तीरथि नावा जे तिसु भावा। विणु भाणे कि नाइ करी।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि तीर्थों में स्नान से प्रभु तब खुश होंगें जब वह उन्हें मंजूर हो। बिना ईश्वर के मान्यता के तीर्थों का स्नान कोई अर्थ नहीं रखता। उससे किसी तरह के फायदा होने का कोई कारण नहीं है।

- **गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं। गुरमुखि रहिआ समाई। गुरू ईसरू गुरू गोरखु बरमा। गुरू पारबती माई।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि गुरू वाणी हीं शब्द एवं बेद है। प्रभु उन्हीं शब्दों एवं विचारों में निवास करते हैं। गुरू हीं शिव बिश्नु ब्रम्हा एवं पार्वती माता हैं। सभी देवताओं का मिलन गुरू के वचनों में हीं प्राप्त है।

- **जे हउ जाणा आखा नाही। कहणा कथनु न जाई।**
  ईश्वर की ज्योति को जान लेने पर भी उसे शब्दों में ब्यक्त नही किया जा सकता है। वह कथन से परे मात्र हृदय में अनुभव जन्य है।

- **जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई।**
  संसार में हमारे कर्मों के अनुसार हीं हमें मिलता है। कुछ भी हासिल करने के लिये हमें कर्म करना पड़ता है। तब प्रभु की प्राप्ति बिना कर्म के कैसे संभव है। किन्तु किसी भौतिक वस्तु को प्राप्त करने की मनोकामना से किये गये कर्म ब्यर्थ हैं।

- **कागदि कलम न लिखणहारू। मंने काबहि करनि वीचारू।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि ऐसी कोई कागज और कलम नही बनी है अैार कोई ऐसा लिखने बाला भी नहीं है जो प्रभु के नाम की महत्ता का वर्णन कर सके।

- **ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।**
  प्रभु नाम के सुमिरण मनन करने का महत्व तो केवल वही आदमी जान समझ सकता है। दूसरा कोई मनुश्य उसका वर्णन नही कर सकता है।

- **मंनै सुरति होवै मनि बुधि। मंनै सगल भवण की सुधि।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि नाम सुमिरण करने से हीं ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, तथा उसकी बुद्धि भी पवित्र हो जाती है। तब उस ब्यक्ति को संसार के समस्त लोकों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

- **मंनै मुहि चोटा ना खाइ। मंनै जम कै साथि न जाइ।**
  प्रभु का चिंतन करने बाला काल मृत्यु के घात से भी सुरक्षित रहता है। वह मौत के मुॅह में नही जाता है।वह मनस्वी अमरता प्राप्त करता है। उसे मृत्यु दूत नही ले जा पाते हैं।

- **मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।**
  प्रभु नाम के मनन चिंतन करने बाले के सामने किसी तरह की विघ्न बाधा नहीं आती है। वह ब्यक्ति सभी जगह मान इज्जत पाता है।

- **मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि जो ब्यक्ति प्रभु नाम की दीक्षा लेता है, वह दूसरे लोगों के द्वारा चलाये गये पंथों में भ्रमित नही होता। वे कोई अन्य रास्ता नही अपनाते और सर्वदा सच्चे धर्म पर अडिग रहते हैं।

- **ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।**
  गुरू नानक देव जी का प्रभु पर दृढ़ विश्वास है, कि नाम की महिमा केवल उसे मनन सुमिरण करने बाला हीं जानता है अन्य कोई नहीं जान सकता नानक

- **मंनै पावहि मोखु दुआरू। मंनै परवारै साधारू।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि प्रभु नाम का नित्य स्मरण करने बाला हीं मुक्ति मोक्ष का अधिकारी है। वह अपने सम्पूर्ण परिवार को भी ईश्वर की शरण में लाकर ताड़ देता है।

- **ऐसा नाम निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।**
  गुरु नानक देव जी भक्त के बारे बताते है, कि नाम का मनन करने बाला हीं उसका महत्व जानता है- दूसरा कोई नहीं।

- **मंनै तरै तारे गुरू सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि प्रभु के नाम का निरंतर मनन करने बाला स्वयं तो संसार रूपी सागर को पार कर हीं जाता है-वह अपने साथ सभी गुरू भाइयों को भी तार देता है। नानक देव जी का विश्वास है कि वह 84 लाख योनियों में नही भटकता है। उसमें तब किसी तरह की इच्छा भी नही रह जाती है।

- **साचा साहिबु साचु नाइ। भाखिआ भाउ अपारू। आखहि मंगहि देहि देहि। दाति करे दातारू।**
  गुरु नानक देव जी उपदेश देते हुए कहते है, कि प्रभु सत्य एवं उसका नाम सत्य है। अलग अलग विचारों एवं भावों तथा बोलियों में उसे भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं। प्रत्येक जीव उसके दया की भीख माॅगता है तथा सब जीव उसके कृपा का अधिकारी है। और वह भी हमें अपने कर्मों के मुताबिक अपनी दया प्रदान करता है।

- **फेरि कि अगै रखीऐ। जितु दिसै दरबारू। मुहौ कि बोलणु बोलीऐ। जितु सुणि धरे पिआरू।**
  गुरु नानक देव जी हमें मार्गदर्शित करते है कि हमें यह ज्ञात नही है कि उसे क्या अर्पण किया जाये जिससे वह हमें दर्शन दे। हम कैसे उसे गायें-याद करें-गाुणगान करें कि वह प्रसन्न होकर हमें अपनी कृपा से सराबोर करे और अपना प्रेम हमें सुलभ कर दे।

- **अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारू।**
  गुरु नानक देव जी समझाते हुए प्रातःकाल को अमृत बेला के नाम से सुशोभित करते है। गुरु नानक देव जी कहते है, कि इस समय हृदय से प्रभु का जप स्मरण करने से वह अपनी कृपा प्रदान करता है। इस समय ईश्वर में एकाग्रता सहज होता है। अतः प्रातःकाल में हमें प्रभु का ध्यान अवश्य करना चाहिये।

- **करमी आवै कपड़ा। नदरी मोखु दुआरू। नानक एवै जाणीऐ। सभु आपे सचिआरू।**
  गुरु नानक देव जी कहते है, कि हमारे अच्छे और बुरे कर्मो से यह शरीर बदल जाता है। मुक्ति-मोक्ष की प्राप्ति तो केवल प्रभु कृपा से ही संभव है। हमें अपने समस्त भ्रमों का नाश करके ईश्वर तत्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हमें प्रभु के सर्वकत्र्ता एवं सर्वब्यापी सत्ता में विश्वास करना चाहिये।

संत रैदास के दोहे

ब्राह्मण मत पुजिये जो होवे गुणहीन !
पुजिये चरण चंडाल के जो होने गुण प्रवीण !!
अर्थ : इस दोहे के माध्यम से संत रैदास जी कहते है कि किसी मनुष्य को सिर्फ इसलिए नहीं पूजना चाहिए कि वह किसी ऊँचे कुल में जन्मा है ! हमें उस व्यक्ति को नहीं पूजना चाहिए जिसमे कोई गुण नहीं हो ! हमें ऐसे व्यक्ति को पूजना चाहिए जो गुणवान हो चाहे वह किसी नीची जाती का ही क्यों न हो !

मन चंगा तो कठौती में गंगा !
अर्थ : रैदास जी इस दोहे में कहते है कि जिस मनुष्य का मन पवित्र है , उसके बुलाने पर माँ गंगा एक कठौती

करम बंधन में बन्ध रहियो , फल की न तज्जियो आस !
कर्म मानुष का धर्म है , सत भाखे रविदास !!
अर्थ : संत रैदास जी इस दोहे में कहते है कि मनुष्य को हमेशा अपने कर्म पर ध्यान देना चाहिए कभी भी फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए ! क्योंकि कर्म करना मनुष्य का धर्म है तो फल पाना हमारा सौभाग्य !

मन ही पूजा मन ही धुप !
मन ही सेऊँ सहज स्वरूप !!
अर्थ : इस दोहे के माध्यम से संत रैदास जी हमें यह कहते है कि एक पवित्र मन में ही ईश्वर का वास होता है ! यदि इस मन की किसी के प्रति कोई भेद – भाव , लालच या द्वेष की भावना नहीं है तो ऐसा मन ही भगवान का मंदिर है , दीपक है और धुप है ! ऐसे मन में ही ईश्वर निवास करते है !

कृस्न , करीम , राम , हरि , राघव , जब लग एक न पेखा !
वेद कतेब कुरान , पुरानन , सहज एक नहीं देखि !!
अर्थ : रैदास जी कहते है कि कृष्ण , राम करीम , हरि , राघव सब एक ही परमेश्वर के अलग – अलग नाम है ! वेद , कुरान , पुराण आदि सभी ग्रंथो में एक ही ईश्वर की बात करते है , और सभी ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार का पाठ पढ़ते है !

रविदास जन्म के कारने , होत न कोउ नीच !
नकर कुं नीच करि डारि है , ओछे करम की कीच !!
अर्थ : कोई भी मनुष्य किसी जाती में जन्म लेने से निचा या छोटा नहीं होता है , मनुष्य हमेशा अपने कर्मो के कारण पहचाना जाता है !

रैदास कहे जाकै हदै , रहे रैन दिन राम !
सो भगता भगवंत सम , क्रोध न व्यापे काम !!
अर्थ : इस दोहे में संत रविदास जी कहते है कि भक्ति में ही शक्ति होती है ! जिस मनुष्य के हृदय में दिन – रात राम के नाम का वास होता है , वह मनुष्य स्वयं राम के समान होता है ! रविदास जी कहते है कि राम के नाम में ही इतनी शक्ति है कि व्यक्ति को कभी क्रोध नहीं आता और कभी – भी कामभावना का शिकार नहीं होता है !

रसखान के दोहे

देख्यो रुप अपार मोहन सुन्दर स्याम को !
वह ब्रज राजकुमार हिय जिय नैननि में बस्यो !!
अर्थ : इस दोहे में महाकवि रसखान जी कहते है कि ब्रज के राजकुमार भगवान श्री कृष्ण उनके हृदय , मन , मिजाज , जी , जान और आँखों में अपना स्थान बना कर बस गए है !

मोहन छवि रसखानि लखि अब दृग अपने नाहि !
ऊँचे आबत धनुस से छुटे सर से जांहि !!
अर्थ : इस दोहे के माध्यम से रसखान जी कहते है कि भगवान श्री कृष्ण की सुन्दर छवि को देखने के बाद अब यह आंखे मेरी नहीं रह गई है जिस तरह धनुष से एक बार बाण निकल जाता है तो फिर वह वापस नहीं आता है !

मन लीनो प्यारे चीते पे छटांक नहीं देत !
यहै कहा पाटी पढ़ी दल को पिछो लेत !!
अर्थ : इस दोहे में कवि रसखान वर्णन करते है कि अब उसके मन को उनके प्रियतम श्री कृष्ण ने ले लिया है लेकिन बदले में उन्हें कुछ भी नहीं मिला है ! आगे रसखान जी कहते है कि श्रीकृष्ण ने भी यही कहाँ है कि पहले अपना सर्वस्व उन्हें सोप दो फिर उसे कुछ मिलेगा !

मो मन मानिक ले गयो चीते चोर नंदनंद !
अब बेमन मै क्या करू परि फेर के फंद !!
अर्थ : इस दोहे में रसखान जी कहते है कि भगवान श्रीकृष्ण ने उनके मन के माणिक्य रत्न को चुरा लिया है ! अब बिना मन के वह क्या करे ? वे तो भाग्य के फंदे के फेरे में पड़ गए है ! अब तो बिना समर्पण कोई उपाय नहीं रह गया है ! अर्थात जब उनका मन ही उसके प्रियतम श्रीकृष्ण के पास है तो वे पूरी तरह से उसके प्रति समर्पित हो चुके है !

बंक बिलोचन हंसनि मुरि मधुर बैन रसखानि !
मिले रसिक रसराज दोउ हरखि हिये रसखानि !!
अर्थ : रसखान जी कहते है कि उनका ह्रदय तब बहुत ज्यादा आनंदित हो जाता है जब श्रीकृष्ण तिरछी नजरो से देखकर मुस्कुराते है और मीठी भाषा बोलते है ! अर्थात जब रसिक और रसराज कृष्ण मिलते है तब ह्रदय में आनंद का प्रवाह होने लगता है !

अरी अनोखी बाम तू आई गौने नई !
बाहर धरसि न पाम है छलिया तुव ताक में !!
अर्थ : इस दोहे में रसखान जी गोपियों से कहते है – अरी अनुपम सुंदरी तुम नई नवेली गौना द्विरागमन कराकर ब्रिज में आई हो , क्या तुम्हे कन्हैया का सवभाव मालूम नहीं है ! अगर तुम घर से बाहर निकली तो वह तुम्हे अपने प्रेम जाल में फंसा लेगा !

प्रीतम नन्द किशोर जा दिन तै नेननि लग्यो !
मन पावन चितचोर पत्रक ओट नहि सहि सकौ !!
अर्थ : रसखान जी कहते है कि जब से उसकी नजर उनके प्रियतम श्रीकृष्ण से मिली है तब से उसका मन परम पवित्र हो गया है और अब उसका मन और कही लगता भी नहीं है और हमेशा श्रीकृष्ण को देखने का उसका मन बना रहता है !

या छवि पे रसखान अब वारो कोटि मनोज !
जाकी उपमा कविन नही पाई रहे कहूँ खोज !!
अर्थ : रसखान जी इस दोहे में वर्णन करते है कि श्री कृष्ण के अति सुन्दर रूप पर करोडो कामदेव न्योछावर है , वही उनकी तुलना विद्वान् कवि भी नहीं खोज पा रहे है ! कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण के सौन्दर्य रूप की तुलना करना संभव नहीं है !

जोहन नन्द कुमार को गई नन्द के गेह !
मोहि देखि मुसिकाई के बरस्यो मेह स्नेह !!
अर्थ : रसखान जी कहते है कि जब वे श्री कृष्ण से मिलने उनके घर गए यब उन्हें देखकर श्री कृष्ण इस तरह से मुस्कुराये जैसे मानो उनके स्नेह प्रेम की बारिश चारो तरफ होने लगी ! इसी के साथ कृष्ण का स्नेह रस हर तरफ से बरसने लगा !

काग के भाग बड़े सनती !
हरि हाथ सौ ले गयो माखन रोटी !!
अर्थ : इस दोहे में रसखान जी कहते है कि वह कोआ बहुत भाग्यशाली है जो श्री कृष्ण के हाथो से माखन रोटी छीन कर ले गया ! प्रभु के हाथ से माखन रोटी लेने का सौभाग्य उस कौए का प्राप्त हुआ है !

काहू कहू रतियाँ की कथा बतियाँ कही आबत है न कछु री !
आई गोपाल लियो करि अंक कियो मन कायो दियो रसबुरी !!
अर्थ : रसखान जी कहते है कि रात की बात क्या कही जाए ! कोई बात कहने में नहीं आती है ! भगवान श्री कृष्ण न आकर मुझे अपनी गोद में भार लिया और मेरे साथ खूब मनमानी करने लगे ! इससे मेरे मन एवं शरीर में आनंद से रस का सरोबार हो गया !

प्रेम निकेतन श्रीबनहि आई गोबर्धन धाम !
लहयो सरन चित चाहि के जुगल रस ललाम !!
अर्थ : रसखान श्री कृष्ण के लीला धाम वृन्दावन आ गए और अपने हृदय एवं मानस में राधाकृष्ण को बसाकर उनके प्रेम आनंद में डूब गए !

प्रेम हरि को रूप है त्यों हरि प्रेमस्वरूप !
एक होई है यो लसे ज्यो सूरज औ धुप !!
अर्थ : रसखान जी श्री कृष्ण के परम भक्त थे ! वे प्रेम को हरि का रूप मानते है और भगवान को साक्षात् प्रेम स्वरूप मानते है ! प्रेम और परमात्मा में कोई अंतर नहीं होता है जैसे की सूर्य एवं धुप एक ही है उनमे कोई अंतर नहीं होता है !

ए सजनी लीनो लला लह्यो नन्द के गेह !
चितयो मृदु मुसिकाई के हरि सबे सुधि गेह !!
अर्थ : इस दोहे में रसखान जी वर्णन करते है कि हे प्रिय सजनी श्याम लला के दर्शन का विशेष लाभ है ! जब हम नन्द के घर जाते है तो वे हमें मंद मुस्कान से देखते है और हम सबकी सुधबुध लेते है ! अर्थात उनके घर जाने से हमारी सारी परेशानियों का हल निकल जाता है !

सो शिंगार वा चित्र में हतो ,
तैसोई वस्त्र आभूषन अपने श्रीहस्त में धारण किये !
गाय ग्वाल सखा सब साथ ले के आप पधारे !!
अर्थ : इस दोहे में रसखान जी कहते है कि चित्र में जैसा श्रृंगार था ठीक उसी प्रकार का श्रृंगार करके श्री कृष्ण पीताम्बर रूप में अपने ग्वाल बाल गोपो के साथ वे रसखान से मिलने पहुँच जाते है जहाँ रसखान बैठकर कृष्ण के प्रेम में आंसू बहा रहे थे !

तब बा वैष्णवन की पाग में श्री नाथ जी का चित्र हते !
सो काठी के रसखान को दिखायो !
तब चित्र देखते ही रसखान का मन फिरि गयो !!
अर्थ : रसखान जी कहते है कि उन वेष्णवो के हाथो में जो श्री कृष्ण का चित्र था उसे निकालकर जब उन्होंने रसखान को दिखाया तो उस चित्र को देखते ही उनका मन और ह्रदय परिवर्तित हो गया और वर संसार से विमुख होकर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में लीन हो गए !

संत तुकाराम के दोहे

संत तुकाराम जी महाराष्ट्र के पुणे के देहु गाँव के एक छोटे कारोबारी के यहाँ 17 वी सदी में जन्म लिया था ! संत तुकाराम जी भगवान विट्ठल , जिसे विष्णु का अवतार माना जाता है के परम भक्त थे ! उन्होंने ही महाराष्ट्र में लोगो में भक्ति की नीव डाली थी ! तुकाराम जी ने अपने जीवन में दो विवाह किये थे ! उनकी पहली पत्नी रखुमाबाई थी जो किसी बीमारी के चलते जल्दी स्वर्ग को प्यारी हो गई ! उनकी दूसरी पत्नी जीजाबाई थी ! इसके अलावा उनकी तीन संताने भी हुई थी ! संत तुकाराम जी ने अपने जीवन में कई काव्य और साहित्यों की रचना की ! वे महान संत और कवि के रूप में प्रसिद्द थे !

बार-बार काहे मरत अभागी , बहुरि मरन से क्या तोरे भागी !
ये ही तन करते क्या ना होय , भजन भगति करे वैकुण्ठ जाए !!
अर्थ : इस दोहे में संत तुकाराम जी कहते है कि हे मनुष्य तुम बार – बार क्यों मरना चाहते हो ! क्या इस बंधन से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है ! अरे भई ये शरीर बड़ा ही अद्भुत है , इससे क्या नहीं हो सकता ! आप भगवान की भक्ति करके ईश्वर के बैकुंठ धाम को प्राप्त कर सकते हो !

राम नाम मोल नहिं बेचे कवरि, वो हि सब माया छुरावत !
कहे तुका मनसु मिल राखो , राम रस जिव्हा नित्य चाखो !!
अर्थ : इस दोहे में संत तुकाराम जी कहते है कि हमें राम नाम लेने के लिए कोडी भी खर्च नहीं करनी पड़ती है ! यह राम नाम की शक्ति ही हमें प्रपंच की माया से मुक्ति दिला सकती है ! तुकाराम जी आगे कहते है कि जब हम पुरे मन से राम नाम में तल्लीन होते है तभी हमारी जिव्हा से निकलने वाला राम नाम रूपी अमृत रस हमें नित्य तृप्ति दिला देगा !

तुका बस्तर बिचारा क्यों करे रे , अंतर भगवा न होय !
भीतर मेला केव मिटे रे , मरे ऊपर धोय !!
अर्थ : संत तुकाराम जी कहते है कि बेचारे वस्त्र को बार – बार धोने से अंत:करण शुद्ध नहीं होता है ! अपने आन्तरिक मेल को कब मिटाओगे , केवल बाहरी सफाई करने से बचाव नहीं होगा !

कहे तुका जग भुला रे , कह्या न मानत कोय !
हात परे जब कालके , मारत फोरत डोय !!
अर्थ : तुकाराम जी इस दोहे में मनुष्यों को कहते है कि इस मायावी संसार को भुला दो , लेकिन कोई भी हमारी बात मानता ही नहीं है ! जब काल निकट आता है तो हाथ – पैर मारने से कुछ नहीं होता !

कहे तुका भला भया , हूँ हुवा संतन का दास !
क्या जानू केते भरता , जो न मिटती मंकी आस !!
अर्थ : संत तुकाराम जी कहते है कि उनका भला हुआ जिनको साधू की संगती मिली ! नहीं तो बिना मन के उद्दार होने में ही मर जाता !

मीरा के दोहे

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दई म्हारे सतगुरू, किरपा कर अपनायो॥
जनम-जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरच न खूटै चोर न लूटै, दिन-दिन बढ़त सवायो।।
सत की नाँव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तर आयो।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरख-हरख जस गायो॥

अर्थ:- इस दोहे-पद में मीराबाई कहती हैं कि, उन्होंने कृष्ण के नाम का रत्न धन पा लिया है। उनके सतगुरु ने उन्हें अपना कर उनपर कृपा की तथा इस नाम रूपी अमूल्य धन को सौंपा। मीरा ने इस संसार में सब कुछ खो कर इस जन्म जन्म की पूंजी को पाया। ये नाम रूपी धन ऐसा है जो न खर्च करने से कम होता है और न इसे कोई चोर लूट पाता है, इसमे तो दिनों दिन सवा गुणा बढ़त होती रहती है। मीरा ने सत्य की नाव जिसके खेवनहार सतगुरु हैं पर बैठ कर भवसागर पार कर लिया है। मीरा कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरिधर श्रीकृष्ण हैं, ओर में उन्ही का यश गाती हूँ।

पग घूँघरू बाँध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी न्यात कहै कुलनासी रे॥
विष का प्याला राणा भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सहज मिले अविनासी रे।।

अर्थ:- इस दोहे-पद में मीराबाई कहती हैं कि, उन्होंने पैरों में घुंघरू बांध लिये हैं और वो कृष्ण भक्ति में तल्लीन हो कर नाच रही हैं। वो स्वयं ही अपने नारायण श्रीकृष्ण की दासी हो गयी हैं, उन्होंने स्वयं को उन्हें समर्पित कर दिया है। लोग कहते हैं कि मीरा बावली हो गई है। उनके अपने नाते रिश्तेदार उन्हें कुलनशिनी तथा कुल कलंकिनी कहते हैं और उनसे नफरत करते हैं। मीरा को प्रताड़ित करने के लिए स्वयं उनके श्वसुर राणा सांगा ने विष का प्याला भेजा था, जिसे मीरा ने हंसते हंसते पी लिया। मीरा कहती हैं उनके प्रभु गिरिधर श्रीकृष्ण अविनाशी हैं अर्थात कोई उनका विनाश नहीं कर सकता और सहज प्राप्य हैं।

हे री मैं तो दरद-दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै, हिबड़ो अगण संजोय।
जौहर की गति जौहरी जाणै, क्या जाणे जिण खोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस बिध होय।
गगन मंडल पर सेज पिया की किस बिध मिलणा होय।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जद बैद सांवरिया होय।

अर्थ:– इस दोहे-पद में मीराबाई कहती हैं कि, में तो इसी प्रेम की पीड़ा की दीवानी हूँ, मेरी ये पीड़ा कोई नहीं समझ सकता। जिस प्रकार घायल की दशा का भान सिर्फ एक घायल ही कर सकता है की किस प्रकार उसके हृदय में एक आग जल रही है। हीरे की कीमत सिर्फ एक जौहरी जान सकता है वह क्या जान पाएगा जिसने उस हीरे को खो दिया। वैसे ही ईश भक्ति की कीमत भक्त ही जान सकता है। वे कहती हैं कि मेरे लिए कहीं

आराम नहीं, मेरी सेज भी सूली के ऊपर ही है, अर्थात के कष्टों से घिरी हुई है। मेरे पिया की सेज उस लोक में आसमान के पार है,न जाने कैसे, कौन सी विधि से मैं उनसे मिल पाऊँगी।वो तो दर्द में बावली हो कर डर डर भटक रही हैं कि उन्हें कहीं आराम मिल जाए पर उन्हें इस पीड़ा का कोई वैद्य नहीं मिलता। मीरा कहती हैं कि उनकी यह पीड़ा तभी मिलटेगी जब स्वयं उनके प्रियतम श्रीकृष्ण उनके सामने वैद्य बन कर आएंगे।

दरस बिनु दूखण लागे नैन।
जबसे तुम बिछुड़े प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन॥
सबद सुणत मेरी छतियां कांपे, मीठे लागे बैन।
बिरह कथा कांसूं कहूं सजनी, बह गई करवत ऐन॥
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैन।
मीरा के प्रभू कब रे मिलोगे, दुखमेटण सुखदैन॥

अर्थ: इस दोहे-पद में मीराबाई कहती हैं कि, बिना कवि के दर्शन के उनके नैनों में दर्द होने लगा है। जब से प्रभु उनसे बिछड़े हैं, अर्थात जब से वह संसार में आई हैं, उन्हें कभी चैन नहीं मिल पाया है। सबद सुनते सुनते उनकी छाती विरह के दुख में कांपने लगती हैं, यद्यपि उन्हें सबद के बोल बफे मीठे लगते हैं, क्योंकि वे उन्हें प्रभु की याद दिलाते हैं। वो अपनी सखी को सम्बोधित कर के कहती हैं कि मैं अपनी विरह की पीड़ा की कहानी किससे कहूँ, ऐसा लगता है मानो आरी चल रही हो। हरि की राह निहारते निहारते मेरा पल नहीं बीतता, रातें मानो 6 महीने जितनी लम्बी हो जाती हैं।अपने प्रभु को संबोधित कर मीरा पूछती हैं कि हे मेरे प्रभु तुम मेरे दुख मिटाने तथा सुख प्रदान करने को कब मिलोगे।

नरसी मेहता

आज से लगभग 500-600 वर्ष पहले की बात है। वैष्णव जन तो तेने कहिए कहिये प्रसिद्ध गुजराती कवि और भगवान श्री कृष्ण के परम भक्त नरसी मेहता का एक प्रसिद्ध भजन है। यह भजन महात्मा गांधी की प्रतिदिन की प्रार्थना का एक हिस्सा था। इस भजन में नरसी मेहता ने एक वैष्णव में कैसे गुण होने चाहिए उसका वर्णन किया है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड परायी जाणे रे ।

पर दुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड परायी जाणे रे ।

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।

वाच काछ मन निश्चळ राखे, धन धन जननी तेनी रे ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये,जे पीड परायी जाणे रे ।

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।

जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड परायी जाणे रे ।

मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे ।

रामनाम शुं ताली रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड परायी जाणे रे ।

वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे ।

भणे नरसैयॊ तेनुं दरसन करतां,कुल एकोतेर तार्या रे ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड परायी जाणे रे ।

पर दुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे ॥

मेरा अनुभव :

- सामान्य रूप से ऐसा होता है, जब बात समज मैं आती है तो बहुत देर हो चुकी होती है / बिगड़ चुकी होती है इसी लिए यथासम्भव मौन धारण करें, यदि आवश्यक हो तो बहुत ही कम शब्दों में हाँ या ना में उत्तर दें I
- रोजाना कम से कम 02 घंटे ध्यान या मानसिक / अजपा जप करें (बहुत सवेरे 01 घंटा या देर शाम / रात 01 घंटा सोने से पहले), कृपया बहुत छोटा मंत्र ॐ या बीज मंत्र चुनें, कम से कम 40-60 मिनट लगातार बैठने की कोशिश करें। हमेशा मंत्र ,विचार / सांस पे ध्यान रखें , अपने को भूल ही जाए, कम से कम 6 महीने लगातर अभ्यास करे बाद में फल देखा जा सकता है I तुम अपने आप को ऐसा बना सकते हो कि खुद नई गीता, बाइबल या कुरान लिख सकते हो , जिस दिन आपको ऐसा लगे कि ,जैसे ही फ्री हो , ध्यानमे या मंत्र जाप पे तुरत मन लग रहा है तो समझे की आपकी सही अर्थो में आध्यात्मिक या धार्मिक उन्नति हो रही है I तुम्हारा ये जन्म ईश बIत का गवाह है कि पिछले जन्म में कुछ हुआ ही नहीं, हो सकता है आप बुद्ध के सामने बेठे हो या नानक, कबीर के पास से गुजरे हो, सही चाह या इच्छा ही नहीं थी, जो हो गया सो हो गया लेकिन इश जन्म में ऐसा करे की आने वाले 2-3 जन्म में बुद्धत्व प्राप्त हो जIय I जब आप खुश रहने लगो तो विश्वास करना जिंदगी सही दिशा में जा रही है या सही जी रहे हो I ध्यान है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं I
- कम से कम एक घंटा रोज , हर दिन श्रीमद्भगवत गीता को पढ़ने और समझने का प्रयास करें और अपनी नोट बनाए या गीता पर अपनी टिप्पणी करें या प्रबुद्ध व्यक्ति के वीडियो या ऑडियो जूरूर सुनें / देखें I
- उचित योजना के साथ हर दिन अपना नियमित काम / पुरी जिम्मेदारी , ईमानदारी से और समय पर करें , कर्मयोगी की तरह , ऐसा काम करे की कुटुम्ब, समाज , मIनवता का हमेशा ध्यान रहे I
- सम्मान दो और सम्मान लो , अपने काम से काम रखे I
- अपना दैनिक कार्य खुद करें, किसी पर निर्भर न रहें, हर तरह से साफ-सुथरा , अनुशासन रहें I जितना हो सके दूसरेI को मदद करे I
- जितना हो सके हर समय सच बोलने की कोशिश करें , पारदर्शी रहें, कोई पक्षपात न करें, छोटी-छोटी बातों में झूठ न बोलें I
- चाहे कोई भी हो, किसी को भी 3 बार मोका दे सुधरने का या समझIने का, बात में कुछ ना कहे, उसको अपने हाल पे छोड़ दे और ईश्वर पे भरोसा रखें / भगवान पर छोड़ दो I
- हर दिन कम से कम 40-60 मिनट शारीरिक व्यायाम करें जो आपको पसंद हो, सप्ताह में कम से कम 5-6 दिन करने की कोशिश करें, ज्यादा तनाव न दें या शरीर / मांसपेशियों को दर्द न दें I
- कम से कम हर दूसरे दिन शरीर / बालों की मालिश करें I
- रात के खाने से बचने की कोशिश करें, केवल सुबह का नाश्ता, दोपहर का भोजन और यदि आवश्यक हो तो बहुत हल्का रात का खाना शाम ढलने से पहले ले खा ले, अपने पेट को हमेशा थोड़ा खाली रखें जो नींद ,आलस्य से बचा सकता है , आपको हमेशा ताजा / ऊर्जावान रखेगा I
- लंबे समय तक अच्छे स्वास्थ्य के लिए शाकाहारी रहें, हमारे खाने के लिए किसी भी जानवर / पक्षी को मत मारो , शराब / धूम्रपान से हमेशा बचें I
- रात में कम से कम 6 घंटे सोएं (रात 11:00 बजे से सुबह 5:00 बजे तक)I
- इस को हमेशा याद रखें - ये भी चला जाएगा , किसी भी स्थिति में हर समय धैर्य रखें और हमेशा हर परिस्थिति मैं सकारात्मक रहे I नकारात्मक बोलने या सोचने से बचे I

- कम से कम, साल में एक बार अपने शरीर का पंचकर्म करें और एक सप्ताह का समय पूरी तरह से प्रकृति के साथ अकेले बिताएं / ध्यान करें I
- किसी को पैसा न दें या जब तक हो सके पैसे उधार न लें, अपने धन आवक / स्रोतों के अनुसार जीने की कोशिश करें, सम्मानपूर्वक नI कहेने की हिम्मत रखे , पैसे देने से पहले कृपया बराबर जांचें कि पैसे लौटाने में सक्षम है या नहीं , पैसे के लिए कभी किसी से संबंध ना तोड़े , मIगना या मरना एक ही बात है , हर किसी के सIमने मत झुके , हमेशा याद रखे की आप के अंदर परमात्मा रहते हैं , उनका अपमान ना होने दे I किसी से कुछ भी मत मागो, भगवान से भी नहीं क्योंकि जरूरते हर किसी की पूरी होती है ख्वाहिश नहीं I
- मेरा अनुभव कहता है कि जो होने वाला है वो हो कर ही रहता है, हमें अपनी मेहनत, ज्ञान / होशियारी, बुद्धि से कहीं ज्यादा ही मिलता है, इसी लिए भगवान पे हमेशा भरोसा रखे कि जिसने इतना बड़ा संसार संभIलI है तो मुझे भी अच्छे से संभIल लेगा , जिस दिन तुम किसी चीज के लिए तैयार हो जाओगे तो वो तुम्हें मिल ही जाएगी, पहले लायक बनो फिर इच्छा अपने आप पूरी हो जाएगी , ये संसार का वादा / प्रतिबद्धता है I ये संसार हमेशा बहुत कुछ देता ही है , उनका स्वभाव है I
- बस तेरी मर्जी, कोई फरियाद नहीं, अगर दुखी हो मतलब ईश्वर पर भरोसा नहीं, आप खुश हो मतलब सही जी रहे हो या सही समझ रहे हो
- ज्ञान होना और ज्ञान में जीना काफी अंतर है, हमें पता सब कुछ रहता है पर धर्म के हिसाब से जीते नहीं है, वाणी, वर्तन और व्यवहार में समानता होनी चाहिए
- ऊपर वाला मिलता नहीं या सही ज्ञान / लक्ष्य मिलता नहीं क्योंकि हमारी चाहत या प्राथमिकता, या इच्छा / लक्ष्य ही नहीं थी
- काम पूरा करने के लिए बहुत सारे तरीके /विकल्प हैं और काम न करने के लिए भी बहुत सारे तरीके /विकल्प हैं
- बहार प्रेम और अन्दर/भीतरध्यान, प्रभु के पास जल्दी पहोंचने का बस यही एक रास्ता है
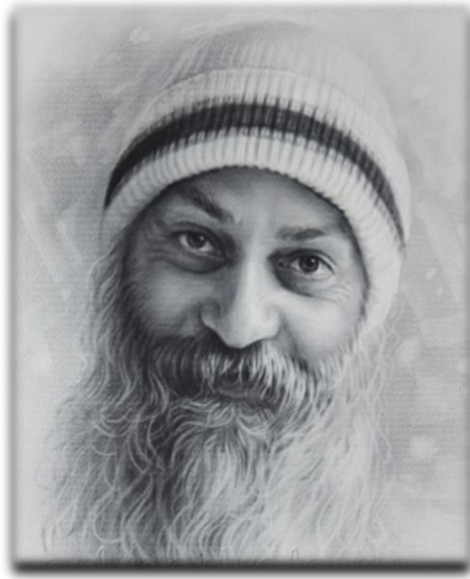
अपनी सोच पर नजर रखें, वे आपके शब्द बनती हैं; अपने वचनों का ध्यान रखें, वो कर्म बन जाते हैं; अपने कार्यों को देखो, वे आदत बन जाती है; अपनी आदतों पर ध्यान दो, वे चरित्र बन जाती हैं; अपने चरित्र पर ध्यान दें क्योंकि यही बनता है आपकी तकदीर।"

॥ हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

मेरी शुभकामनाओं के साथ ,
नमामि देवी नर्मदे , नर्मदे हर ! नर्मदे हर !
PANKAJ......